हिन्दी पुस्तक एजेन्सीमाला संख्या—४५

सभ्यता महारोग

उसका

निदान और निवारण

अर्थात्

मनुष्यजातिके विकासमें सभ्यता नामक महारोगकी उत्पत्ति, उसका निदान और इलाज।

एडवर्ड कारपेण्टरकी प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक
"सिविलिजेशन, इट्स काज़ एण्ड क्योर"

अनुवादक—
श्रीयुक्त सुन्दरलालजी

प्रकाशक—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता।

प्रथम संस्करण] वि० १९८१ [मूल्य २)

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड,
कलकत्ता ।



मुद्रक —
किशोरीलाल केडिया
"वणिक् प्रेस"
१, सरकार लेन, कलकत्ता ।

भूमिका

'सभ्यता महारोग—उसका निदान और निवारण', यह मिस्टर एडवर्ड कार्पेंटरकी सबसे नामी और उत्तम पुस्तक है। मैं इसका अनुवाद पाठकोंके सामने पेश करता हूं—इसकारण नहीं कि मैं कार्पेंटर साहबकी सब रायोंसे सहमत हूं या मैं उन सारी तदबीरोंको, जो उन्होंने इस सभ्यताकी बीमारीके इलाजके तौरपर बताई हैं, एशिया या विशेषतया हिन्दुस्तानके लिये ठीक और सिद्धकर समझता हूं, बल्कि इसलिये कि मैं अपने देशवासियोंके उस दलका ध्यान, जो यूरोपकी सभ्यताकी क्षणिक ज्योतिके मायावी तेजसे चकित और मत्त होरहा है, उसकी असलियत और सत्ताकी ओर दिलाऊं। यह दल देख ले और अनुभव कर ले कि स्वयं यूरोपके विचारवान् पुरुषोंका एक बड़ा और दिनोंदिन बढ़नेवाला गिरोह इस सभ्यताको किस दृष्टिसे देख रहा है। इस गिरोहके कार्पेंटर साहब बड़े नेता हैं। इस गिरोहकी रायमें वर्तमान सभ्यता अपरिमित मोह, बनावट, कूट नीति और दम्भपर निर्भर है और इसके इलाजकी सूरत यह गिरोह यह बताता है कि मनुष्य अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनको सरलता, प्रेम, निःस्वार्थता और सदाचारकी बुन्यादोंपर स्थापित करे। मैं इन लोगोंकी आवाजको एशियाकी आवाजकी प्रतिध्वनि समझता हूं और इसलिये मैं अपने देशवासियोंके, पश्चिमकी पूजा करनेवालोंके दलके, कानोंतक इस आवाजको एक प्रतिष्ठित यूरोपी लेखकके मुखसे पहुंचाना चाहता हूं ताकि वह उसे सुनें और जाग्रित हों।

अनुवादकी भाषाके बारेमें मुझे केवल इतना कहना है कि एक तो जहांतक होसका हिन्दी मुहावरेका पूरा ध्यान रखते हुए मैंने शाब्दिक

अनुवाद करनेकी कोशिश की है और दूसरे मैंने अपनी पुरानी आदतके खिलाफ़ उर्दू शब्द स्वतन्त्रतासे इस्तेमाल किये हैं। मेरा विचार है कि उर्दूमें अरबी और फ़ारसी लवज़ोंकी भरमार करना या हिन्दीको संस्कृतका नमूना बनानेकी कोशिश करना दोनों बातें राष्ट्रीय भाषाके विकासमें रुकावट डालनेवाली हैं। हमें वह रीति इख़्तियार करनी चाहिये जिससे हमारे हृदय और दिमाग़ोंमें विशालता उत्पन्न हो, और वह दीवारें टूट जावें जो हमारे देशके भिन्न भिन्न श्रेणीके लोगोंमें भेद पैदा करती हैं। इन रुकावटोंको बढ़ाना, धार्मिक संकीर्णताको पूजना, और राष्ट्रीय विकासके मार्गमें सबसे बड़ी रुकावट डालना है।

सुन्दरलाल



नम्र निवेदन

यह पुस्तक युरोपके प्रसिद्ध विद्वान् एडवर्ड कारपेण्टरकी लिखी "सिविलिजेशन, इट्स काज़ एण्ड क्योर" का अनुवाद है। इस पुस्तकमें क्या है और इसके प्रकाशित होनेसे युरोपमें कितनी हलचल मची है, इसे तो पाठकगण पुस्तकको पढ़ हीकर समझेंगे, परन्तु संक्षिप्तमें इस पुस्तकको हिन्दी-भाषामें प्रकाशित करनेकी आवश्यकतापर दो शब्द लिखे जाते हैं।

इस समय भारतमें भी "पाश्चात्य सभ्यता" के पीछे लोग बुरी तरहसे पड़े हैं। और हमारे प्रत्येक दैनिक जीवनमें उसकी झलक दिखाई पड़ती है। इधर चार पांच वर्षोंसे, महात्मा गांधीके सत्य विचारोंके प्रचारसे इस विषयपर भी लोग विचार करने लगे हैं। परन्तु इसकी सख्त जरूरत थी कि इस "सभ्यता" पर लोग तात्विक दृष्टिसे विचार करें तथा इसके सम्बन्धमें युरोपियन विद्वानोंके विवेचनात्मक विचारको पढ़कर देखें कि उनका क्या मत है।

सबसे आवश्यक बात विचार करनेकी यह है कि क्या इस सभ्यतासे शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक उन्नति होरही है? और हम भारतवासियोंके लिये क्या यह "सभ्यता" उपयुक्त है? हमारे प्राचीन आदर्शोंको देखते हुए क्या आज-कलके मनुष्य-जीवनकी प्रणालियां मनुष्यको वास्तविक उन्न-

चरित्रकी ओर ले जारही हैं ? यदि हां, तब तो यह "सभ्यता" ग्राह्य है। अन्यथा इस रोगसे मुक्त होनेके लिये प्रत्येक मनुष्यको विचार करना चाहिये।

मूल पुस्तकके लेखकने अपनी प्रस्तावनामें जिन तीन बातोंकी आशा प्रगट की है, उन्हीं आशाओंपर मुग्ध होकर हम भी अपने प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी पाठकसे प्रार्थना करते हैं कि वह भी इनपर विचार करे।

(१) समाजकी ऐसी व्यवस्था करना, जो प्राकृतिक नियमानुसार हो, जिससे किसी व्यक्तिविशेष अथवा किसी जनसमूहका दूसरी श्रेणियोंके मनुष्योंपर प्रभुत्व जमाये रखना, और बहुतसे बेकार मनुष्योंका बिना परिश्रमके कुछ श्रमिक लोगोंकी गाढ़ी कमाईके सहारे मौज करना, ये दोनों सभ्यताके महारोग बन्द होसकें।

(२) ऐसे विज्ञानका साक्षात्कार करना, जो केवल सोचने और विचारनेका विषय न होकर जीवनके व्यवहारमें आता रहे।

(३) ऐसे धर्मका साक्षात्कार करना जो एक मनुष्यको दूसरे मनुष्य (मनुष्य ही नहीं, जीवमात्र) के साथ वैसा ही प्रेम, जैसा शरीरका एक अंग दूसरे अंगोंके साथ करता है, करना सिखलावे। (जैसे शरीरके किसी एक अंगमें कांटा चुभाते ही सारे शरीरको पीड़ा होती है, वैसे ही एक प्राणीकी पीड़ाको सब लोग अनुभव करें।)

उपर्युक्त विचारोंको दृष्टिमें रखते हुए एक बार प्रत्येक भारतवासीको अपनी प्राचीन सभ्यतापर दृष्टि डालनी चाहिये और विचार करना चाहिये कि क्या यह पाश्चात्य सभ्यता हमारे लिये उपयुक्त है ?

इस पुस्तकके अनुवादक हैं "कर्मयोगी" "भविष्य" इत्यादिके सम्पादक देशभक्त श्रीयुक्त सुन्दरलालजी बी० ए० । अनुवादकी भाषा उर्दूमिश्रित होनेसे कुछ लोगोंको खटक सकती है, परन्तु विचार करनेसे मालूम होगा कि इस पुस्तकमें जो उर्दू शब्द मौके मौकेपर इस्तेमाल किये गये हैं उससे ऐसे गम्भीर विषयके समझानेमें अनुवादकने सहायता पाई और राष्ट्रीय भाषाके नाते इसकी ज़रूरत भी जान पड़ती है।

आशा है कि विद्वान् पाठकगण इस पुस्तकको पढ़कर विचार करेंगे

—प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेन्सीमाला संख्या—४६

चित्रमय रामायण

सुन्दर सुन्दर एक रंगे और बहुरंगे चित्रोंसे सुसज्जित

शीघ्र ही प्रकाशित होगी

पूरे संस्करणकी प्रस्तावना

(१९२०)

यह पुस्तक पहलेपहल सन् १८८६ में प्रकाशित हुई थी, अब, जब इस अन्तिम संस्करणकी गरजसे मैंने इसे दोहराया तो मुझे यह देखकर खुशी हुई कि आखिरकार इसमें ज्यादह बातें ऐसी नहीं हैं जिन्हें बदलनेकी जरूरत हो। चूंकि पहली आवृत्तिको प्रकाशित हुए तीस वर्षसे ऊपर होचुके थे इसलिये मेरा खयाल था कि इस समयके अन्दर वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारोंमें जो जबरदस्त तब्दीलियां हुई हैं उनकी वजहसे शायद किताबका एक खासा हिस्सा अब "पुराना" (Out of Date) पड़ गया होगा।

वास्तवमें पहला निबन्ध, जो "सभ्यता" के ऊपर है, सन् १८८८ ई० में फैबियन सोसाइटीके सामने बतौर लेक्चरके दिया गया था; और उस मौकेपर जो गजबनाक हमले इसपर किये गये थे उन्हें मैं आसानीसे न भूलूंगा। जब सन् १८८६ ई० में ये सब निबन्ध मिलाकर पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किये गये तब फिर प्रेस-समालोचकोंने इस पुस्तकका बिल्कुल उसी तरहका स्वागत किया। कुछ लोगोंने तो—और उनकी तादाद भी ऐसी बहुत कम न थी—ऐसी पुस्तककी ओर ध्यान देना भी करीब करीब अपनी हतक समझकर उसे बिल्कुल ही नजरअन्दाज कर दिया, और बाकीने उसे खूब जी भरके गालियां दीं। उस समयके विचारोंका तमाम रुझान ही इस पुस्तकके नतीजोंके खिलाफ था; इन बातोंको याद दिलाना शायद इसलिये मुनासिब है क्योंकि इनसे पता चलता है कि इन तीस वर्षके अन्दर हम कहांसे कहां आपहुंचे हैं। क्योंकि आज (मैं समझता हूं हम

यह कह सकते हैं कि) इन नतीजोंको आम तौरपर ठीक माना जाता है; और जो खयालात तीस साल पहले इतने खतरनाक और मश्कूक मालूम होते थे वे अब खासी तरह जड़-पकड़ गये हैं और खासी तादाद लोगोंकी उन्हें मंजूर भी करती है।

निस्सन्देह इस समयके अन्दर "सभ्यता" (Civilization) शब्दके रंगने एक बड़ा अशुभ-सूचक पलटा खाया है। अब पहलेकी तरह यह एक ऐसा सीधा-सादा शब्द नहीं रहा जिससे सामाजिक जीवनकी तमाम आदर्श बातों और आनन्द देनेवाली चीजोंका मतलब लिया जाता हो, इसके बरअक्स अब इस शब्दके साथ एक सन्देह और दोषनिरूपणका भाव मिला हुआ है, मानो "सभ्यता" एक ऐसी चीज है जिसे हरगिज अभी-तक स्वीकार नहीं किया गया, बल्कि जो यदि वास्तवमें निन्द-नीय करार नहीं दे दीगई है तो कमसे कम अभी आजमाइशकी हालतमें है!

किन्तु मुझे यह लिखते हुए अफसोस होता है कि मैंने जो अपनी किताबमें कई जगह यह सुझाया था कि "सभ्यता" शब्दसे बजाय एक आदर्श अर्थ लेनेके एक ऐतिहासिक अर्थ लेना ज्यादह उचित होगा, यानी हर कौमके इतिहासमें केवल एक खास जमानेके लिये इस शब्दका उपयोग करना चाहिये, इस बातको अभीतक आमतौरपर स्वीकार नहीं किया गया। तथापि यदि मेरी निस्बत कोई ज्यादह योग्य आदमी इस विषय-का एक निबन्ध तैयार करे जिसमें "इतिहास" के अन्दर इस सभ्यता-युगके निश्चित चिन्ह और उसके लक्षणोंका जिकर हो— जिसमें इस बातका जिकर हो कि ये लक्षण और चिन्ह मानव-उन्नति और विकासके क्रममें पहलेपहल कब प्रकट होते हैं और फिर किसी बादके समयमें जाकर सम्भवतः कब लोप होजाते हैं—तो इस तरहका निबन्ध बड़ा मनोरञ्जक होगा और उससे इस विषयमें बहुत कुछ शिक्षा भी प्राप्त होसकेगी।

मैंने इस विषयपर जब अपना छोटासा निबन्ध लिखा था तो उसमें भावनाओंका जोश बहुत कुछ शामिल था; और निस्सन्देह उसपर इस तरहका ऐतराज किया जासकता है कि उसमें अधिकतर जोश ही ज्यादह है और यथार्थ घटनाओं, प्रमाणों, ऐतिहासिक मिसालों, उपमाओं इत्यादिद्वारा अपने पक्षका समर्थन करनेकी कोशिश कम कीगई है। किन्तु इस निबन्धको बिना गहरा नुकसान पहुंचाये उसमें अधिक परिवर्त्तन वा सुधार करना असम्भव होता; और यद्यपि उसकी शकलमें जल्दी वा अधूरापन पाया जासकता है तथापि जहांतक उसके असली मजमून और उसके नतीजोंका तआल्लुक है मैं अभीतक उन्हें पूरी तरह मानता हूं, और विश्वास करता हूं कि समय उनकी सचाईको पूरी तरह साबित कर देगा।

"आजकलकी साइन्स" के विषयमें मेरे जो विचार हैं उनका पिछले पच्चीस वर्षके अन्दर एक विचित्र ढंगसे समर्थन हुआ है। क्योंकि जबकि एक ओर—जैसी आशा कीजाती थी—नई नई बातोंके पता लगाने और उनका अमली फायदा उठानेमें बहुत बड़ी तरक्की हुई है, दूसरी ओर इन तमाम चीजोंकी बाबत सिद्धान्त वा कल्पनाएं (Theories) अधिकाधिक पीछे हटकर करीब करीब नजरसे गुम होगई हैं। मिसालके तौरपर जबकि बिजलीकी क्रियाओं और उसके संयोगोंके विषयमें हमें पहलेसे अनन्त गुणा ज्यादह ज्ञान है, दूसरी ओर मालूम होता है कि "बिजली" (Electricity) क्या चीज है, इसके विषयमें किसी माननेयोग्य सिद्धान्तसे हम शायद पहलेकी निस्बत भी ज्यादह दूर हैं। यही बात "गरमी" (Heat) और रोशनी (Light) और ज्योतिष-विज्ञान-सम्बन्धी (Astronomical) जीवन-विज्ञान-सम्बन्धी (Biological) तथा भू-विज्ञान-सम्बन्धी (Geological) "नियमों" (Laws) इत्यादिके विषयमें कही जासकती है। इस तरहके मामलोंमें

"आजकलकी साइन्स" अपने तईं दिवालिया स्वीकार करनेही-वाली है, किन्तु चूंकि अभी अपने दिवालियेपनको स्वीकार करना नहीं चाहती, इसलिये होशियारीके साथ खामोश है।

जिस "अणु" (Atom) का मैंने तीस वर्ष पहले मजाक उड़ानेका साहस किया था (जिसपर कि मेरे वैज्ञानिक मित्र मुझसे हद्दर्जेके नाराज हुए थे) वह "अणु" अब आप ही आप इतनी पूरी तरहसे फट चुका जिस तरह कि जर्मनीका "कोल-बक्स" फटकर बिल्कुल गुम होजाता है; और रसायनविज्ञानके वे तत्त्व, जिन्हें किसी समय निश्चित "तत्त्व" (Chemical Elements) माना जाता था, हालहीमें पिघलकर ऐसे ऐसे बेअन्त हवाई रूपों (Protean vapours and emanations, ions and electrons) में बदल गये कि उनके अनन्त रूपान्तरोंको समझ सकना भी अब असम्भव है। रहा उन अनेक "प्रकृतिके नियमों" (Laws of Nature) का हाल, जिन्हें हम उन्नीसवीं सदीमें सदाके लिये सच्चा साबित कर देनेवाले ही थे, अब उनमेंसे कोई नजर भी कहीं बड़ी ही मुश्किलसे आता है—उनमेंसे अधिकांश मदरसोंकी पुरानी पाठ्य पुस्तकोंके अंधेरे वरकोंमें दबे पड़े हैं, जहां न उन्हें कोई पूछता है और न कोई देख सकता है, जिस तरह कि अमरीकाकी केनटकी नदीके पासकी अंधेरी गुफाओंमें मछलियां पड़ी रहती हैं।

इस पुस्तकमें " साइन्स" के ऊपर जो अध्याय हैं उनमें भी यद्यपि कुछ ऐसे ऐसे वाक्य रह गये हैं जो अब पुराने होगये यानी जो अब बिल्कुल पहलेहीके अर्थोंमें इस्तेमाल नहीं होते, तथापि मैंने यही सबसे उचित समझा कि उन्हें ज्योंका त्यों पड़ा रहने दूं; क्योंकि हर जगह मेरा मतलब और मेरे आम नतीजे अब भी वैसे ही पक्के हैं जैसे पहले थे। पुस्तकके पढ़नेसे मालूम होगा कि इन अध्यायोंका आमतौरपर मतलब यह दर्शाना है कि साइन्सको काम करनेका असली मैदान "जीवन" में

मिल सकता है, और चीजोंको जाननेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि "कर्म" द्वारा उनके अर्थको अपने भीतर अनुभव किया जावे और उनके साथ अपने तईं मिलाकर एक कर दिया जावे। यदि इन असूलोंके अनुसार अध्ययन किया जावेगा तो अन्तको बजाय उस घबराई हुई, ज्वरातुर,प्रेतस्वरूप और स्वयं अपनेको धोका देनेवाली चीजके, जिसे अबतक गलतीसे साइन्स कहा जाता है, एक वस्तवमें मनुष्यके उपयुक्त दया आदिके भावोंको लिये हुए, रचनात्मक, वशी और मनुष्यके रहनेके लिये एक सच्चा घर बनानेके योग्य "साइन्स" उत्पन्न होगी।

लगभग यही हाल हमारे आजकलके "धर्म अधर्म" (Morality) सम्बन्धी विचारोंका होगा। इस विषयके वे लफ्जी धर्म-शास्त्र और सदाचार-प्रणालियां, जिन्होंने "मनुष्य-जीवन" के मैदानमें अपनी घातक मदाखलतद्वारा इतनी बरबादी फैला दी है, तेजीके साथ लोप होते जारहे हैं। "प्रकृति" के "नियमों" (Laws of Nature) रूपी भूतोंकी तरह इन भूतोंका भी अब खतमा होता जारहा है। अपने "मुजरिमोंका पक्ष-समर्थन" शीर्षक अध्यायमें मैंने जिन विचारोंका केवल एक मोटा खाका खींचा था उन्हें अब मैंने "नया धर्म" शीर्षक अध्यायमें अधिक व्यक्त रूपमें बयान किया है। "धर्म" को हमें अन्तको जाकर सच्चे अर्थोंमें 'मानव' (Human) बनना होगा और उसे मनुष्य-जातिकी असली मार्मिक आवश्यकताका सच्चा प्रति-विम्ब बनाना होगा। मनुष्यको उन तमाम दबावों, रुकावटों, और बन्धनोंसे आजाद करना होगा, जिन्होंने अभीतक उसे धर्मके मैदानमें पंगुल कर रखा है। उसे उसके बचपनके पोतड़ोंसे बाहर निकालकर आकाशकी खुली हवामें लेआना होगा और सर्वोच्च अर्थोंमें स्वाधीन तथा स्रष्टा बनाना होगा।

इस प्रकार तीन बातें (१) एक ऐसी नई सामाजिक व्यवस्थाको साक्षात् करना जो "कुदरत"के साथ बिल्कुल मिली

हुई होगी और जिसमें एक श्रेणीके दूसरी श्रेणीपर प्रभुत्व और बहुतसे अनुत्पादक लोगोंका दूसरी उत्पादक श्रेणियोंके परिश्रमके सहारे उनका खून चूसकर जीना, ये दोनों रोग सदाके लिये बन्द होजावेंगे; (२) एक ऐसी "साइन्स" को साक्षात् करना जो आजकलकी साइन्सके समान केवल दिमागहीका विषय न होगी, बल्कि जो "अमली जिन्दगी" का एक भाग होगी; और (३) एक ऐसे "धर्म" को साक्षात् करना जो मनुष्यकी अपने साथियोंके साथ उस मार्मिक एकताको, जो एक शरीरके विविध अंगोंकी एकताके समान है, सूचित करेगा और उसे व्यक्त करेगा—ये तीनों बातें मनुष्य-जातिके लिये एक ऐसे नये युगके आनेकी सूचना देंगी जो युग शायद अपने तईं "सभ्यता" के नामसे न पुकारना ज्यादह पसन्द करेगा।

पुस्तकके पहले निबन्ध (प्रथम भाग) को पुष्ट करने और उसका समर्थन करनेके लिये एक 'परिशिष्ट' उसके साथ जोड़ दिया गया है जिसमें बहुतसी "असभ्य" कौमोंकी जिन्दगी और उनके रस्म और रिवाजपर नोट्स और वाकआत दिये हुए हैं; उस परिशिष्टके एक बहुत बड़े भागके लिये मैं अपने वसीअ मुतालयवाले और अनेक साधनोंवाले मित्र ई० बरट्रम लौयडकी सहायताका ऋणी हूं।

दिसम्बर १९२०, एडवर्ड, कारपेण्टर



सभ्यता महारोग

उसका

निदान और निवारण

पहला अध्याय

The friendly and flowing savage, who is he? Is it waiting for civilisation, or is he past it, and mastering it?—Whitman.

अर्थ—सबका भला चाहनेवाला और स्वतन्त्रतासे विचरण करता हुआ असभ्य मनुष्य कौन है? क्या वह (हमारी इस) 'सभ्यता' का इन्तज़ार कर रहा है अथवा 'सभ्यता'से ऊपर उठकर उसे अपने वशमें कर रहा है?—वाल्ट व्हिटमैन।*

आज हम अपने आपको एक कुछ न कुछ विचित्र सामाजिक अवस्थामें पाते हैं, जिस अवस्थाका नाम हमने 'सभ्यता' रख रखा है। किन्तु हममेंसे जो लोग सबसे अधिक आशावादी हैं, उन्हें भी हमारी यह मौजूदा स्थिति सर्वथा स्पृहणीय प्रतीत नहीं होती। वास्तवमें हममेंसे बाज तो इस मतकी ओर झुकते जाते हैं कि यह 'सभ्यता' एक प्रकारका रोग है, जिसमेंसे होकर विविध मनुष्य-जातियोंको ठीक उस ही तरह निकलना पड़ता है जिस तरह बालकोंको प्रायः चेचक अथवा कुकरखांसीमेंसे

---

* १८१९-१८९२, अमरीकाका एक प्रसिद्ध विद्वान, कवि और तत्त्ववेत्ता।

होकर निकलना पड़ता है। किन्तु यदि 'सभ्यता' रोग है तो एक बात संजीदगीसे सोचनी होगी; वह यह कि, जब इतिहासमें हमें अनेक ऐसी कौमोंका पता चलता है, जिनपर इस बीमारीने हमला किया और अनेक ऐसी कौमोंका भी पता चलता है, जो इस बीमारीमें पड़कर खतम होगईं और कुछ ऐसी कौमोंका भी पता चलता है, जो अभीतक इस बीमारीकी पीड़ाओंमें ग्रस्त हैं; हमें एक भी ऐसी कौमका इतिहास नहीं मिलता, जो इस रोगमेंसे निकलकर, थोड़ी-बहुत अच्छी होकर, किसी अधिक कुदरती और तन्दुरुस्त हालतको पहुंच गयी हो। दूसरे शब्दोंमें (जहांतक हमें मालूम है) जिस गतिको हम "सभ्यता" कहते हैं,उस गतिमें आजतक कभी कोई भी मनुष्य-जाति एक खास और निश्चित अवस्थासे आगे नहीं बढ़ी। मनुष्य-समाजके विकासमें जाहिरा यह अवस्था ही अन्तिम अवस्था मालूम होती है और इसतक पहुंचकर या तो मनुष्य-जातियां इस रोगके कारण खतम हो जाती हैं अथवा वहींपर उनका भावी विकास रुककर रह जाता है।

निस्सन्देह "सभ्यता"के लिए रोग शब्दका उपयोग करना ही पहलेपहल अत्युक्ति मालूम होता होगा, किन्तु थोड़ासा विचार करनेमें मालूम होजाना चाहिये कि इस शब्दका उपयोग करनेके लिए काफी वजूहात हैं। पहले शारीरिक अवस्थाकी दृष्टिसे लीजिये। मैंने Mullhall की Dictionary of Statistics (1884) में पढ़ा है कि युनाइटेड किंगडम अर्थात् इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड और आयरलैण्डमें मिलाकर सरटिफिकेट-प्राप्त डाक्टरों और जर्राहोंकी संख्या २३,००० से ऊपर है। (सन् १८८४ के अनुसार यदि हमारी कौममें बीमारियां इतनी बढ़ी हुई हैं कि हमें अपने इलाजके लिए २३ हजार डाक्टरोंकी जरूरत पड़ती है, तो निस्सन्देह हमारी हालत शोचनीय होनी चाहिये! और इसपर भी यह "डाक्टर लोग" हमें तन्दुरुस्त

नहीं कर देते। आजदिन जहां कहीं हम नजर डालते हैं, अमीरोंके महलोंमें अथवा गरीबोंकी गन्दी गलियोंमें, हमें रोगके ही चिन्ह दिखाई देते हैं और रोगकी ही शिकायतें चारों ओर सुनाई देती हैं। वास्तवमें कहीं कोई एक तन्दुरुस्त मनुष्य मिल सकना भी कठिन है। इस लिहाजसे आजकलके 'सभ्य' अथवा 'तहजोबयाफ्ता' मनुष्यकी हालत—हर वक्त खाँसी, जुकाम, गुलूबन्द, ठण्डी हवाका झोंका लग जानेका डर इत्यादि—एक ऐसी हालत है, जो हमारे लिए गौरवका कारण हरगिज नहीं कही जा सकती। सच्ची बात यह मालूम होती है कि बावजूद अपने डाक्टरी और चिकित्सा-सम्बन्धी समस्त पुस्तकालयों, अपनी मालूमात, अपने हुनरों और जीवनके समस्त साधनोंके भी वास्तवमें हम उस दर्जेतक भी अपनी हिफाजत नहीं कर सकते, जिस दर्जेतक कि पशु कर लेते हैं। वास्तवमें पशुओंके सम्बन्धमें भी शायद शैले* एक स्थानपर बताता है कि—हम "पालतू" पशुओंकी नसलोंको भी तेजीके साथ खराब करते जारहे हैं। गायों, घोड़ों, भेड़ों और हमपर विश्वास करनेवाली बेचारी पुसी-बिल्लियोंमें भी दिन-प्रति दिन बीमारियां अधिकाधिक बढ़ती जारही हैं। इन्हें अब ऐसे ऐसे रोग होने लगे हैं, जिनका अपनी अधिक जङ्गली हालतमें इन्हें पतातक न था। अन्तमें पृथ्वीकी "असभ्य" अथवा जङ्गली मनुष्य-जातियां भी हमारे इस नाशकर प्रभावसे नहीं बच पातीं। जहां कहीं इन जातियोंका हमारी "सभ्यता" से सम्पर्क होता है, वहां ही वे लोग चेचक, शराबखोरी, और और भी ऐसी, इनसे भी अधिक, बुरी बुरी बीमारियोंसे, जो सभ्यताके साथ साथ चलती हैं, मक्खियोंकी तरह मरने लगते हैं। अक्सर तो 'सभ्यता' का सम्पर्क मात्र ही इन जङ्गली मनुष्योंकी जातियोंको मिटा देनेके लिए काफी होता है।

* १७९२-१८२२, एक सुयोग्य अंगरेज कवि।

किन्तु 'रोग' शब्द जिस तरह हमारी आजकलकी शारीरिक अवस्थाके लिए उपयुक्त है, उस ही तरह हमारी आजकलकी सामाजिक अवस्थाके लिए भी उपयुक्त है। क्योंकि जैसे शरीर-के अन्दर शरीरके विविध अंगोंके बीचके उस ऐक्य अथवा अवि-रोधके नाश होजानेका नाम 'रोग' है, जिसे हम 'तन्दुरुस्ती' कहते हैं, और यह रोग या तो शरीरके विविध अंगोंमें परस्पर लड़ाई वा विरोधका रूप धारण करता है वा किसी एक अंग विशेषकी असाधारण वृद्धिका वा बाहरसे आक्रमक कीड़ों और अन्य जीवोंद्वारा शरीरके धीरे धीरे खा डाले जाने (क्षय) का; इस ही तरह अपने आजकलके सामाजिक जीवनमें भी हम उस सामाजिक ऐक्यको लोप हुआ पाते हैं, जिसके होते हुए ही किसी समाजको "सच्चा समाज" कहना उचित है, और उस ऐक्यके स्थानपर हमें समाजके अन्दर व्यक्तियों और श्रेणियोंके बीच आपसमें लड़ाइयां, कुछकी असाधारण उन्नति और उस उन्नतिके परिणामरूप दूसरोंकी अवनति वा हानि और केवल दूसरोंका खून चूसनेवाले सामाजिक जोखोंके समूहोंके समूहों द्वारा सामाजिक शरीरका धीरे धीरे खाया जाना—यह सब ही दिखाई देता है। मैं कहता हूं कि यदि 'रोग' शब्दका उपयोग कहीं भी ठीक ठीक किया जासकता है तो उस शब्दके यौगिक अर्थमें, और उसके रूढ़ी अर्थमें, दोनों तरहके अर्थोंमें आजकलके "सभ्य" समाजोंके लिए उसका उपयोग अवश्य किया जासकता है।

शारीरिक और सामाजिक अवस्थाओंके अतिरिक्त क्या हमारी मानसिक वा दिमागी अवस्था भी अत्यन्त असन्तोष-जनक नहीं है? मैं उन पागलखानोंकी संख्याकी तरफ़ अथवा उनके महत्त्वकी तरफ इशारा नहीं कर रहा हूं, जो हमारे देश-भरमें कायम हैं और न मैं इस वाकेकी ओर इशारा कर रहा हूं कि दिमाग और मज्जातन्तुओं (nervous system) की

बीमारियां आजकल बहुत ही आम हैं; किन्तु मेरा इशारा उस दिमागी बेचैनी वा मानसिक अशान्तिके विचित्र भावकी ओर है, जो हमारे जन-समूहोंका एक खास लक्षण है; और जो रस्किन*के इस छोटेसे मर्मस्पर्शी वाक्यकी सत्यताको साबित करनेके लिए काफी है कि, हमारे जीवनके दो मुख्य उद्देश्य हैं, "चाहे हमारे पास कुछ भी क्यों न हो—और अधिक प्राप्त करना; और चाहे हम कहीं भी क्यों न हों—कहीं और जाना।" यह अशान्ति और अस्वस्थताका भाव मनुष्यस्वभावके अन्तःतम प्रदेशोंमें—अर्थात् उसके अन्दरकी पाप-पुण्य और सद्-असद्में विवेक करनेवाली शक्तितकमें प्रवेश किये हुए है। उस अन्तःतम प्रदेशमें पहुंचकर यह दिमागी बेचैनीका भाव—जैसाकि तमाम कौमोंमें, विशेषकर उनकी "सभ्यता" के पराकाष्ठाको पहुंचनेके समय होता रहा है—मनुष्यसे अन्तमें यह अनुभव कराने लगता है कि—'मैं पापमें फँसा हुआ हूं।'‡ जबकि हजरत ईसासे पूर्वकी गैर ईसाई और प्रारम्भिक (यूरोपियन) दुनियाके अन्दर इस सम्बन्धमें एक सरल और स्वाभाविक उदासीनता पाई जाती थी, ईसाके बादकी तमाम सदियोंमें उसके ठीक विपरीत हमें यह आन्तरिक संग्राम और विरोधका विचित्र भाव स्पष्ट लगातार बढ़ता हुआ मालूम होता है। और सबसे अधिक विचित्र बात यह है कि हम कुछ मनुष्योंको अपने इस भावपर गर्व करते हुए भी देखते हैं। सम्भव है कि यह भाव भविष्यमें किसी अधिक उत्तम समयके आनेकी सूचना देता हो, तथापि यह स्वयं केवल इस बातकी ही गवाही देता है

* १८१९-१९००, इंगलैण्डका एक सुप्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक।

‡ यह बात ध्यान देनेयोग्य है कि अब (सन् १९२० में) आकर यह भाव करीब करीब लुप्त हुआ मालूम होता है। शायद यह इस बातका सूचक है कि बहुत जल्दी हमारी सामाजिक व्यवस्थामें बहुत बड़ी तब्दीली होनेवाली है।

और दे सकता है कि कमसे कम इस समय मनुष्य-जीवनके अन्तःतम प्रदेश उसके केन्द्र स्थानमेंसे भी ऐक्य जाता रहा, और अस्वस्थता अथवा रोगने घर कर लिया।

निस्सन्देह "सभ्यता" शब्दके विषयमें हमें यह मालूम है कि कभी कभी इस शब्दका एक प्रकारके आदर्श अर्थोंमें भी प्रयोग किया जाता है। "सभ्यता" शब्दसे एक ऐसी भावी उन्नत अवस्थाका अर्थ लिया जाता है,जिसकी ओर कि हम सब बढ़े जारहे हैं। इस विचारके अन्दर यह फर्ज कर लिया गया है कि यदि बहुत काफी समयतक ऊंचे टोपों और टैलिफोनों-का दौर चलता रहा तो अन्तमें हम इस आदर्श परिस्थितितक पहुंच जावेंगे; और इस गतिमें यदि कोई छोटी-मोटी त्रुटियां हैं, जैसीकि हम अभी ऊपर दर्शा चुके हैं, तो वे केवल इत्तफाकिया और चन्दरोजा हैं। लोग कभी कभी सभ्यता और "चरित्रकी उच्चता" इन वाक्योंका इस तरह उपयोग करते हैं, जैसे वे समानार्थी हों। निस्सन्देह यदि वे इन ही अर्थोंमें "सभ्यता" शब्दका उपयोग करना चाहें तो उन्हें अधिकार है। किन्तु यह बात कि आजकलके मनुष्य-जीवनकी वास्तविक प्रवृत्तियां समष्टि रूपसे मनुष्यको उच्च चरित्रकी ओर लेजानेवाली हैं वा नहीं, कमसे कम एक संदिग्ध बात है; सिवाय इसके कि एक सर्वथा अप्रत्यक्ष और गौण ढंगसे, जिसका जिकर आगे किया जावेगा, इनका प्रभाव भले ही अच्छा पड़ता हो। जो कोई उस गौरवान्वित जन्तुके गुणों वा रूपका एक अन्दाज़ा लगाना चाहता है, जिसे वास्तवमें वर्त्तमान "सभ्यता" गढ़कर तय्यार कर रही है,उसे मई सन् १८८३ की "नाइनटीन्थ सैञ्चुअरी" नामक पत्रिकासे मिस्टर के, रौबिन्सनके उस लेखको पढ़ लेना चाहिए, जिसमें वे.बिलकुल संजीदगीके साथ और विज्ञानके नामपर पेशीनगोई करते हैं कि भविष्यमें चलकर इंसानके न दाँत हुआ करेंगे, न शिरपर बाल, और न पैरोंकी उंगलियां रहेंगी।

उसके पुट्ठे कमजोर और ढीले होंगे और हाथ-पांव चलने-फिरनेके करीब करीब नाकाबिल होंगे !

यह सब सोचकर शायद यही अधिक अच्छा हो कि "सभ्यता" शब्दका उपयोग ऐसे आदर्श अर्थोंमें न किया जावे, किन्तु (जैसा आज भी प्रारम्भिक मनुष्य-समाजोंके समस्त इतिहास-लेखक करते हैं) "सभ्यता" शब्दसे केवल एक विशेष ऐतिासिक अवस्थाका मतलब लिया जावे, जिसमेंसे होकर विविध कौमें गुजरती हैं और जिसमें हम स्वयं इस समय अपनेको पाते हैं। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यह ऐतिहासिक अवस्था किस समयसे शुरू हुई। निस्सन्देह ऐतिहासिक विकासके किसी भी कालविशेष वा किसी भी अवस्थाविशेषके विषयमें यह बता सकना कठिन है कि उस काल वा उस अवस्थाका ठीक ठीक प्रारम्भ किस समयसे होता है, तथापि इस विषयके समस्त विद्वान इस बातमें सहमत हैं कि जबसे मनुष्य-समाजमें प्राचीन जातीय वा सम्मिलित सम्पत्तिसे, हटकर व्यक्तिगत सम्पत्तिका रिवाज पड़ा और उसके साथ साथ उससे सम्बन्ध करनेवाले कई तरहके नए विचार और नई संस्थाएं मनुष्य-समाजमें कायम हुईं, तबसे ही मनुष्य-समाजकी रचनामें इस तरहकी तब्दीलियां वाके हुईं कि जिनके कारण उसके बादकी अवस्थाको उससे पूर्वकी 'जंगली' अशिष्ट अथवा 'असभ्य' अवस्थाओं (Savagery and Barbarism) से बिल्कुल पृथक् करके खासी अच्छी तरह एक अलग नाम दिया जासकता है। यह भी दिखाया जाचुका है कि 'धन' के बढ़ते और उसके साथ साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति वा व्यक्तिगत मिलकीयतके नए विचारके उत्पन्न होनेके कारण मनुष्यके सामाजिक जीवनमें कुछ खास खास और नई संस्थाएं पैदा होगईं। प्राचीन समयकी समाज-पद्धति बड़े बड़े कुलों (Gens) अथवा कबीलों* पर कायम थी। एक कुल वा

*एक एक कुल वा कबीलेमें सैकड़ों और हजारों कुटुम्ब शामिल होते थे।

एक कबीलेके सब लोग, जो एक पूर्वजकी औलाद होते थे, मिलकर एक साथ रहते थे और सब बराबर समझे जाते थे। कबीलेकी सम्पत्ति सबकी एक समान सम्पत्ति समझी जाती थी। व्यक्तिगत मिलकीयतके विचारने आकर उस पद्धतिका नाश करा दिया और उसकी जगह गरीबी और अमीरीके भेदके आधारपर भिन्न भिन्न श्रेणियोंका एक नया समाज खड़ा कर दिया। प्राचीन कालमें स्त्रियां पैतृक सम्पत्तिकी अधिकारिणी गिनी जाती थीं, और माताओंद्वारा ही सबको पैतृक सम्पत्तिपर अधिकार प्राप्त होता था। नये विचारने उस पद्धतिका नाश करके उसकी जगह स्त्रीको पुरुषकी मिलकीयत बना डाला। प्राचीन पद्धतिके अनुसार समस्त भूमि कबीले जाति वा समाजकी भूमि समझी जाती थी। किन्तु नये विचारके साथ साथ जमीनकी भी व्यक्तिगत मिलकीयतका रिवाज पड़ गया और उसके परिणामरूप लाखों-करोड़ों ऐसे मनुष्योंकी एक अलग श्रेणी बन गई, कि जिनकी अपने देशमें रहते हुए भी अपनी कोई जमीन नहीं है, यानी जो अपने देशमें भी विदेशी हैं; किराया, लगान, रहन, सूद इत्यादिकी समस्त कुप्रथाएं इसीसे पैदा हुईं। नये विचारने (पुराने बराबरीके भाईचारे और बराबरीके मिलकीयतके स्थानपर) आका और गुलाम, खेतका मालिक और खेतके मजदूर, जमींदार और रिआया, धनवान और मजदूरीपेशा—ये सब भेद पैदा कर दिये ,जो सबके सब केवल एक श्रेणीके लोगोंपर दूसरी श्रेणीवालोंके प्रभुत्वकी मुखतलिफ शकलें हैं; और अन्तको इस समस्त प्रभुत्वको पक्का करनेके लिए नये विचारने गवर्नमेण्ट (राज्य) और पुलीस, इन दोनोंकी रचना की। जितनी मनुष्य-जातियोंके इतिहाससे हम परिचित हैं और जितनी इस नामधारी "सभ्यता" तक पहुंची हैं, वे सबकी सब इन, ऊपर बयान की हुई, तब्दीलियोंमेंसे गुजर चुकी हैं। और यद्यपि छोटी-मोटी

तफसीलमें कहीं कहीं फरक होसकता है और थोड़ा-बहुत हुआ भी है, तथापि हर जातिके इतिहासमें परिवर्त्तनका मुख्य क्रम करीब करीब यही रहा है। इसलिए हमारा यह कहना बिल्कुल उचित है कि "सभ्यता" एक ऐसी ऐतिहासिक अवस्थाका नाम है, जिसका प्रारम्भ मोटे तौरपर उस समयसे हुआ, जिस समयसे व्यक्तिगत मिलकीयतके आधारपर मनुष्य-समाज श्रेणियोंमें बंट गया; और एक श्रेणीका दूसरी श्रेणी-पर राज्य शुरू हुआ। लुई मौरगन अपनी पुस्तक "Ancient Society" (अर्थात् "प्राचीन समाज") में लिखनेकी ईजादको और उसके परिणामरूप लिखे हुए इतिहास और लिखे हुए कानूनों वा धर्मशास्त्रोंको भी "सभ्यता"-कालके प्रारम्भके चिन्होंमें गिनता है। एक दूसरा विद्वान एञ्जेल्स अपनी पुस्त-कके अन्दर अत्यन्त प्रारम्भिक रूपमें भी 'सौदागर' अथवा 'व्यापारी' के प्रकट होनेके महत्त्वको दर्शाता हुआ उसे सभ्यता-कालके प्रारम्भका एक चिन्ह बतलाता है। और पिछली सदीके फ्रान्सीसी लेखकोंने 'सभ्य कौमों'की जगह एक नया समानार्थी वाक्य Nations Poliices (अर्थात् पुलीसमैनोंवाली कौमें) ईजाद करके एक अच्छा नुक्ता निकाला; क्योंकि जिस कालपर हम बहस कर रहे हैं, उसका और उसके सामाजिक पतनका शायद पुलीसके अस्तित्व जैसे नीचतम दृश्यसे बढ़कर वा अधिक सर्वव्यापी चिन्ह दूसरा नहीं मिल सकता। नीचतम उसे मैं इसलिये कहता हूं क्योंकि प्रत्येक ही "सभ्य" कौममें आजदिन सहस्रों जनसमूह थोड़ेसे वेतन पानेवाले पुलीसवालोंके सामने गिड़गिड़ाते हुए रींगते फिरते हैं। यदि उत्तरीय अमरीकाकी किसी भी ढंगकी प्राचीन आदिम निवासी जातिके लोगोंसे यह कहा जाता कि तुम्हें ठीक वा तरतीबमें रखनेके लिए 'पुलीस-वालों' की जरूरत है, तो उन्हें इस बातको सुनकर जो क्रोध आता, उसका हम अनुमानतक नहीं कर सकते!

यदि हम "सभ्यता" की इस ऐतिहासिक परिभाषाको लें तो हमें मालूम होगा कि हमारी "अंगरेजी सभ्यता" को शुरू हुए मुश्किलसे एक हजार वर्षसे कुछ ऊपर हुए, और इसपर भी अधिक प्रारम्भिक सामाजिक अवस्थाके अवशेष उसके बहुत दिनों बादतक भी हममें जारी रहे। रोमकी सूरतमें—यदि हम शुरूके बादशाहोंके पिछले समयसे लेकर रोमके पतनतक गिनें तो वहां—भी लगभग एक हजार वर्ष ही होते हैं। 'यहूदी सभ्यता' दाऊद और सुलेमानसे लेकर नीचेतक—बीचके कुछ अन्तरालोंको छोड़कर—एक हजार वर्षसे कुछ ऊपरतक जारी रही। यूनानकी सभ्यता इससे कम समयतक रही। प्राचीन मिश्रमें एक, दूसरेके बाद कई सभ्यताओंका एक क्रम मिलता है। इन सभ्यताओंमेंसे जिनको हम इस समय अलग अलग कर सकते हैं, वे सब मिलकर एक हजार वर्षसे बहुत ऊपरतक जारी रहीं। किन्तु इस सबमें दो महत्त्वकी बातें देखनेयोग्य हैं। एक यह कि इन तमाम सभ्यताओंमें* (और अनेक ही अन्य सभ्यताओंमें भी) गति बिल्कुल एकहीसी रही है, ठीक उस ही तरह जिस तरह कि विविध मनुष्योंमें एक ही बीमारीकी गति (आदिसे अन्ततक) एकहीसी होती है। दूसरे यह कि—जैसा हम पहले कह आये हैं—अभीतक कोई कौम भी इस 'सभ्यता' नामक रोगसे अच्छी होकर और उसमेंसे निकलकर इससे आगेकी अवस्थातक नहीं पहुंची, बल्कि अधिकतर ज्यों ही इस रोगके प्रधान प्रधान लक्षण प्रकट हुए, त्यों ही उसके थोड़ेसे समयके बाद वह कौम खतम होगई।

तथापि कहा जासकता है कि सम्भव है यह सच हो कि 'मानव-इतिहासकी एक अवस्था-विशेष' के अर्थोंमें "सभ्यता" के अन्दर रोगके कुछ लक्षण दिखाई देते हैं; किन्तु क्या इस

* सबूतके लिए Engles की पुस्तक देखी जा सकती है वा पाठक स्वयं अपने इतिहासके अध्ययनसे देख सकते हैं।

बातके मान लेनेकी भी कोई वजह है कि 'सभ्यता' से पहले-की अवस्था—अर्थात् मनुष्योंकी जंगली-अवस्थामें रोग किसी न किसी रूपमें इससे कम पाये जाते थे? हमारा उत्तर है—हां, हम समझते हैं काफी वजह है। हमारा पक्ष यह नहीं है कि जिसे "उदार असभ्य मनुष्य" (The noble savage) कहा जाता है, वह शारीरिक दृष्टिसे वा किसी भी अन्य दृष्टिसे आदर्श मनुष्य था, क्योंकि ऐसा कहना यथार्थ प्रतीत नहीं होता। हमें इस बातका भी विश्वास है कि अनेक बातोंमें वह निस्सन्देह 'सभ्य मनुष्य' से घटिया था। किन्तु साथ ही हमारा विचार है कि कई बातोंमें हमें यह भी मानना पड़ेगा कि असभ्य मनुष्य सभ्य मनुष्यसे बढ़कर था; और उसमेंसे एक बात यह है कि मुकाबलेतन वह रोगोंसे आजाद था। लुई मौरगन जो स्वयं अमरीकाके आदिम निवासियोंमेंसे इरोकोई नामकी जातिमें रहकर बड़ा हुआ था और जिससे ज्यादह शायद कोई भी गोरा आदमी उत्तरीय अमरीकाके असली बाशिन्दोंके विषयमें वाकफीयत न रखता होगा, अपनी पुस्तक "Ancient Society" में पृष्ठ ४५ पर लिखता है कि—"असभ्यताके अन्तके दिनोंमें बड़े बड़े जसीम असभ्य मनुष्य उत्पन्न होते हैं।" और यद्यपि आजदिन पृथ्वीपर कोई ऐसी प्राचीन जातियां नहीं हैं, जो होमरके समयके यूनानियों वा लाइकरगंस*के समयके स्पार्टा-निवासियोंकी तरह "असभ्यता" की सबसे अन्तिम और सबसे उन्नत अवस्थामें हों, तथापि जिन असभ्य जातियोंसे हम परिचित हैं, उनमेंसे यदि हम सबसे उन्नत जातियोंको लें—जैसेकि बीस-तीस वर्ष पूर्वके अमरीकाके ईरोकोई लोग, जिनका ऊपर जिकर आचुका है, अफ़रीकामें नियास्सा झीलके आसपासकी कुछ

* हजरत ईसासे साढ़े आठ सौ वर्ष पूर्वके दो प्रसिद्ध यूनानी, होमर एक प्रसिद्ध महाकवि था, और लाइकरगस एक विद्वान नीतिज्ञ, जिसका बनाया हुआ धर्मशास्त्र सात सौ वर्ष तक स्पार्टा नगरमें जारी रहा। अ०

काफिर जातियां, जो इस समयतक औरोंकी अपेक्षा "सभ्यता" से अस्पृष्ट हैं और सम्भव है कुछ वर्ष और रहें, वा युओयेस नदीके बराबर बराबर रहनेवाली तीस-चालीस वर्ष पूर्वकी वे जातियां, जिनका वैलूसकी पुस्तक "Travels on the Amagon में जिकर आता है—यानी यदि हम उन सब जातियोंको लें जो मौरगनके शब्दोंमें 'असभ्यता"की (मध्य) अवस्था (Middle stage of Barbarism) में हैं—तो निस्सन्देह हमारी इस समयकी बात सिद्ध होजाती है अर्थात् इनमेंसे प्रत्येक जातिमें हमें सुन्दर और 'स्वस्थ' मनुष्य दिखाई देते हैं। कप्तान कुक अपनी पहली यात्राके वृत्तान्तमें ओताहेते टापू (जिसे ताहिती भी कहते हैं) के बाशिन्दोंके विषयमें लिखता है कि—"जितने दिन हम इस टापूमें रहे, हमने किसीमें भी कभी कोई गहरी बीमारी नहीं देखी और जो दो एक-बार हमने किसीकी तबियतमें हलकीसी खराबी भी देखी तो उसका कारण केवल इत्तफाकिया पेटका दर्द था।" आगे चलकर न्यूजीलैण्डके बाशिन्दोंके विषयमें वह लिखता है कि—"इन लोगोंकी तन्दुरुस्ती बिल्कुल कामिल है और उसमें कभी किसी तरहका फरक नहीं आने पाता। जितनी बार हम इन लोगोंके ग्रामों वा कस्बोंमें गये, जहांपर कि जवान और बूढ़े, मर्द और औरतें, सब हमारे चारों तरफ़ जमा होजाते थे, हमने कभी कोई एक मनुष्य भी ऐसा नहीं देखा, जिसे किसी तरहकी भी कोई शारीरिक शिकायत मालूम होती। हमने जिन असंख्य पुरुष-स्त्रियोंको नंगा देखा है, उनके बदनपर कभी कहीं एक बार भी कोई छोटासा भी फोड़ा वा फुंसी नहीं देखी और न कोई ऐसा निशान देखा, जो किसी फोड़े-फुंसीके बाद रह गया हो।" ये शब्द काफी कड़े हैं। निस्सन्देह इनमेंसे जो जातियां "सभ्यता" के साथ कभी भी सम्पर्कमें नहीं आईं, उनमें भी बीमारियां होती हैं, किन्तु हम समझते हैं हम यह कह सकते हैं कि उच्च कोटिकी असभ्य

जातियोंमें बीमारियां और अधिक कम होती हैं और इतनी विविध प्रकारकी तथा इतनी आम हरगिज किसी तरह नहीं होतीं जितनी कि हम लोगोंके आजकलके जीवनमें। बाहरसे किसी आघात वा चोटका पहुंचना निस्सन्देह इन लोगोंके लाचार हो जानेका सबसे आम कारण होता है। किन्तु सब लेखक इस बातको भी स्वीकार करते हैं कि इन जातियोंमें अपने जख्मोंको भर लेने वा उन्हें चङ्गा कर लेनेकी शक्ति आश्चर्यजनक होती है। काफिर जातिका जिक्र करते हुए जे० जी० वुड लिखता है "उनकी तन्दुरुस्ती इतनी अच्छी होती है कि वे ऐसी ऐसी चोटोंसे अच्छे होकर बच जाते हैं, जिनसे कोई भी सभ्य यूरोप-निवासी प्रायः तत्क्षण मर जावे।" मिस्टर फ्रैंक ओट्स अपनी डायरी('Matabele Land and the Victoria Falls' P, 209) में एक आदमीका हाल बयान करते हैं, जिसे वहांके बादशाहने मौतकी सजा दी थी। उसे कुल्हाड़ोंसे काटा गया और मरा हुआ समझकर छोड़ दिया गया। वे लिखते हैं कि,—

"उसके शिरके पीछेकी तरफ एक जख्म था जो अवश्य उसकी पीड़ाओंका सदाके लिए अन्त कर देनेवाला अन्तिम जख्म समझा गया होगा और इसी उद्देश्यसे उस जगह वार किया गया होगा। इस जगह उसकी खोपड़ीका एक खासा बड़ा हिस्सा टूटकर अलग होगया था। निस्सन्देह यहांपर वार करनेवालेका लक्ष्य रीढ़की हड्डी और दिमागके जोड़पर हड्डीके अन्दरके प्रधान तन्तुओंको काट डालता रहा होगा। किन्तु वार जोड़के स्थानसे जरा ऊपर हुआ; तथापि उससे एक ऐसा जख्म बन गया कि मेरी समझमें कोई भी मनुष्य उससे जिन्दा न बच रह सकता था।...जब मैंने जख्मको देखनेके लिए लालटेन हाथमें उठाई तो मैं खोपड़ीके नीचेके हिस्सेमें एक सूराख देखकर घबराकर पीछे हट गया। यह सूराख शायद दो इञ्च लम्बा और डेढ़ इञ्च चौड़ा था। और मुझे यह कहनेकी हिम्मत नहीं होती

कि कितना गहरा था, किन्तु, निस्सन्देह गहराई भी इञ्चों ही रही होगी। निस्सन्देह यह सूराख दिमागके गूदेमें गया हुआ था और शायद बहुत दूरतक अन्दर गया हुआ था। मैं कह सकता हूं कि एक चुहिया उसके अन्दर बैठ सकती थी।" इसपर भी वह"असभ्य" मनुष्य इतना ज्यादह घबराया हुआ न था।...... "उसने अपनी तम्बाकूकी पाइप मांगी और एक प्याला शराबका मांगा," और अन्तको पूरी तरह अच्छा हो गया! निस्सन्देह यह कहा जासकता है कि इस तरहके किस्सोंसे केवल असभ्य मनुष्योंके दिमागोंकी हीनता अर्थात् दिमागी बनावटका मोटा-पन साबित होता है। किन्तु कमसे कम काफिर जातिके लिए यह भी नहीं कहा जा सकता। ये लोग तेज अक्लके होते हैं, इनके दिमाग बड़े होते हैं, और दलील करनेमें बड़े ही चतुर होते हैं। इस अन्तिम बातका परिचय प्राप्त करनेमें कोलेन्जोको उनके सामने झेंपना पड़ा था।

एक और बात, जिससे मालूम होता है कि इन पुरानी 'असभ्य' जातियोंकी तन्दुरुस्ती कितनी गजबकी और कितनी गैरमामूली होती है, वह इनका आश्चर्यजनक जिस्मानी जोश और इनकी बरदाश्तकी ताकत है! काफिरोंका रात रातभर लगातार चिल्लाना, गाना और नाचना केवल देखकर ही मामूली आदमी पूरी तरह थक जाता है, और उत्तरीय अमरीकाकी अधिक गम्भीर प्राचीन जातियां लड़ाईके लिए अपनी उत्सुकतामें और पीड़ाओंका उदासीनताके साथ मुकाबला करनेमें उतनी ही ज़बरदस्त जीवन-शक्तिका सबूत देती हैं।*

* जो यूरोप निवासी बहुत समयतक अधिक कुदरती हालतोंमें रहे हैं, उनमें भी ऐसी ही जिस्मानी तन्दुरुस्ती और जीवन-शक्ति पैदा हो जाती है। इस विषयमें हमारी कमज़ोरीका कारण हमारा कोई जातीय दोष नहीं है। शायद क्षमतामें हमारी जाति किसी भी दूसरी जातिसे बढ़कर है। दोष उन कृत्रिम और खिलाफ़ कुदरत परिस्थितियोंका है जिनमें हम रहते हैं।

इसी तरह जब हम इन अधिक जंगली जातियोंके सामाजिक जीवनपर दृष्टि डालते हैं तो—चाहे वह सामाजिक जीवन कितना ही मोटे तर्जका और अनुन्नत क्यों न हो, तथापि—प्रायः समस्त इतिहासज्ञ और यात्री इस बातकी तसदीक करते हैं कि अपनी सीमाओंके अन्दर इन जातियोंका सामाजिक जीवन 'सभ्य' कौमोंके सामाजिक जीवनकी निस्बत अधिक प्रेममय, अधिक विरोधरहित, अधिक दृढ़ और अधिक संगठित है। एक जातिके लोगोंमें भिन्न भिन्न व्यक्तियोंकी हैसियतसे कभी आपसमें लड़ाइयां नहीं होतीं। हमारी तरह उनका समाज ऐसी श्रेणियों-में बँटा हुआ नहीं है, जो एक दूसरेका शिकार करती रहती हों; और न उनमें अनुत्पादक निठल्ले लोग जोखोंके समान पड़े पड़े समाजका खून चूसते रहते हैं। इन, 'असभ्य' जातियोंमें 'सभ्य' कौमोंकी निस्बत सच्ची सामाजिक एकता अधिक है और रोग कम। यद्यपि इनमें भी हर एक जातिके अलग अलग रस्म-रिवाज कड़े, व्यर्थके और अक्सर भयंकर अत्याचारयुक्त (देखो Col. Dodge की पुस्तक "Our Wild Indians") होते हैं, और यद्यपि उनमें प्रत्येक बाहरके आदमीके साथ शत्रु कासा व्यव-हार होनेकी सम्भावना रहती है, तथापि इन सीमाओंके अन्दर जातिके सब व्यक्ति शान्तिके साथ मिल-जुलकर रहते हैं। वे मिलकर काम करते हैं, मिलकर उद्योग-धंधे करते हैं, चोरी और एक दूसरेके साथ ज़्यादती उनमें प्रायः कभी भी देखनेमें नहीं आती, सामाजिक ऐक्यका भाव और सबके हितमें अपना हित समझना—ये दोनों बातें उन सबमें खूब मज़बूत होती हैं। "अपने गिरोहोंके अन्दर अमरीकाके आदिम निवासी एक दूसरेके साथ पक्के ईमानदार हैं। जितने दिनोंतक मेरा उनसे सम्बन्ध रहा, उस समस्त समयमें मैंने इस तरहकी चोरी की छैसे ज्यादह घटनाएं नहीं सुनीं। किन्तु यह आश्चर्यजनक और गैर-मामूली ईमानदारी उनके अपने गिरोहके लोगोंसे बाहरतक नहीं

जाती। अपने गिरोहसे बाहरके सब लोगोंके लिए ये लोग न केवल दुनियाभरके पक्के चोरही हैं,वरन् इस तरहकी चोरीकी आदत यानी दूसरी कौमवालोंका माल चुरानेकी आदत, उनके गिरहोंमें बड़ी ही प्रशंसनीय समझी जाती है।" (DodgeP. 64.) एक दूसरा विद्वान् अफरीकाके आदिम निवासियोंके विषयमें लिखता है कि,"यदि कोई भी मनुष्य काफिर जातिके देशमें सफर करना चाहे तो उसे खाने पीनेकी फिक्र करनेकी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि उसे कोई न कोई झोंपड़ी या शायद ग्राम अवश्य मिलेगा और इसमें भी कोई सन्देह नहीं किया जासकता कि वहांपर उसे खाना और ठहरनेका स्थान दोनों अवश्य दिये जावेंगे।" (Wood's Natural History of man.) ए० आर० वैल्लेस अपनी पुस्तक—"Malay Archipelago" Vol. ii. P. 460 में लिखता है—"मैं दक्षिण अमरीकामें और पूर्व (यानी एशिया) में ऐसी जातियोंके साथ रहा हूं, जिनके यहां न कोई कानून है और न ग्रामकी जनताकी रायके अतिरिक्त कोई अदालतें हैं।... तथापि प्रत्येक मनुष्य बड़ी सावधानाके साथ अपने साथियोंके अधिकारोंका मान और उनकी रक्षा करता है और बहुत ही कम, शाजो नादिर ही कभी, कोई दूसरेके अधिकारका उल्लंघन करता है। ऐसी जातिमें सब ही लगभग बराबर माने जाते हैं। शिक्षित और अशिक्षित,धनी और निर्धन, मालिक और नौकरके वे ज़बर-दस्त भेद, जो हमारी "सभ्यता" द्वारा मनुष्य-समाजमें पैदा हो-गये हैं, वहांपर दिखाई नहीं देते।" निस्सन्देह अब सब कोई इस बातको स्वीकार करते हैं कि पहलेकी मनुष्य-जातियोंका इस प्रकार मिला-जुला,संयुक्त जीवन, उनमें श्रेणी-विभागका अभाव और उनमें गरीब-अमीरके भेदका न होना, ये तीनों बातें पहलेके 'असभ्य' मनुष्यों और आजकलके 'सभ्य' मनुष्योंकी हालतोंका खास फरक है।

अन्तमें 'असभ्य' मनुष्योंकी मानसिक अवस्थाके सम्बन्धमें,

शायद कोई भी इस बातसे इन्कार करनेवाला न मिलेगा कि "असभ्य" मनुष्य अपने "सभ्य" भाईकी अपेक्षा ज्याद: शान्त-चित्त होता है और पापकी जानकारी वा उसका अनुभव (Consciousness of sin) भी उसमें इतना बढ़ा हुआ नहीं होता जितना सभ्य मनुष्यमें। हमारी मानसिक अशान्ति वह कीमत है, जो हमें अपने अधिक विस्तृत जीवनके लिए देनी पड़ती है। ईसाई मिशनरीको इन "असभ्य" मनुष्योंके पाससे असफल मनोरथ लौटाना पड़ता है क्योंकि वह उनमें इस बातकी समझ पैदा ही नहीं कर सकता कि मनुष्य स्वभावसे ही धूर्त अर्थात् पापी है। (ईसाई मतके अनुसार प्रत्येक मनुष्यको अपनी स्वाभाविक धूर्त्तता वा पाप प्रवृत्तिको स्वीकार करना चाहिये और ईश्वरीय दयासे अपने पापोंके लिये क्षमा मांगनी चाहिये)। एक गोरी अमरीकन स्त्रीके पास एक हब्शी औरत नौकर थी। एक दिन उस हब्शी औरतने अगले दिन सुबहके लिए यह कहकर छुट्टी मांगी कि 'कल मैं होली कम्यूनियनमें जाना चाहती हूं।' (होली कम्यूनियन ईसाइयोंकी एक मजहबी रस्म है) मालकिनने उत्तर दिया,—"तुम्हें छुट्टी देनेमें मुझे कोई ऐतराज नहीं, किन्तु क्या तुम समझती हो कि, तुम्हारा कम्यूनियनमें जाना ठीक है? तुम्हें मालूम है कि पिछले सप्ताह जो तुमने बत्तख चुराई थी उसके लिए तुमने आजतक कभी अफसोस प्रकट नहीं किया।" उस हब्शी स्त्रीने उत्तर दिया —"मेमसाहब! क्या आप समझती हैं कि मैं अपने तथा अपने मालिक ईश्वरके बीचमें एक बूढ़ी बत्तखको आने दूंगी?" किन्तु मजाकको छोड़कर और मनुष्यके अन्तिम विकाशके हितमें थोड़े समयके लिए उसके अन्दर 'पापकी इस जानकारी' का पैदा होना चाहे कितना भी आवश्यक क्यों न हो तथापि हमें यह साफ दिखाई देता है कि, मनकी जिस अवस्थामें इस जानकारीका अभाव है वह अवस्था अत्यन्त स्पष्टरूपसे स्वस्थ और

तन्दुरुस्त है। यह बात भी हम अपनी नजरोंसे छिपा नहीं सकते कि कला-कौशल (Art) के सर्वोत्कृष्ट पदार्थोंमेंसे कुछ शुरू जमानेके यूनानियोंके समान ऐसे लोगोंके पैदा किये हुए हैं जिनमें इस 'पापकी जानकारी' का अभाव था, और इस तरहके पदार्थोंका ऐसे लोगोंमें रखा जाना नामुमकिन था जिनमें यह जानकारी खूब बढ़ी हुई हो।

यद्यपि जैसा हम ऊपर कह आये हैं आजदिन पृथिवीपर 'असभ्यता' की अन्तिम अवस्थाके अर्थात् उस अवस्थाके मनुष्य नहीं हैं जो "सभ्यता" के प्रारम्भसे ठीक पहले होतो है, तथापि प्राचीन यूनानके कवि होमरके काव्योंमें और अन्य विविध कौमोंके आदि समयके यानी उनकी सभ्यताके सूर्योदयके समयके साहित्योंमें हमें "असभ्यता" कालकी उस अन्तिम अवस्थाके एक गौण ढंगसे उल्लेख किये हुए हालात मिलते हैं। यह उल्लेख हमें विश्वास दिलाते हैं कि उस समय मनुष्यकी हालत आज-कलकी उन "असभ्य" जातियोंकी हालतसे जिनका मैंने ऊपर ज़िक्र किया है बहुत कुछ मिलती-जुलती है यद्यपि कुछ अधिक उन्नत थी। इसके अलावा "सतयुग"(Golden age)* सम्बन्धी अगणित कथाओंमें, और "स्वर्गसे मनुष्यके पतन" इत्यादिकी कहानियोंमें‡ हमें एक विचित्र ढंगसे इस बातका पता चलता

---

* J. S. Stuart Glennie अपनी पुस्तक "Europe and Asia" Ch. I Servia, में लिखते हैं कि,—"इतने सुन्दर दृश्यने इस अनुमानको जो वैसे ही अत्यन्त सम्भव था, आसानीसे विश्वास करने योग्य बना दिया कि प्राचीन समयका "स्वर्णयुग" (सतयुग) कवियोंकी कल्पना मात्र ही न था, बल्कि उस प्रारम्भिक समयके ग्राम-संघटन और सम्मिलित कुछ पद्धतिके समयके सामाजिक जीवनकी सच्ची घटनाओंकी एक यादगार था।

‡ वास्तवमें यह एक ध्यान देने योग्य घटना है कि इस तरहकी कहानियां तमाम कौमोंमें किसी न किसी रूपमें मिलती हैं—अ०

है कि बहुतसी क़ौमें "सभ्यता" की ओर बढ़ते हुए शुरूमें किसी न किसी समय इस बातको अनुभव करती थीं कि,उन्होंने अपने पूर्व समयके सन्तोष और शान्तिको हाथसे खो दिया। अपने इस अनुभवको ही इन लोगोंने काव्योंकी सजावट और अत्युक्तिके साथ प्रारम्भिक स्वर्ग वा सतयुग की कल्पित कहानियोंके रूपमें लेखबद्ध कर दिया। निस्सन्देह कुछ लोगोंने इस तरहकी कहानियोंकी सर्वव्यापकताको देखकर और इस बातको देख-कर कि इन कहानियोंमें तथा अन्य अत्यन्त प्राचीन पौराणिक कथाओं और लेखोंमें इधर उधर अद्भुत ज्ञानकी बातें भी छिपी हुई हैं, यह फर्ज कर लिया है कि वास्तवमें "सभ्यता" के युगसे पूर्व कोई आम बहिश्तका बाग जिसमें आदम और हव्वा रहते थे वा अटलाण्टिक टापू (एक कल्पित टापू) रहा होगा। किन्तु उपस्थित घटनाओंसे इस तरहके फर्ज करनेकी जरूरत मालूम नहीं होती। तथापि मैं समझता हूं कि, हम इस नतीजेपर पहुंचे बगैर नहीं रह सकते कि प्रत्येक मनुष्यकी आत्माके अन्दर किसी न किसी प्रकारकी एक स्मृति इस बातकी मौजूद है कि, वह किसी न किसी समय आजकलकी निस्बत एक अधिक निर्विकार, अधिक प्रेममय, अधिक निर्दोष और अधिक परिपूर्ण जीवन व्यतीत कर चुका है; और इसी एक स्मृतिद्वारा अनेक प्रकारकी पौराणिक कथाओं और कहानियोंकी उत्पत्ति हो सकना सम्भव है।

अफरीकाकी 'न्यासा' झीलके इधर उधर रहनेवाली प्राचीन मनुष्य-जातियोंके विषयमें मिष्टर ऐच० बी० कौटेरिलके नीचे लिखे विचार अवश्य मनोरञ्जक होंगे, क्योंकि मिस्टर कौटेरिल् सन् १८७६ से १८७८ तक उस समय उन लोगोंके बीचमें जाकर रहे थे जिस समयतक कि प्रायः और कोई भी वहां न गया था। वह लिखते हैं कि;—

"केवल जिस्मानी तरक्की और तन्दुरुस्तीके विषयमें, यानी

जिस्मानी ताकतों (देखने सुनने इत्यादिकी ताकतों) की बारीकी, तेजी और उनके नाजुक कमालके विषयमें अफरीकाके जङ्गली मनुष्य आम तौरपर हमसे इतने बढ़कर हैं कि हममें और उनमें मुकाबला ही नहीं किया जा सकता। उनके साथ सफर करते हुए या शिकार खेलते हुए, हम लोग बच्चोंकी तरह बिलकुल अपने तईं उनके काबूमें महसूस करते हैं। यह सच है कि उनमें बहुतसे ऐसे लोग भी हैं (विशेषकर उन कमजोर जातियोंमें जिनमेंसे गुलाम पकड़नेके लिये यूरोपवालोंने जानवरोंकी तरह शिकार खेला है और जिन्हें सरसब्ज जमीनोंसे खदेड़कर बंजर कोनोंमें भगा दिया गया है)—उनमें बहुतसे ऐसे भी मिल सकते हैं जो पेटके भूखे और शरीरके सूखे हुए हैं, किन्तु आम तौरपर शारीरिक रूप और शक्तियोंकी दृष्टिसे वे इन्सानके बड़े ही बढ़िया नमूने हैं। उनके चरित्रमें उस खास बलकी बहुत कमी है जो शिक्षित 'सभ्य' मनुष्यके अन्दर जीवनकी जड़ोंके 'भूत' और 'भविष्य' तक पहुंच जानेसे पैदा होता है—और बावजूद देखने, सूंघने आदिकी ताकतोंमें अपनी जबरदस्त श्रेष्ठताके वे गोरे लोगोंकी इस बढ़ी हुई चरित्र-शक्तिको महसूस करते हैं और उसे कबूल करते हैं। प्राचीन यूनानके एक आत्म-तृप्त और उदासीन स्टोइक महात्माके (स्टोइक सम्प्रदाय प्राचीन यूनानकी एक मशहूर दार्शनिक सम्प्रदाय) वे बिलकुल विपरीत हैं—"अज्ञात" (Unknown) की 'स्तुति' करने और उसकी पूजा करनेमें वे बच्चोंके समान (सरल) हैं! इसीलिये यद्यपि उनमें आत्म-निग्रह और आत्म-गौरव दोनों मौजूद होते हैं तथापि घमण्ड (Conceit) का उनमें बिलकुल निशानतक नहीं होता। जिनसे वे प्रेम करते हैं और जिनकी वे इज्जत करते हैं; उनके साथ वे वफादार और सच्चे खिदमती होते हैं। उनकी इस वफादारी और खिदमतगुजारीका कारण किसी धर्मशास्त्रकी आज्ञा नहीं बल्कि उनका वैयक्तिक स्नेह है। शत्रु के

साथ वे, बिना किसी अन्तःकरणकी झिझकके दगाबाजी भी कर सकते हैं, और अमानुषिक निर्दयता भी दिखा सकते हैं। मैं कह सकता हूं कि शायद कोई भी विचार एक असभ्य अफरीका-निवासीके दिमागसे इतना कोसों दूर न होगा, जितना कि सार्वजनिक उपकार अथवा शत्रु के साथ प्रेम करना।"

"जिस्मानी बरदाश्तकी ताकतमें हममेंसे चुने हुए पहलवानोंको छोड़कर और कोई अफरीकाके असभ्य लोगोंका कुछ भी मुकाबला नहीं कर सकता। एक बार मेरे आदमियोंने कुविरवे खलीजके इस पारसे उस पारतक लगभग साठ मील अशान्त समुद्रपरसे दस दस फुट लम्बे चप्पुओंसे तूफानके ठीक विरुद्ध दिशामें पचीस घण्टे एक साथ बैठकर मेरी किश्तीको खेया था। वे एक बार भी बीचमें न रुके और न अपनी जगहसे हिले—केवल कभी कभी एक मुट्ठीभर चावल एक दूसरेको पकड़ा देते थे। मैं उस सारे समयमें पतवारपर बैठा रहा—और निस्सन्देह भर पाया!......वे अपने सरोंपर मन मनभर बोझ लगातार दस घण्टेतक दलदलों और जंगलोंमें ले जाते हैं। मेरे चार आदमी दो मन और सोलह सेर वजनके एक रोगी मनुष्यको डोलीमें डालकर मालीकाटा नामकी भयंकर दलदलमें ठीक इस पारसे उस पार दो सौ मिल लेगये। किन्तु आकस्मिक संकटों, तेज और यकायक आनेवाली आंधियों इत्यादिमें वे कुछ नहीं कर पाते।"

दूसरा अध्याय

यह बात साबित करनेके बाद कि "सभ्यता" के समयसे पूर्वकी मनुष्य-जातियोंका जीवन हम लोगोंके जीवनकी निस्बत अधिक तन्दुरुस्त यद्यपि अधिक परिमित था, दूसरा प्रश्न तुरन्त

हमारे सम्मुख यह उपस्थित होता है कि, हमारे जीवनमें यह पतन क्यों हुआ ? शारीरिक, सामाजिक, मानसिक तथा नैतिक "रोग"के इस प्रकार अनेक रूपोंमें और इस जोरोंके साथ प्रकट होनेका अर्थ क्या है ? मनुष्यकी महान और सम्पूर्ण विकाशमें गतिमें इस "रोग" का कौनसा स्थान और उसका क्या मतलब है ?

इस प्रश्नको हल करनेके लिये पहले हमें कुछ सफे इस बातपर खर्च करने पड़ेंगे कि "स्वस्थता" यानी "तन्दुरुस्ती" है क्या चीज़ ।

जब हम समाजके अन्दर अथवा व्यक्तिके अन्दर, शारीरिक अथवा मानसिक "रोग" के अन्तर्गत अर्थोंकी छानबीन करने लगते हैं तो हमें स्पष्ट मालूम होता है कि, जैसा हम एक दो बार ऊपर भी संकेत कर आये हैं, रोगका अर्थ एकता, ऐक्य अथवा एकपनका लोप हो जाता है। इसलिए "स्वस्थता" वा तन्दुरुस्तीका अर्थ होना चाहिये 'एकपन' । और यह एक विचित्र बात है कि अंगरेज़ी शब्द Health (स्वस्थता) का इतिहास हमारे इस वचारका पूरा पूरा समर्थन करता है। सब जानते हैं कि Health (स्वस्थता), Whole (सम्पूर्ण) और Holy (पवित्र वा पूज्य), इन सब शब्दोंका निकास एक ही जगहसे है; और ये शब्द इस बातको सूचित करते हैं कि अत्यन्त प्राचीन समयमें जिन लोगोंने इन शब्दोंको रचा, उनके Health (स्वस्थता) शब्दके अर्थ हमारे अर्थोंसे बिलकुल भिन्न थे ।

* * * *

[यहां पर लेखकने अनेक यूरोपियन तथा अन्य भाषाओंके शब्दोंसे अपने ऊपरके कथनका समर्थन किया है । उसने यह भी दिखलाया है कि स्वयं इञ्जीलमें "तन्दुरुस्त" शब्दके अर्थोंमें Whole (सम्पूर्ण) शब्दका उपयोग किया गया है ।]

* * * *

मालूम होता है कि "स्वस्थता" का उन लोगोंका ख्याल एक भावात्मक ख्याल था—अर्थात् शरीरकी वह हालत जिसमें कि शरीर 'सम्पूर्ण' अथवा 'एक' है—और एक प्रधान शक्ति उस एकपन वा एकताकी हालतको कायम रखे हुए हैं; और रोग उस 'सम्पूर्णता'के टूटकर (Break down) अनेकता वा भिन्नतामें बदल जानेका नाम है।

"स्वस्थता"के विषयमें हमारे आजकलके विचारकी विशेषता यह है कि, हमारा विचार एक सर्वथा अभावात्मक अर्थात् नफीका विचार मालूम होता है। असंख्य रूपोंमें "रोग"की उपस्थितिका हमपर इतना जबरदस्त असर पड़ा हुआ है—उसके खतरे इतने ज्याद: और उसके हमले इतने अचानक होते हैं तथा उनका पहलेसे जान सकना इतना असम्भव होता है—कि 'तन्दुरुस्ती'का अर्थ ही हमारे लिये केवल "रोगका न होना यानी उसका अभाव" रह गया है।

जिस तरहसे कि कोई अकेला भेदिया रातको दुश्मनके केम्पमेंसे अपने लिए रास्ता ढूंढ़कर गुजरता है, जिस तरहसे कि वह शत्रुओंको जगह जगहपर आगके चारों तरफ बैठा हुआ देखता है, और यदि उसके पांवके नीचे एक सूखी टहनीके भी मड़कनेकी आवाज होती है तो कांपने लगता है—इसी तरहसे इस संसारके यात्रीको, एक हाथमें गुलूबन्द और दूसरेमें दवाकी शीशी लिए हुए अपना रास्ता ढूंढ़कर उसपरसे गुजरना पड़ता है, इस डरसे कि कहीं किसी समय भी वह मौतकी सोती हुई सेनाओंको न छेड़ बैठे—बेचारा यात्री अपनेको बहुत ही खुश किस्मती समझता है यदि किसी तरह कभी दाएंको झुकते और कभी बाएंको बचते हुए और केवलमात्र अपनी व्यक्तिगत सलामतीका ख्याल रखते हुए वह बिना दिखाई दिये ज्यों त्यों कर उस पारतक पहुंच जावे!

तन्दुरुस्ती हमारे लिए एक अभावात्मक पदार्थ है—एक

नफीका नाम है। जो खतरे संसारमें हमारे सामने हैं उनको किसी तरह दूर रखना ही हमारे लिए तन्दुरुस्ती है। यदि हमें न गठिया हो और न वाय, न तपेदिक हो और न पित्त-विकार और न सिरका दर्द,न कमरका दर्द, न दिलका दर्द और न "उन हजारों कुदरती पीड़ाओं" मेंसे कोई हो, "जो शरीरके गुण समझे जाते हैं" तो हम अपनेको 'स्वस्थ' वा 'तन्दुरुस्त'कहते हैं। ये सब रोग वा पीड़ाएं असली चीजें हैं। तन्दुरुस्ती केवल उनके अभाव—उनके 'न होने'का नाम है।

आजकलका मत यह है कि जिन्दगीकी मुख्यतर घटना उन अगणित बाह्य वा भौतिक शक्तियोंका अस्तित्व है, जिनके एक बड़े नाजुक मेल वा समतोल द्वारा 'मनुष्य'की उत्पत्ति होती है। इन शक्तियोंके इस खास मेल वा उनके इस समतोलको बराबर कायम रखना एक कठिन कार्य है। और यदि किसी क्षण भी इन शक्तियोंका यह विशेष समतोल नष्ट हो जाता है तो उसी क्षण मनुष्यका भी नाश हो जाता है। आजकलकी समस्त विचार-शैलीमें एक अत्यन्त सूक्ष्म ढंगसे यही ख्याल स्पष्ट प्रवेश किये हुए दिखाई देता है। यह भी जाहिर है कि प्राचीन मत इसके खिलाफ था। प्राचीन ख्याल यह है कि जिन्दगीका मुख्यतर घटना स्वयं "मनुष्य" ही है और उसीका अस्तित्व सबमें प्रधान है और जो बाहरकी शक्तियां कहलाती हैं वे किसी न किसी ढंगसे "मनुष्य"के अस्तित्वके मातहत वा उसके सहायकमात्र हैं।—ये शक्तियां मनुष्यके विकाश वा उसके व्यक्त होनेमें सहायक हो सकती हैं वा बाधक भी हो सकती हैं; किन्तु स्वयं "मनुष्य"को न वे उत्पन्न कर सकती हैं और न उसका नाश कर सकती हैं। सम्भवतः इस विषय पर विचार करनेकी ये प्राचीन और नवीन दोनों प्रणालियां अपना अपना महत्व रखती हैं। एक मनुष्य वह है जो नाश किया जा सकता है और एक "मनुष्य" वह है जिसका नाश नहीं किया

जा सकता। रूह और जिस्म—ये दोनों पुराने शब्द इस भेदको सूचित करते हैं। किन्तु अन्य समस्त शब्दोंके समान इनमें भी यह दोष है कि ये एक ऐसी जगह भिन्नताकी रेखा खींचनेका प्रयत्न करते हैं जहां अन्तमें कोई भिन्नता कहीं है ही नहीं। वे उस जगह पृथकता दर्शाते हैं जहां वास्तवमें एक ही लगातार प्रवाह है।—क्योंकि उस छोटे नाशवान मनुष्यके—जो इस क्षण, इस स्थान विशेषमें रहता है और उस दिव्य और सर्व-व्यापी "मनुष्य" (आत्मा) के—किसका अनुभव भी हमारे अन्दर स्पष्ट मौजूद है—इन दोनोंके बीच अस्तित्वका एक बेटूट चढ़ता हुआ तारतम्य है जिसमें कहीं भी भिन्नता वा पृथकता-की रेखा नहीं खिंच सकती। ये दोनों मिलकर एक अस्तित्व वा एक इकाई है और इनमें हरएक दूसरेके लिए आवश्यक है; न पहला दूसरेके बिना रह सकता है और न दूसरा पहलेके बिना। कतई आगे बढ़ सकता है यानी व्यक्त वा विकसित हो सकता है। * * * *

इसलिए उन पूर्वजोंके विचारके अनुसार और शायद पूर्व समयके उनके तजुर्बेके अनुसार मनुष्यको वास्तवमें तन्दुरुस्त होनेके लिए 'एक' 'इकाई' अथवा एक सम्पूर्ण अस्तित्व होना चाहिये। जिसमें कि उसके अधिक बाहरी और क्षणिक अस्तित्वमें तथा उसके अधिक व्यापक और अविकार्य अंशमें, अर्थात् व्यक्त मनुष्य और उसकी अव्यक्त आत्मा—इन दोनोंमें एक प्रकारका पुत्र-पिताकासा सम्बन्ध यानी वात्सल्य सम्बन्ध कायम रहे, ताकि न केवल शरीरके भीतर और बाहरके सब अंग प्रत्यंगोंका ही, न केवल शरीरकी पाचनक्रिया, विसर्जनक्रिया तथा अन्य सब क्रियाओंका ही, वरन् स्वयं मनके समस्त विचारों तथा वासना-ओंका भी अन्तस्थ आत्माके साथ सीधा और स्पष्ट नाता बना रहे,—अन्तमें जाकर नाशवान प्राणीके शीशेकी तरह शफाफ अर्थात् पारदर्शी हो जानेका यही अर्थ है। प्रत्येक प्राणीके

अन्दर यह ईश्वरीय अंश वा आत्मा ही वह शक्ति है जो उसे बनाए रखती है—जो उसे मिलाकर 'एक' किये रखती है। इसलिए आत्माको ही प्राणीका रक्षक, उसका चङ्गा करनेवाला—उसके शारीरिक और हार्दिक जख्मोंका चङ्गा करनेवाला—मनुष्यके अन्दरका "मनुष्य" माना गया था, जिसको जानना न केवल सम्भव ही था, वरन् जिसको जानकर उसके साथ युक्त हो जानेका नाम ही 'मुक्ति' वा 'निजात' था। मेरी धारणा है कि 'स्वस्थता' यानी 'तन्दुरुस्ती'का और पवित्रता (Holiness) का यही उसूल था, जिसे मानव इतिहासके किसी पिछले समयमें स्वीकार किया गया था और जो हमें धुंधला धुंधला मानो किसी शीशेके अन्दरसे दिखाई दे रहा है।

उस ही दृष्टिसे 'रोग' और 'पाप'का मतलब इसके ठीक विपरीत था,—यानी निर्बलताका आ जाना, धुंधलापन, दुईका भाव—भीतरकी ज्योतिके प्रवाहका रुक जाना; उसके खिलाफ छोटे छोटे और विद्रोही केन्द्रोंका कायम होकर अपना प्रभुत्व दर्शाना; मित्रता, विरोध, आसेबका खलल इत्यादि।

इसी तरह शरीरके अन्दर किसी विद्रोही केन्द्रका कायम हो जाना—जैसे फोड़ा, गिलटी, किसी रोगके कीड़ेका अन्दर प्रवेश कर जाना और समस्त शरीरमें उसकी असंख्य सन्ततिका फैल जाना, शारीरिक अंगोंमेंसे किसी एकका बेहद वा बेतुका बढ़ जाना—इसीका नाम 'रोग' वा 'बीमारी' है। मनके अन्दर रोग उस समय शुरू होता है जबकि कोई एक वासना वा इच्छा अन्य वासनाओंसे अलग होकर अपने तईं चिन्ता और कर्मका एक स्वतंत्र केन्द्र बना लेनेका दावा कर बैठती है। मनके अन्दर "स्वस्थता" की शर्त है, निष्ठाके साथ भीतरके दिव्य "मनुष्य" वा आत्माका आज्ञा पालन।* किन्तु यदि

* कोई शब्द वा पाप पुण्यका कोई सिद्धान्त भी इस बातको न जाहिर कर सकता है और न उसे रूप दे सकता है। किसी भी सद्गुण-

धनका लोभ (धन-निष्ठा) जीवनका स्वतंत्र केन्द्र बन जावे, वा इसी प्रकार, ज्ञानकी लोलुपता, वा यश कामना वा मद्यपानकी इच्छा, वा ईर्ष्या, वा कामवासना, वा दूसरोंसे स्तुति करानेकी इच्छा, वा—पवित्रता, विनय, अपनी बातपर हर हालतमें कायम रहना—इत्यादि किसी भी एक नामधारी सद्‌गुणको लेकर मनुष्य उसीके पीछे पड़ जावे—तो इनमेंसे कोई भी इतना बढ़ सकता है कि जिससे दूसरोंको जबरदस्त हानिका डर हो। ये सब वासनाएं मातहत हैं अथवा मातहत होकर इन्हें रहना चाहिये। और यद्यपि मुमकिन है, कि बहुत कालतक इनका विद्रोही होकर रहना मनुष्यकी पूरी उन्नतिके लिए आवश्यक हो तथापि उस समस्त कालमें वे एक दूसरेके साथ और प्रधान केन्द्रस्थ संकल्प-शक्ति (will) के साथ संग्रामकी अवस्थामें हैं; उस समस्त समयमें मनुष्य खण्डित और पीड़ित हैं—सुखी नहीं हैं।

जब मैं इस तरह शरीर और मनका अलग अलग जिकर करता हूं तो यह याद रखना चाहिये कि, जैसा मैं अभी कह चुका हूं, इन दोनोंके बीचमें भी पृथकताकी कोई कड़ी रेखा नहीं हैं। वरन् सम्भवतः मनको प्रत्येक वासना वा प्रत्येक कामनासे सम्बन्ध रखनेवाली कोई न कोई विशेषता शरीरकी स्थितिमें भी अवश्य होती ही है, चाहे प्रत्येक वासनाके मुकाबलेकी इस शारीरिक विशेषताका आसानीसे पता लग सके वा न लग सके। अत्यधिक भोजनकी इच्छा मेदेका एक प्रकारका ज्वर है। जो मनका दोष है वह शरीरका भी दोष है। ऊपरकी सूरतमें मानव-शरीरका स्वयं ही केन्द्र बन बैठनेका विचार पहलेपहल मेदेसे शुरू हुआ। इसी तरहका विचार कामेन्द्रियोंसे

को इस सत्यताकी जगह उसके सिंहासनपर नहीं बैठाया जा सकता। क्योंकि किसी भी सद्‌गुणको यदि हमारे मनुष्यत्वके ऊपर स्थान दिया जावे तो वह फौरन दुर्गुण वरन् दुर्गुणसे भी बदतर हो जाता है।

शुरू हो सकता है। ये सब घटनाएं हैं असली केन्द्रस्थ शक्ति अर्थात् स्वयं "मनुष्य" वा आत्माकी सत्ताके खिलाफ स्पष्ट धमकियां वा आपत्तियोंकी सूचनाएं हैं। क्योंकि "मनुष्य" अर्थात् आत्माका काम इन सब वासनाओंपर या तो शासन करना है या लोप हो जाना। इस तरहके किसी मनुष्यका अनुमान तक नहीं किया जा सकता जिसपर "मेदे" की हुकूमत हो—वा जो एक चलता फिरता "मेदा" ही हो, जो हाथ, पैरों आदिसे सिर्फ उसे इधर उधर ले जाने और उसके भोजनके बहमको पूरा करनेका काम लेता हो। ऐसे मनुष्यको हम 'शूकर' कहते हैं [इससे हम समझ सकते हैं कि यूरोपियन विकासवादमें शूकर और बाकी सब पशुओंको "मनुष्य" की विशेष शक्तियों (वा इन्द्रियों) के पूर्वगामी और उनकी शाखोंका स्थान क्यों दिया गया है, और क्यों पूर्ण मनुष्य ही वास्तवमें सब पशुओंपर शासनका अधिकार रखता है और वही पशुओंको सृष्टिमें उनका ठीक ठीक पृथक् पृथक् पद प्रदान कर सकता है।]

यही बात "दिमाग" के विषयमें वा किसी भी दूसरे अंगके विषयमें कही जा सकती है। क्योंकि "मनुष्य" कोई अंग नहीं है, न किसी अंगविशेषमें रहता है, "मनुष्य" वह प्रधान केन्द्रस्थ जीवन है जो समस्त अंगोंको तेजकी किरणोंके समान जीवन प्रदान करता है, उनपर शासन करता है और अलग अलग अंगोंको करनेके लिए काम बंटता है।

इस दृष्टिसे शरीरके अन्दर अथवा मनके अन्दर इन दोनोंमेंसे किसीकी एकता वा उसकी अखण्डताके टूटकर अलग अलग टुकड़े हो जानेका नाम ही शारीरिक अथवा मानसिक "रोग" है। "रोग" मनुष्यके अन्दरकी प्रधान शक्तिके दब जाने और विद्रोही केन्द्रोंके उत्पन्न हो जानेका नाम है। इस प्रकार प्रत्येक प्राणीमें 'जीवन' उस ताकत वा उस विजयके लगातार काम करते रहनेका नाम है जिसके जरिये बाहरकी विरोधी ताकतों और विरोधी

जन्तुओंको दमन करके या तो उन्हें प्राणीकी सेवा करनेपर मजबूर किया जाता है, और या हानिकर समझ दूर फेंक दिया जाता है। मिसालके तौरपर, हम देखते हैं कि वृक्षों वा जानवरोंकी तन्दुरुस्ती जब अच्छी रहती है तब उनमें किसी भी ऐसे कीड़ोंको अलग फेंक देनेकी आश्चर्यजनक ताकत रहती है, जो उनपर हमला करने लगें, और जो पौदे वा पशु कमजोर होते हैं उन्हें इस तरहके कीड़े शीघ्र ही खा डालते हैं। मसलन् गुलाब-के पौदेको यदि कमरेके अन्दर ले आया जावे तो 'रोफिस' नाम-का कीड़ा जल्दी ही उसका शिकार कर डालता है—और यदि बाहर खुली हवामें वह पौदा सख्त हो जाता है तो ये कीड़े उस-पर प्रायः कुछ भी असर नहीं कर सकते। सूखे दिनोंमें जबकि पानीकी कमीके कारण खेतोंमें शलगमके छोटे छोटे पौदे कम-जोर हो जाते हैं तो कभी कभी सारी पैदावार शलगम-मक्खी द्वारा नष्ट हो जाती है और ये मक्खियां बेहद बढ़ जाती हैं; किन्तु यदि अधिक नुकसान होनेसे पहले एक दो बार हलकीसी बारिश हो जावे तो पौदे बड़ी ताकतके साथ बढ़ने लगते हैं, उनके अंग अधिक मजबूत हो जाते हैं और मक्खियोंके हमलोंका वे मुका-बला करने लगते हैं; यहांतक कि मक्खियां स्वयं मर जाती हैं। हालकी तहकीकातोंसे यह जाहिर होता हुआ दिखाई देता है कि इन्सानके खूनके अन्दरके सफेद अणुओं* का एक खास काम यह है कि खूनमें जितने बीमारीके कीड़े आदिक हों उन्हें वे खा जावें और इस प्रकार अपनेमें मिलाकर उन्हें शरीरकी प्रधान जीवनशक्तिके अधीन कर देवें। इस ही उद्देश्यसे जब जिस्मके किसी हिस्सेमें जख्म वा बीमारी होती है तो ये अणु बहुत बड़ी संख्यामें उसी तरफ आकर जमा हो जाते हैं। अथवा यदि हम मनुष्य समाजकी मिसाल लें तो यह बात बिलकुल जाहिर है कि यदि हमारा सामाजिक जीवन वास्तवमें

*खूनमें दो तरहके अणु मिले हुए होते हैं, एक लाल और दूसरे सफेद।

जीवित और तन्दुरुस्त हो तो समाजके अन्दर आलसी शेयर-होल्डरों यानी कम्पनियोंके हिस्सेदारों अथवा पूर्वोक्त पुलीस-वालोंके समान सामाजिक जोखोंका अस्तित्व ही बिलकुल असम्भव हो जावे। एक तन्दुरुस्त समाजके अन्दर वे चीजें रह ही नहीं सकतीं, जिनका ये लोग शिकार करते हैं वा जिनपर ये पलते हैं, स्वभावतः वे या तो नष्ट हो जावेंगे वा अपना स्वरूप बदलकर समाजके लिए उपयोगी हो जावेंगे। यह बात वास्तवमें बिलकुल स्पष्ट दिखाई देती है कि किसी भी शरीरके अन्दर जीवन किसी न किसी इस प्रकारकी क्रियाओं-द्वारा ही कायम रखा जा सकता है—जिनसे शरीरमें पैदा होने-वाले वा बाहरसे शरीरपर हमला करनेवाले हानिकर जीव या तो बाहर फेंक दिये जावें या दमनकर अपनेमें मिला लिए जावें। सम्भव है कि उस शक्तिके गुणोंकी परिभाषा कर सकना जो इस प्रकार प्रत्येक शरीरकी पृथक् पृथक् एकता (वा अखण्डताको) रखती है और उसे कायम रखती है, कठिन हो, शायद इस समय असम्भव है, किन्तु हम इस बातसे हरगिज इन्कार नहीं कर सकते कि,इस प्रकारकी कोई न कोई शक्ति हमारे भीतर है जरूर, शायद यह विषय बाह्य वैज्ञानिक अन्वेषणोंकी निस्बत हमारे आन्तरिक अनुभवोंकी वृद्धिसे ज्यादः तआल्लुक रखता है।

इस दृष्टिसे, "मौत" केवल शरीरके कुछ खास हिस्सोंपर इस शक्तिके कार्यमें ढिलाई पैदा होजाने और उस कार्यके बन्द होजानेका नाम है। इसी तरह जब कभी ये ऊपरी अंग कड़े हो जाते हैं वा हड्डीके समान हो जाते हैं, जैसा कि बुढ़ापेमें, वा सदाके लिए निकम्मे हो जाते हैं जैसा कि चोट आदिकमें, तो इसी क्रिया द्वारा आन्तरिक "मनुष्य" उन्हें कांचली वा अंगूर-की तरह त्यागकर दूसरे चक्रोंमें अपने तईं समेट लेता है। मनुष्यका जीवन जिस प्रकार उत्तम और निकृष्ट दो तरहका हो सकता है वैसे ही मनुष्यकी मृत्यु भी उत्तम वा निकृष्ट दोनों

तरहकी हो सकती है। निकृष्ट मृत्यु वह है जिसमें भीतरका "मनुष्य" वा आत्मा, उन ताकतोंको वशमें रखनेके नाकाबिल साबित होकर जो उसके सपुर्द कीगई थीं, अपने उच्च आसनसे डिगकर, चारों ओर दूसरोंका लहू पीनेवाले जीवोंसे घिरकर, और एक दर्जेतक गंदे शत्रुओंके पंजेमें पड़कर, अन्तमें लज्जा और पीड़ाके साथ शरीररूपी उस मन्दिरसे बाहर निकाल दिया जाता है जिसके अन्दर उसे मालिक बनकर रहना चाहिये था। इसके विपरीत उत्तम मृत्यु वह है जिसमें आत्मा वा देही पवित्रता और स्वस्थताके साथ अपना समय पूरा करके,अपने शरीर तथा मनके प्रत्येक द्वारसे ईश्वरीय जीवन और प्रेमकी किरणोंका प्रसार करके, और जो कुछ सामग्री उसके सपुर्द कीगई थी उस सबका इस प्रकार पूर्ण कार्यकुशलता और उदासीनताके साथ उपयोग करके, जिस प्रकार एक पूरी तरह दक्ष मजदूर अपने औजारोंसे काम लेता है, चुपचाप और शान्तिके साथ उन सब औजारोंको अलग उठाकर रख देता है, और भौतिक दृष्टिसे चाहे कुछ भी विकार क्यों न दिखाई दे किन्तु, वास्तवमें बिना अपने अन्दर किसी तरहके विकार वा तब्दीलीके दूसरे निश्चित लोकोंमें चला जाता है।*

एक दो शब्द इस प्रश्नके वैद्यक सम्बन्धी अर्थात् डाक्टरी सम्बन्धी पहलूपर। यदि हम किसी भी ऐसे सिद्धान्तको मान लें जिसके अनुसार "स्वस्थता" केवल रोगोंके अभावका नाम नहीं है वरन् स्वयं एक भावात्मक जीव है—ऊपर लिखे सिद्धान्तसे फिर चाहे वह सिद्धान्त कितना भी कम मिलता हुआ हो तो यह बात बिलकुल साफ हो जाती है कि केवल रोगोंहीकी खोज करते रहनेसे हम "स्वस्थता" को समझनेके काबिल कभी भी नहीं हो सकते, और न कभी इस प्रश्नके समाधानके कुछ भी

* इस विषयमें कबीर साहबकी विचित्र मृत्यु १३० वर्षकी आयुमें एक खासा ऐतिहासिक उदाहरण है—अ०

नजदीकतक पहुंच सकते हैं। यह ऐसा ही असम्भव है जैसा कि बड़ी बड़ी कूचियोंकी संघटित व्यवस्थाद्वारा समुद्रमें ज्वार-भाटा पैदा करनेकी कोशिश।

"सूर्य" की ओर अपनी पीठ करके सृष्टिके वीरानसे वीरान कोनोंमें निकल जाइये, यहांतक कि आप उस हदतक पहुंच जावें, जहांपर कि दूरीके कारण रोशनीकी किरणें नित्यस्थाई अन्धकारकी सीमाओंपर धुंधली धुंधली पड़ती हों, और जहांपर कि रात और दिनके कभी इधर और कभी उधर झुकते हुए संग्रामके कारण आधी रोशनीमें फर्जी चीजें और साये (भूत) दिखाई देते हों, फिर यदि आप इन सायोंकी तहकीकात करने लगें, उन्हें बयान करें, उनकी अलग अलग श्रेणियां बनावें, उनमें जो तब्दीलियां होती रहती हैं उन्हें लेखबद्ध करें, और बड़े बड़े पुस्तकालय बनाकर उनमें अपने इन लेखोंको मनुष्यके परिश्रम और अन्वेषणकी जबरदस्त यादगार बनाकर रखें ; तो आप अन्तमें उस सूर्यके ज्ञान और अनुभवका इतना ही निकट पहुंचेंगे जिसे आप इस समस्त समयमें पीछे छोड़ आये हैं और जिसकी ओर आपने अपनी पीठ मोड़ ली है, जितना कि बीमारियोंकी तहकीकात करनेवाले असली 'तन्दुरुस्ती' के ज्ञान और उसके अनुभवके निकट पहुंच सकते हैं। जिस प्रकार सूर्यकी किरणें बाहरकी दुनियाको रोशन करके उसे एकता और अखण्डता प्रदान करती हैं उसी प्रकार सम्भवतः प्रत्येक व्यक्तिकी आन्तरिक दुनियामें भी एक दूसरा "सूर्य" है जो मनुष्यको रोशन करके उसे एकता प्रदान करता है और जिसकी गरमी तथा रोशनी मनुष्य-शरीरके अंदर व्याप्त है। इस अपने भीतरके "सूर्य" के चमकनेकी प्रतीक्षा करो, उसकी प्रेमकी किरणोंका स्वागत कर उन्हें स्वतन्त्रतासे आने दो, और अपने चारों ओरकी सामान्य दुनियामें उन किरणोंको आजादीसे फैलने दो—और फिर मुमकिन है कि दवाइयोंकी

तमाम पुस्तकोंमें जो कुछ लिखा है वा जो कुछ वे तुम्हें सिखा सकती हैं उससे "स्वस्थता" वा "तन्दुरुस्ती" के विषयमें कहीं अधिक ज्ञान तुम इस प्रकार प्राप्त कर लोगे।

अथवा यदि पहली मिसालको लें तो "चन्द्रमा" की प्रधान शक्ति ही विशाल समुद्रपर कार्य करती हुई उसके समस्त जलको 'एक' बनाए रखती है, और बराबर बंधे हुए समयसे उसमें ज्वार-भाटा पैदा करतो रहती है। किन्तु यदि चद्रमाको हटा लें तो क्या होगा! अभी इस नदीमें जल दूरतक बढ़ा चला जाता है! हजारों आदमियोंको कूचियां लेकर खड़ा कर दें, किन्तु जल नहरों और नालोंमेंको तोड़कर बहने लगता है! यहांपर रोक दें तो पासकी खलीजमें बाढ़ जोरोंसे आजाती है! वहांपर कूचीवालोंकी एक सेना खड़ी कर दें, किन्तु इस सबसे क्या लाभ? प्रधान केन्द्रस्थ शक्ति जिस कामको आसानीसे, बिना गलती खाये, तथा सुन्दरता और सावधानीके साथ कर लेती है, उसे आप—इस महान समुद्रके तमाम किनारे किनारे अनन्त तरकीबें करके भी, उस अनन्त कूड़े-करकट और गोलमालमें जिसका अनुमान कर सकना भी कठिन है, हरगिज नहीं कर सकते।

ठीक यही दशा उस महान, विशाल तथा आश्चर्यजनक समुद्रकी है, जिसका मनुष्यके अन्दर ज्वार-भाटेके समान बराबर उतार-चढ़ाव होता रहता है। यदि प्रधान नियन्ता अर्थात् आत्माको अलग कर दें तो बीस हजार डाक्टर, हर एकके देखनेके लिए बीस बीस हजार किताबें और देनेके लिए बीस बीस हजार मुख्तलिफ दवाइयोंकी शीशियां लिए हुए भी उन असंख्य बीमारियोंको दूर नहीं कर सकते जो स्वभावतः पैदा होजावेंगी और न गद्दियां वा पट्टियां बान्धकर उस प्राणीको 'स्वस्थ' वा 'सम्पूर्ण' बना सकते हैं, जिसकी एकमात्र ज्योतिमय एकता लोप होगई है।

शायद किसी भी युगमें वा किसी भी देशमें (सिवाय शायद अमरीकाके ?) रोग इतने आम तौरपर फैले हुए नहीं रहे, जितने आज दिन इङ्गलैण्डमें हैं। और निस्सन्देह (उसी एक देशको छोड़कर) आजतक किसी भी देश वा किसी भी युगमें इतने अधिक डाक्टर नहीं हुए और न औजारों, विद्वत्ता, प्रामाणिकता, और अपने उपासकोंकी संख्या और उनके वास्तविक संघटनके लिहाजसे, कहीं भी डाक्टरीकी साइन्स इतनी प्रबल रही है, जितनी आज इङ्गलैण्डमें है। यदि ये दोनों बातें वास्तवमें एक दूसरेके विरूद्ध हैं तो सोचना चाहिये कि इस विरोधका क्या कारण है ?

किन्तु सच यह है कि जिस तरह कानून जुर्मोंको नहीं मिटा सकते,उस ही तरह वैद्यक अथवा डाक्टरी रोगोंको भी नहीं काट सकती। डाक्टरीकी विद्या तो 'रोग' का ही एक 'बुत' बनाकर उसके चारों और नाचती है। निस्सन्देह उसके ऐसा करनेके लिए बहुत अच्छी वजूहात भी हैं। तथापि (नियम करके) डाक्टरी केवल वहीं दिखाई देती है जहांपर रोग हों। यह विद्या 'रोग' के ऊपर बड़े बड़े ग्रन्थ रचती है। रोगका अध्ययन करनेके लिए वह पशुओंके शरीरोंमें (और कहीं कहीं मनुष्योंके शरीरोंमें भी) रोगको घुसाती है। रोगके लक्षणों, उसके स्वभाव, उसके कारणों और उसके बाहर जाने और उसके भीतर आनेके विषयमें उसकी मालूमात आश्चर्यजनक हैं। इस इल्मकी आंखें सदाके लिए 'रोग' पर ही लगी रहती हैं, यहांतक कि (उसके लिए) 'रोग' ही संसारकी मुख्यतम घटना और उसकी उपासनाका मुख्य विषय बन जाता है। जिसे अंगरेजीमें बड़े लालित्यके साथ 'Hygiene' अर्थात् 'स्वास्थ्य-रक्षा-विद्या' कहा जाता है, वह भी इस अभावात्मक प्रवृत्तिसे ऊपर नहीं उठ सकती। वास्तवमें संसार अभीतक एक ऐसे 'Healer' अर्थात् 'चङ्गाकरनेवाले' की प्रतीक्षा कर रहा है, जो हम सब रोगी और

दुःखी लोगोंको यह बता सकेगा कि 'स्वस्थता' क्या चीज है, कहां मल सकती है और कहांसे उसका प्रवाह होता है; और जो स्वयं अपने भीतर इस अद्भुत शक्तिके साथ युक्त होकर उस समयतक विश्राम न लेगा जिस समयतक कि वह उस शक्तिका रोशन करके मनुष्य मात्रको वह शक्ति प्रदान न कर दे।

नहीं! डाक्टरीका इल्म मुख्य करके रोगको नहीं काटता। मनुष्यके भीतरके केन्द्रस्थ आत्मिक जीवनके साथ वही विश्वासघात और उस जीवनका वही क्षय जो रोगको पैदा करता है और मनुष्यको रोगका शिकार बनाता है, वही वैद्यक-विज्ञान और उसके विद्यार्थियोंकी भी रचना करता है। 'चंद्रमा'* जलके ऊपरसे हटा दिया गया, और भलेमानस अपनी अपनी कूचियां लेकर दौड़ पड़े, और कुसमयकी बाढ़ों, और कूचियों और गड़बड़ और गोलमाल, सबका बस, एक वही कारण है।

शरीरके अन्दर रोगके घर कर लेनेके विषयमें यह साफ जाहिर है कि जिस तरह किसी देशमें—जहां प्रधान गवर्नमेण्ट कमजोर होगई हो—किसी भी विद्रोह फैलानेवालेको आसानीसे आश्रय मिल जावेगा और अपने कामके लिए विद्रोह-सामग्री भी तय्यार मिलेगी,ठीक उस ही तरह किसी भी शरीरमें, जिसकी आन्तरिक व्यवस्था बिगड़ गई हो, रोग आसानीसे घर कर लेंगे। और जो रोग इस तरह घर कर गया हो उसके इलाजके जाहिरा दो तरीके होसकते हैं। एक तरीका यह है कि भीतरकी प्रधान शक्तिको फिरसे मजबूत किया जावे, जबतक कि वह खुद विद्रोहियोंको बाहर निकालकर फिरसे सुशासन कायम करनेके पूरी तरह काबिल न होजावे। दूसरा तरीका यह है कि भीतरकी जीवनी शक्तिका ख्याल न करते हुए

*यह एक विचित्र बात है कि अंगरेजी शब्द Moon और man दोनोंका निकास एकहीसे मालूम होता है। जाहिरा मूल विचार Order तरतीब वा Measure नाप रहा होगा।

और उसे जैसाका तैसा छोड़कर, बाहरसे रोगपर हमला किया जावे, (जैसाकि दवाइयोंकी खूराकें और काढ़े दे देकर प्रयत्न किया जाता है।) और यदि होसके तो इस प्रकार रोगका नाश किया जावे। पहला तरीका सबसे अच्छा, सबसे अधिक देरया और कारआमद मालूम होता है, किन्तु वह मुश्किल और धीरे धीरेका काम है। यह तरीका है स्वस्थ शारीरिक तथा मानसिक जीवन अख्तियार करनेका, जिसका हम बादमें जिकर करेंगे। दूसरे तरीकेको डाक्टरीका तरीका कहा जासकता है। यह तरीका भी (अपने ढंगसे) उपयोगी है अथवा मैं कहना चाहूंगा कि उपयोगी होगा उस समय, जबकि वह पहले तरीकेके मातहत वा उसका सहायक बनकर अपना असली स्थान ग्रहण कर लेगा। किन्तु अनेक बार ही इस दूसरे तरीकेको पहले तरीकेसे अधिक महत्वका समझा जाता है, और इसीकारण यद्यपि यह तरीका आसान है तथापि शायद इससे फायदेकी निस्बत नुकसान ज्यादह होरहा है। मुमकिन है, रोग कुछ समयके लिए टूट जावे, किन्तु उसकी जड़ें नष्ट नहीं होतीं और थोड़े ही दिनोंके बाद वह फिर उसी रूपमें वा किसी दूसरे रूपमें फूट पड़ता है और बीमार फिर जैसाका तैसा होजाता है।

मैं समझता हूं कि असली (Health) "तन्दुरुस्ती" की जबरदस्त भावात्मक शक्तिका और उसकी उस ताकतका, जिससे वह अपने पड़ौससे भी रोगको बाहर निकालकर फेंक सकती है, बहुत कम लोगोंने प्रत्यक्ष अनुभव किया होगा। किन्तु इसी पृथ्वीपर इस शक्तिका प्रत्यक्ष अनुभव किया जाचुका है; और जब हमारी आजकलकी "सभ्यता" के अधिक गन्दे अङ्ग दूर होजावेंगे तो अवश्य फिर एक बार इस शक्तिका प्रत्यक्ष अनुभव किया जावेगा।

तीसरा अध्याय

[पिछले अध्यायके शुरूमें हमने यह सवाल उठाया था कि मनुष्यके इस पतनका क्या कारण है, इन शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा नैतिक रोगोंके बढ़नेका क्या अर्थ है और सम्पूर्ण मानव-विकासके क्रममें इस पतनका कौनसा स्थान है। किन्तु इस सवालका उत्तर देनेसे पूर्व हमें अपने प्रस्तुत विषयसे थोड़ासा हटकर उस अध्यायमें पहले यह निश्चय करना पड़ा कि 'स्वास्थ्य' वा 'स्वस्थता' वास्तवमें है क्या चीज।]

इस प्रकार उस प्रस्तुत विषयसे हटकर हमने यह देख लिया कि शरीरकी अथवा मनकी "स्वस्थता" का अर्थ है—भीतरकी एकता वा अखण्डता और उसका उलटा है अनैक्य वा टुकड़े टुकड़े होजाना। जानवरोंमें इस शारीरिक अखण्डताको हम एक आश्चर्यजनक हदतक मौजूद पाते हैं। उनके सब काम और उनके संघटन एक अचूक स्वाभाविक ज्ञान और एक ऐसी भीतरकी शक्तिद्वारा चलाये जाते हैं, जो तुरन्त अपने मतलबकी बात चुन लेती है। मिसालके तौरपर बिल्ली अपने पतनसे पहले (अर्थात् बहुत घुरघुर करनेवाली, आगके पास बैठनेवाली पालतू बिल्ली बन जानेसे पहले!) एक अर्थमें सम्पूर्ण अर्थात् अखण्ड होती है। दौड़ते वा कूदते समय उसके हाथ-पैरोंकी आश्चर्यजनक रजामन्दी, उसके रग-पट्ठोंका आवश्यकतानुसार तुरन्त मुड़जाना, अपने शरीरके सम्बन्धमें और बच्चों आदिके प्रेमके सम्बन्धमें उसके स्वभावज ज्ञानका बिल्कुल ठीक और अनिवार्य साबित होना, उसकी देखने और सूंघनेकी ताकतें, उसकी सफाई, अपने भोजनके विषयमें उसकी स्वच्छता और परख, उसकी वात्सल्य-दक्षता, क्रोधके समय अथवा शिकारकी ताकमें बैठते समय उसके सारे शरीरका ढंग—ये सब बातें

इतनी पूर्ण और निर्दोष होती हैं और इतनी फुर्तीके साथ जाहिर होती हैं कि उन्हें देखते ही मनुष्यका हृदय प्रशंसासे भर जाता है। वह प्राणी "सम्पूर्ण" (Whole) "एक" अथवा "अखण्ड" (In one piece) है। उसके अन्दर कोई नाम लेनेयोग्य विरोध वा भेद नहीं है *।

यही हाल दूसरे जानवरोंका और प्रारम्भिक मनुष्योंका भी है। अब हम अपने असली विषयकी ओर लौटते हैं। यदि हम विकासवादके सिद्धान्तको मान लें तो विकासवादके सिद्धान्त और ऊपरके हालात, इन दोनोंसे मालूम होता है कि नीचीसे नीची श्रेणीके जन्तुओंसे लेकर उस कुदरती ज्ञानसे काम लेनेवाले और तन्दुरुस्त प्रारम्भिक मनुष्यतक, जिसका 'मनुष्यत्व' अभी निस्सन्देह पूरी तरह विकसित नहीं हुआ होता,प्राणियोंका एक बेटूट और लगातार ऊपरको चढ़ता हुआ सिलसिला है, और ये प्राणी यद्यपि निर्दोष वा 'पूर्ण' नहीं हैं, तथापि इन सबमें मुख्यकर "स्वास्थ्य" यानी तन्दुरुस्तीका गुण मौजूद है। इस तमाम सिलसिलेमें जीवनकी प्रधान यानी मरकजिया ताकतका प्रभुत्व कायम रहता है और हर प्राणीका भौतिक शरीर उसके अन्दरकी इस ताकत (यानी आत्मा) को जहूरमें लानेके लिए एक खासे स्वच्छ उपकरणका काम देता है—निस्सन्देह इस सिलसिलेमें जीव आत्मिक विकास, आत्मा अथवा व्यक्तताके जितने जितने ऊंचे दर्जेतक पहुंचता जाता है,उतना उतना ही एक योनिसे दूसरी योनिमें यह जहूर भी अधिकाधिक पेचीदाऔर अधिकाधिक विस्तृत होता जाता है। और विकासके इस लम्बे क्रममें जब

* रोगके विषयमें यद्यपि मैं यह नहीं कहता कि जानवरोंमें बिल्कुल बीमारियां होती ही नहीं—क्योंकि कम वा अधिक शरीरको खानेवाली बीमारियां हर किस्मके पौदों और जानवरोंमें पाई जाती हैं—तथापि सभ्य मनुष्यकी निस्बत उनमें बीमारियां बहुत कम दिखाई देती हैं और स्वास्थ्यका स्वाभाविक और कुदरती बोध उनमें बहुत बढ़ा हुआ मालूम होता है।

भीतरका वह "मनुष्य" अर्थात् वह मानव आत्मा, जो जानवरोंके अन्दर गुप्त वा सोई हुई हालतमें था, अन्तको प्रकट होता है अर्थात् जब जीव मनुष्य-योनिमें आकर मानव-शरीर और मानव शक्तियोंको धारण करता है—और इस बाहरके मानव-शरीर तथा इन बाहरकी शक्तियोंके विशेष रूपों और गुणोंका कारण भी वह भीतरका 'मनुष्य' ही है जो इनके द्वारा व्यक्त होता है—जबकि जीव तजरबेके तौरपर अपने भावी मानव-विकासके (छोटे-मोटे) नमूने और अक्स, इधर-उधर पहलेहीसे, पशु-योनियोंमें प्रकट करता हुआ, और खास खास रूपों और व्यक्तियोंकी मुख़्तलिफ योनियोंमें अगणित प्रारम्भिक मश्के करता हुआ, एक दूसरेके बाद पशु-जीवनकी ऊपरको चढ़ती हुई अनेक योनियोंमेंसे गुजर चुकता है, और अन्तमें मनुष्य-योनिमें पहुंचकर 'मनुष्यत्त्व'के सम्पूर्ण गौरवको धारण करनेके काबिल होने लगता है—उस समय पहुंचकर ऐसा मालूम होता है कि अब जीवकी उन्नतिके इस लम्बे क्रमका अन्त होनेवाला है और इस रचनाकी मंजिले मकसूद अब बहुत अधिक दूर न रही होगी। किन्तु ठीक उसी समय, जबकि लक्ष्य अर्थात् मंजिले मकसूद आंखोंके सामने दिखाई देने लगती है, जीवकी " एकता " वा " पूर्णता "में आकर वह भंग पड़ता है, जिसका वर्णन कर आये हैं। उसी समय मनुष्य-स्वभावकी 'अखण्डता' एक दर्जेतक नष्ट होजाती है, और मनुष्य पूर्ववत् उसी सीध वा उसी क्रममें और आगे बढ़नेके स्थानपर—जहांतक दिखाई देता है—नीचे गिर जाता है।

इस अखण्डता वा एकताके नाशका क्या अर्थ है? इस पतनका, तथा प्रारम्भिक ' स्वर्ग ' से इस आदमियोंके देश-निकालेका, क्या कारण है? और उसका क्या उद्देश्य है?

इन प्रश्नोंका केवल एक ही उत्तर होसकता हैं। वह है आत्मज्ञानका प्राप्त करना—(जिसको प्राप्त करनेके लिए एक

अर्थमें अपनी आत्मासे ही पृथक होजाना पड़ता है,) मनुष्यको अपने भाग्य अर्थात् अपने जीवनके लक्ष्यको पहचानना होगा - उसे अपनी असली आजादी और अपने सौभाग्यको प्राप्तकर उन्हें साक्षात् करना है—उसे अपनी चेतनताको अपने बाहरी और अनित्य रूपसे हटाकर अपने आन्तरिक और अमर रूपकी ओर लगा देना है।

बिल्ली यह नहीं कर सकती। यद्यपि बिल्ली अपने दर्जेपर पूर्ण है, तथापि उसका आन्तरिक विकास, उसका भीतरसे खुलना अभीतक बाकी है। उस भावी मानव-आत्माने, जो इस समय बिल्लीके अन्दर है, अभीतक आगे आकर अपनेको प्रकट नहीं किया। ईश्वरीय कलीके उसमें साफ साफ दिखाई देनेसे पहले अभी कुछ ऐसे ऊपरके पत्तोंका खुलना बाकी है जो उस कलीको ढके हुए हैं। और अन्तमें जबकि अज्ञानियोंकेसे शब्दोंमें बिल्ली मनुष्य बन जाती है—जबकि उस प्राणीके अन्दरकी आत्मा उन्नतिकर मनुष्यके रूपमें प्रकट होती है और क्रमसे अपने वाह्य शरीरको भी मानव-शरीरमें बदल देती है—और मैं समझता हूं विकासवादका यही एक अर्थ होसकता है—उस समय यद्यपि प्राणी "मनुष्य"के रूपमें पूर्ण और रोशन होजाता है तथापि उसमें एक कमी रह जाती है। उसे अपना ज्ञान नहीं होता। वह अपने आपको नहीं पहचानता और उस मनुष्यत्व-को अनुभव नहीं करता जिसे वास्तवमें वह प्राप्त कर चुका है।

जानवरोंमें चेतनता कभी अपनी ओर भीतरको नहीं मुड़ती। वह बड़ी आसानीसे बाहरको जाती है। और प्राणी बिना किसी झिझक वा रुकावटके अपने उस समयके अस्तित्वके नियमोंका पालन करता है। किन्तु उस समय उसमें स्वयं अपने अस्तित्वका ज्ञान यदि होता भी है तो बहुत ही कम होता है। और जब मनुष्य पहलेपहल पृथिवीपर प्रकट होता है, बल्कि जिसे हम "सभ्यता"-काल कहते हैं, उसके शुरू होनेके समयतक भी अनेक

बातोंसे जाहिर है कि इस विषयमें अभीतक वह पशुओंहीकी श्रेणीमें गिना जाना चाहिये। यद्यपि शारीरिक और मानसिक शक्तियोंमें वह पशुओंसे बहुत बढ़कर था, ऐसे ही प्रकृतिको अपने अधीन करनेमें,भावी उन्नतिकी क्षमतामें,और परिस्थितिके अनुसार अपनी आदतों आदिको बदल लेनेमें वह पशुओंसे बढ़कर था, तथापि उस प्रारम्भिक अवस्थामें इस बातमें उसमें और पशुमें कोई भेद न था कि पशुओंके समान उसके कार्य भी आत्म-ज्ञानसे शून्य और सहज अर्थात् स्वाभाविक ज्ञान-से प्रेरित होते थे। दूसरी ओर यद्यपि उसकी नैतिक और मान-सिक रचना आजकलके 'सभ्य' मनुष्यकी नैतिक और मानसिक रचनाकी निस्बत कहीं कम मुकम्मिल थी—जैसाकि अपने अस्तित्वका ज्ञान न होनेके कारण जरूरी था—तथापि वास्तवमें वह अपनी आजकलकी सन्ततिकी निस्बत स्वयं अपने साथ तथा कुदरतके साथ अधिक एकमय* होकर रहता था। उसकी शारीरिक और सामाजिक प्रवृत्तियां अधिक स्पष्ट और अधिक संकोचरहित होती थीं; और उसका अपने भीतर किसी तरहके

---

* कुदरतके साथ इन जंगली मनुष्योंकी एकताके विषयमें जाहिरा कोई दो राय नहीं हैं। प्रायः अनेक ही लेखकों और यात्रियोंने उनको देखने, सूंघने आदिकी तेज ताकतों, वायुमण्डलकी तब्दीलियोंको उनके झटसे अनुभव कर लेने, उनमें बनस्पतियोंके गुणों और पशुओंकी आदतों-के ज्ञानके होने इत्यादिका वर्णन किया है। किन्तु इस सबसे बढ़कर उनका विश्वकी आत्माके साथ अपनी एकताको जोरोंसे अनुभव करना, जिस अनुभवका उन्हें स्वयं शायद केवल कुछ धुंधलासाही ज्ञान रहा होगा, किन्तु जो उनके रिवाजोंमें बिल्कुल साफ साफ और स्पष्ट जाहिर होता है, सबसे अधिक विचित्र और सारगर्भित बात है। अन्दमन टापुओंके बाशिन्दोंका रात रातभर समुद्र-तटके रेतपर नाचना, फान जाति तथा अफरीकाका अन्य जातियोंमें नये चान्दका अद्भुत प्रचण्ड त्यौहार, बनोंके बीचसे जुलूसोंका निकलना, विचित्र गाना और जोरोंसे

विरोधका अनुभव न करना तथा उसमें पापकी जानकारीका मौजूद न होना हमारे आजकलके निरन्तरके संग्राम और दिमागी परेशानीके मुकाबलेमें एक बड़ी भारी गनीमत थी।

अब अगरचे उस अवस्थामें एक दर्जेका इन्सानी कमाल और सुख मौजूद था तो भी जीवके लिये अभी एक कहीं अधिक वसीअ उंचाई तय करनी बाकी रह जाती है। उस मानव-आत्माके लिये, जो किसी अत्यन्त नीची श्रेणीके छोटेसे छोटे जन्तुसे लेकर मनुष्य-जन्मके पूर्ण वैभव और गौरवकी प्राप्तितक जन्म-जन्मान्तरोंमें हजारों वर्ष एक प्रकारके अंधेरेमें भटकती रही है, अभीतक अपनी अद्भुत पैतृक सम्पत्तिका ज्ञान प्राप्त करना बाकी है, अभीतक उसके लिए अन्तिम व्यक्तिता और स्वतन्त्रता प्राप्त करनी शेष है, उसे अपने अमर रूपको पहचानना है, अपने तमाम पिछले जन्मोंको फिरसे साक्षात्कर उनका अर्थ समझना है और सृष्टिके उस साम्राज्यमें विजेता-की तरह प्रवेश करना है, जिसे उसने इन जन्म-जन्मान्तरोंमें जीता है।

वास्तवमें आत्म-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अर्थात् अपनी

ढोलोंका पीटना, अमरीकाके लाल रंगके नौजवान बहादुर आदिम निवासियोंका सूर्यकी तपती हुई धूपमें अमित शारीरिक पीड़ाके होते हुए नृत्य करते रहना, शुद्ध जमानेके यूनानियोंमें मादिराके अधिष्ठातृ देवता दी ओनिससके त्यौहार; और वास्तवमें पशुओं आदिकी बलिके वे कुदरती रस्म-रिवाज, वे दावतें और दिव्य दृष्टि [यानी त्रिकाल-दर्शिता] की वे अलौकिक शक्तियां जो समस्त प्रारम्भिक जातियोंमें पाई जाती हैं—ये सब चीजें साफ साफ हमें मनुष्यके भीतरकी एक ऐसी शक्तिकी सूचना देरही हैं जिसके अस्तित्वका यद्यपि उस समयके मनुष्योंको स्वयं अभी इतना स्पष्ट ज्ञान न हुआ था जिसे हम मजहबका नाम देसकें, तथापि जो सचमुच मजहबकी बुनियाद थी और जो कुछ ऐसी मानवी शक्तियोंका बीज थी जिनका विकसित होना अभीतक बाकी है।

असली आत्माको उसके अनित्य और नाशवान आवरणों (The fleeting and perishable self)से सुलझाकर अलग करनेके लिए जीवको अपने भीतर एक भयंकर संग्रामका सामना करना होगा। पशु और इस "सभ्यता" नामक पतनसे पहलेके मनुष्य तन्दुरुस्त और चिन्तासे बरी होते हैं, किन्तु उन्हें यह मालूम नहीं होता कि वे स्वयं हैं क्या चीज। इस अपनी असलीयतका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए मनुष्यका पतन जरूरी है, उसका एक बार अपने असली रूपसे घट जाना आवश्यक है; उसे कुछ समयके लिये अपूर्णता सहन करनी होगी; भिन्नता, विवाद और विरोधका इस समय उसके स्वभावमें घर करना अनिवार्य है। पूर्ण "जीवन" का अनुभव करनेके लिए, यह जाननेके लिए कि वह "जीवन" क्या और कैसा अद्भुत है, यह समझनेके लिए कि इस पूर्ण "जीवनकी प्राप्तिमें ही समस्त सौभाग्य, समस्त आनन्द और समस्त स्वतंत्रता भरी हुई है—इस सबके लिए मनुष्यको थोड़े समयके वास्ते उस जीवनसे वियोग सहन करना होगा; उसके स्वभावकी एकताका, उसकी शान्तिका, भंग होगा; जुर्म, रोग और अशान्ति उसके अन्दर प्रवेश करेंगी और फिर अन्तमें जाकर इन अवस्थाओंकी तुलनाद्वारा ही उसे ज्ञान प्राप्त होगा।

कैसी विचित्र बात है कि यूनानी सभ्यताके अथवा उसके साथ साथ ही यूरोपियन सभ्यताके ठीक प्रभातकालमें हमें प्राचीन यूनानके देल्फी नगरमें ऐपौलो देवताके मन्दिरके ऊपर ये रहस्यगर्भित शब्द खुदे हुए मिलते हैं—"अपने आपको पहचानो" (Know Thyself) और उतनी ही रहस्यगर्भित बात यह है कि सैमिटिक जातिकी कथाओंमें सबसे पहली कथा आदम और हव्वाके पाप और पुण्यकी "तमीज" के वृक्षका फल खानेके विषयमें है! जानवरोंमें इस तरहकी कोई तमीज नहीं होती, प्रारम्भिक मनुष्यमें इस तरहकी कोई तमीज नहीं थी, और भविष्यके पूर्ण मनुष्यके लिए भी इस तरहकी कोई

"तमीज" न रहेगी। यह सब एक अनस्थायी भ्रष्टता है जो वर्तमान मनुष्यके भीतरी अनैक्यको जाहिर करती है, अर्थात् जो उसके बाहरी रूप और उसके आन्तरिक रूपके बीचकी अनेकताको, उसके अपने भीतरके दुईके भयंकर भावको जाहिर करती है। यही जरिया है जिससे अन्तमें एक इस प्रकारकी अधिक पूर्ण और ज्ञानयुक्त भीतरी एकता कायम होसकती है, जिसका, बिना इस बीचकी अवस्थाके, जीवको अनुभव प्राप्त न होसकता था—यह वह क्षणिक मृत्यु है जो अन्तको बदलकर विजयमें मिल जाती है। "क्योंकि पहला मनुष्य इस पृथ्वीका और पृथ्वीके साथ ही तद्रूप है; किन्तु दूसरा मनुष्य साक्षात् दिव्य "ईश्वर" है।"

इसलिए अपने "विकास"-क्रमकी इस अवस्थासे और आगे बढ़नेके लिए "मनुष्य" को पहले गिरना होगा; उसे ज्ञान प्राप्त करनेके लिए पहले खोबैठना होगा। यह अनुभव करनेके लिए, कि असली "तन्दुरुस्ती" क्या है, कैसी शानदार और गौरवान्वित चीज है, उसे "रोग" के समस्त लम्बे अभावात्मक तजरबेमेंसे गुजरना होगा। पूर्ण सामाजिक जीवनको जाननेके लिए, यह समझनेके लिए कि एक दूसरेके साथ असली और सच्चा सम्बन्ध कायम रखनेमें मनुष्य-जातिको कितना अधिक बल और आनन्द प्राप्त होता है, उसे पहले यह सीखना होगा कि केवल अहमहम्यता और लालचसे कितना अधिक दुःख और कष्ट उत्पन्न होता है; और अपने असली "मनुष्यत्व" को लाभ करनेके लिए, यह मालूम करनेके लिए कि वह "मनुष्यत्व" कैसी अद्भुत शक्ति है, मनुष्यको पहले उस मनुष्यत्वको खोदेना होगा, उसे [यूनानी पौराणिक कथाओंके देवता हेलिऔस अर्थात् सूर्यके पुत्र] फेथौनके समान—[जिसने अपने पिताके रथके घोड़ोंको हांकनेका निष्फल प्रयत्न किया था और] जिसे उसके काबूसे बाहर निकले हुए घोड़े उड़ाकर लेगये—अपनी

ही इच्छाओं और वासनाओंका शिकार और उनका गुलाम बनना होगा।

इस वियोगके समयके अन्दर यानी मनुष्यकी उन्नतिमें इस जुमला मोतरिज़ाके अन्दर ही हमारे समस्त "इतिहास"का समय आजाता है; और समस्त "सभ्यता" तथा समस्त जुर्म और बीमारियां केवल इस समयके महान् उद्देश्यके साधन हैं—ये सब चीजें जिस तरह पैदा हुई हैं उसी तरह अवश्य लोप होजावेंगी, किन्तु उनके शुभ फल सदाके लिए रह जावेंगे।

इस प्रकार हमने देख लिया कि"सभ्यता"ने उस,"सभ्यताने"—जिसकी बुनियाद "व्यक्तिगत सम्पत्ति" पर यानी मेरा "माल और तेरा माल" के असूलपर कायम है—हर तरहसे मनुष्यको खण्डित करने, उसे भ्रष्ट करने और उसके स्वरूप वा स्वभावकी एकताको *तोड़ डालने* का काम किया है। यह "सभ्यता" पुराने जमानेके भोले और सरल जीवनको छोड़ देने और (जैसाकि आदम और हव्वाकी कहानीमें बताया गया है) मनुष्यके अन्दर शर्मकी जानकारीके पैदा होनेके साथ साथ शुरू हुई। पुरुष-स्त्रीका सम्बन्ध जो पहले धार्मिक पूजाका एक अंग था अर्थात् जो एक धार्मिक क्रिया समझा जाता था, अब धर्मसे अलग कर दिया गया। प्रेम और कामवासना—अथवा दूसरे शब्दोंमें भीतरी और बाहरी प्रेम—जिनमें इससे पूर्व कोई भेद न था, अब एक एक दूसरेसे पृथक दो अलग अलग चीजें होगईं। (निस्सन्देह *प्रेमके सच्चे अनुभव* की उत्पत्तिके लिए पहले इस अवस्थाका आना आवश्यक था, किन्तु यह अवस्था स्वयं केवल कष्टदायक और अस्वाभाविक ही थी।) अन्तमें इस भिन्नताका परिणाम यह होता है, जैसाकि आज दिन दिखाई देरहा है, कि असली रूहानी प्रेम और उसकी शारीरिक पूर्ति अर्थात् भोग, दोनोंमें बिलकुल कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता और तजारती प्रेमकी एक बड़ी भारी पद्धति चल पड़ती है, जिसमें व्यभिचारके मका-

नोंके अन्दर और महलोंके अन्दर प्रेम बेचा जाता है और खरीदा जाता है। यह "सभ्यता" कुदरती मेहनतकी जिन्दगीके छोड़ देनेसे शुरू होती है और उसके अन्तमें परिणामरूप हमें एक ऐसा मनुष्य-समाज दिखाई देता है जो हर प्रकारकी ऐशपरस्ती, कंगाली और रोगोंमें गिरफ्तार, टूटा हुआ और लाचार, मुश्किलसे 'मनुष्य-समाज' पहचाना जासकता है। वह मनुष्य, जो किसी समय "कुदरत" माताका आजाद बच्चा था, अब इस "सभ्यता" के प्रतापसे अपने बेटेपनसे भी इन्कार करने लगता है; जिन छातियोंसे दूध पी पीकर वह बड़ा हुआ था, उन छातियोंको ही अब वह अपनेसे दुरियाता है। जान-बूझकर सूर्यकी ज्योतिकी ओर वह अपनी पीठ मोड़ लेता है और ऐसे बक्सोंमें अपने तईंको छिपा लेता है जिनमें केवल सांस लेनेके लिए सूराख रख दिये जाते हैं (जिन्हें वह मकान कहता है)। वह नित्य अधिकाधिक अन्धेरी और जहां सांस घुटने लगे, ऐसी जगहोंमें रहने लगता है और शायद दिनमें कहीं एक बार चमकते हुए देवता (सूर्य) की ओर आधी आंखें बन्द करके देखनेके लिए बाहर निकलता है अथवा आजादीसे चलनेवाली हवाकी पहली सांसपर ही सरदी लग जानेके डरसे फिर दौड़कर अपने बक्समें घुस जाता है! वह जानवरोंकी उतरी हुई खालों और समूरोंमें अपनेको लपेटता है और हर सर्दीमें अधिकाधिक भयंकर और विचित्र काट-छांटकी नई नई तह अपने ऊपर चढ़ाता जाता है, यहांतक कि अन्तमें यह पहचान नहीं होसकती कि यह वही "मनुष्य" है जो किसी समय समस्त शरीरधारी प्राणियोंका मुकुट था, और स्वयं अपने बैरेल-औरगेन (एक प्रकारका बाजा) के ऊपर बैठे हुए लंगूरसे भी देखनेमें ज्यादह उपहासजनक मालूम होने लगता है। "सभ्य" मनुष्य बहुत दर्जेतक अपने शरीरके पट्ठोंसे काम लेना बन्द कर देता है, उसके पैर आधे निकम्मे होजाते हैं, उसके दांत बिल्कुल निकम्मे, उसका

हाजमा इतना कमजोर होजाता है कि उसे अपना भोजन पकाना पड़ता है और अपने तमाम खानेकी चीजोंको नरम नरम गूदे वा लपसीकी शकलमें लाना पड़ता है, तथा उसका समस्त शरीर दिन-प्रतिदिन ऐसा स्पष्ट नीचेको ढलता हुआ दिखाई देने लगता है कि अन्तको एक न एक दिन कोई के० रौबिन्सन उठकर—जैसा हम ऊपर बता चुके हैं—यह पेशीन गोई करता है कि थोड़े ही दिनोंमें मनुष्य बिलकुल बेदांतके और गंजे पैदा होने लगेंगे जिनके पैरोंकी उंगलियांतक न रहेंगी।

इस प्रकार "कुदरत" से मुंह मोड़नेका नतीजा है तरह तरहकी बीमारियां; पहले नजाकत, नफासत, ऐशपरस्ती; फिर शारीरिक और मानसिक समतुल्यताका नाश, निर्बलता और बात बातमें पीड़ा अनुभव करनेकी बेतहाशा बढ़ी हुई आदत। अपने आपको समस्त रोगोंके चंगा करनेवाली "शक्ति" से अलग बन्द करके मनुष्य अनिवार्य रूपसे अपने सारे मनुष्यत्वको निर्बल कर लेता है। प्रधान मरकजी ताकतके ढीली होजानेके कारण वह स्वयं अपनी ही इन्द्रियोंका शिकार बन जाता है। अपने जिन अंगोंके अस्तित्वका पहले उसे बोधतक न था, अब वे अंग उसके अनुभवक्षेत्रमें जबरदस्ती आ आकर उसे दिक करने लगते हैं (और क्या यह जानकारी ही इस गतिका मुख्य उद्देश्य नहीं है?); मेदा, जिगर और तिल्ली साफ साफ अलग अलग उसके सामने आकर उसे पीड़ा देने लगते हैं—उसके दिलकी हमवार गति नष्ट होजाती है, विश्वकी हवाके साथ उसके फेफड़ोंका मिलकर चलना जाता रहता है, और उसका दिमाग गरम और ज्वरग्रस्त होजाता है। एक एककर उसका प्रत्येक अंग गैर मामूली तरीकेसे अपने अस्तित्वका प्रतिपादन करता है और प्रत्येक अंग ही कुव्यवस्थाका एक केन्द्र बन बैठता है। शरीरका प्रत्येक कोना और प्रत्येक छिद्र रोगका रंगस्थल और रोगका एक लक्षण बन जाता है। और "मनुष्य" विस्मयान्वित

तथा भयभीत होकर देखने लगता है कि उसका वह समस्त राज्य जिसके इस विस्तारका उसे पहले कभी गुमानतक न हुआ था अब साराका सारा उसके विरुद्ध जबरदस्त विद्रोहकी अग्निसे धधकने लगता है। इसके बाद—मनुष्यके विकासकी इसी अवस्थाके साथ साथ—जबरदस्त वबाएं पृथ्वीके ऊपर-से फिर जाती हैं, प्लेग, तरह तरहके बुखार, कई प्रकारके पागल-पन, दुनियाभरके रिसनेवाले फुंसी-फोड़े और इन सबके पीछे पीछे डाक्टरोंकी नित्य बढ़ती हुई फौजें—फिर इन डाक्टरोंकी हमराहीमें लाखों किताबें, और बोतलें, टीके और सुइयां और केवल तजरबे करनेके लिए जिन्दा जानवरोंकी चीर-फाड़ और पीछे पीछे दांत बाए हुए मुर्दोंकी खोपड़ियां—सब मिलाकर पागलोंका एक गिरोह, जिसे यह मालूम नहीं कि हम कर क्या रहे हैं, तथापि निस्सन्देह ये सबके सब अज्ञानवत् मनुष्य-जातिके इस महान् युग-व्यापी लक्ष्यको पूरा कर रहे हैं।

इस सबमें "सम्पत्ति" का असर साफ जाहिर है। यह जाहिर है कि ज्यों ज्यों मनुष्यकी सम्पत्ति बढ़ती जाती है त्यों त्यों ही उसमें और अधिकाधिक सम्पत्ति उत्पन्न करनेकी शक्ति भी बढ़ती जाती है और इस शक्तिके बढ़नेके साथ साथ मनुष्यपर तीन तरहका असर पड़ता है। एक यह कि वह "कुदरत"से अधिकाधिक दूर दूर खिंचता जाता है, दूसरे यह कि वह अपने सच्चे "आपे" अर्थात् अपनी आत्मासे अधिकाधिक दूर खिंचता जाता है, और तीसरे यह कि वह अपने "भाइयों"से अधिकाधिक दूर खिंचता जाता है।

पहला असर यह है कि वह "कुदरत" से दिन-प्रतिदिन दूर होता जाता है। अर्थात् ज्यों ज्यों भौतिक सामग्रीके उपयोग करनेमें मनुष्यकी ताकत बढ़ती जाती है त्यों त्यों वह, आंधियों और लहरों, जंगलों और पहाड़ोंकी उस विशाल पांच तत्वों-वाली दुनियांसे, जिसमें वह इससे पूर्वतक रहता रहा था, किसी

अर्थमें पृथक और भिन्न, अपने लिए एक अलग ही दुनिया और अलग ही परिस्थिति रचकर खड़ी कर लेता है। वह अब मकानों और शहरोंकी उस जिन्दगीकी रचना करता है जिसे हम बनावटी जिन्दगी कहते हैं और उनके अन्दर अपने तईं बन्द करके "कुदरत"को बाहर निकाल देता है। जिस प्रकार बढ़ता हुआ बालक एक खास अवस्थाको पहुंचकर, और एक दर्जेतक अपनी स्वतंत्रताका प्रतिपादन करनेके लिए, अपनी माताकी प्रेमभरी निगरानीसे अपने तईं जबरदस्ती अलग कर लेता है और, थोड़ेसे समयके लिए, उस माताकी बातोंका विरोधतक करने लगता है, उसी तरह बढ़ता हुआ "मनुष्य" अपनी निजकी शक्तियोंको अनुभवकर, कुछ समयके लिए, कुदरतकी अवहेलना करते हुए उन शक्तियोंद्वारा अपने लिए एक ऐसी दुनियाकी रचना कर लेता है जिसमें कुदरतका कोई वास्ता न रहे।

दूसरा असर सम्पत्तिके बढ़ानेका यह होता है कि मनुष्य अपने भीतरकी "आत्मा"से ज्यादह व ज्यादह दूर होता जाता है। यह असर काफी साफ दिखाई देता है। जैसे जैसे दुनियावी सामानके उपयोग करनेमें मनुष्यकी काबलीयत बढ़ती जाती है और मनुष्यका माल-असबाब बढ़ता जाता है वैसे वैसे ही मनुष्यको जब चाहे इच्छानुसार अपनी इन्द्रियोंको सन्तुष्ट करनेकी सामग्री भी मिलती जाती है। जानवरोंमें स्वभावसे ही अनुचित वा अत्यधिक भोगसे बचने और "पूर्ण" रहनेकी एक कुदरती प्रवृत्ति होती है; किन्तु मनुष्य इस अवस्थामें पहुंचकर उस स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार अपना चलन नियमित रखनेके स्थानपर अब कभी इस वासना और कभी उस वासना, कभी इस इच्छा और कभी उस इच्छाको सन्तुष्ट करनेमें ही अपनी शक्तियोंका दुरुपयोग करने लगता है और इसे ही अपने जीवनका मुख्य उद्देश्य बना लेता है। ये वासनाएं गैर-मामूली तौरपर बढ़जाती हैं और मनुष्य थोड़े दिनोंमें अपना सबसे बड़ा हित

इन्हींके सन्तुष्ट करनेमें समझने लगता है। वह अपनी इन्द्रियोंके लिए अपनी "आत्मा"को छोड़ देता है, अंगोंके लिए सर्वस्वको खोबैठता है। "सम्पत्ति" (अर्थात् धन-दौलत) मनुष्यके वाह्य शारीरिक अंगोंको भड़काकर मनुष्यको बाहरकी ओर खींचती है; और कुछ कालके लिये मनुष्यको घेरकर और उसके भीतरकी "संकल्प-शक्ति"को कमजोर तथा अपने वशमें कर यह सम्पत्ति मनुष्यको खण्डित तथा भ्रष्ट कर डालती है।

अन्तमें "सम्पत्ति" इस प्रकार "मनुष्य" की बाहरी प्रकृति भड़काकर और उसकी स्वार्थपरताको उत्तेजितकर उसे अपने भाइयोंसे अलग कर देती है। अपनी व्यक्तिगत इच्छाओंको पूरा करनेके लिए समस्त पदार्थोंको अपनी ही मिलकीयत बना लेनेकी चिन्ता मनुष्यमें पैदा होजाती है, और इस चिन्ताके कारण अवश्यमेव वह अपनी पड़ौसीके साथ जगह जगह टकरा जाता है और उसे अपना प्रतिस्पर्द्धी अथवा शत्रु समझने लगता है। क्योंकि मनुष्यका सच्चा "आपा" इसीमें है कि वह अपने समस्त भाइयोंके साथ इस प्रकार मिलजुल कर रहे जिस प्रकार एक शरीरके विविध अंग एक दूसरेके साथ मिले हुए रहते हैं; किन्तु जब मनुष्य अपने सच्चे "आपे"को भुला देता है तो अपने भाइयोंके साथ उसका सच्चा सम्बन्ध भी टूट जाता है। वास्तवमें प्रत्येक व्यक्ति-मनुष्यके अन्दर समष्टि मनुष्यका शासन होना चाहिये, अन्यथा व्यक्ति-मनुष्यका पतन होकर उसकी मृत्यु अनिवार्य है। किन्तु जब बाहरी मनुष्य अपने तईं भीतरके "मनुष्य"से पृथक कर लेनेका प्रयत्न करता है, अर्थात् जब व्यक्ति-मनुष्य अपने तईं समष्टि "मनुष्य"से अलग करना चाहता है, तब उस व्यक्तिताका यानी शेष मनुष्य-समाजसे हर व्यक्तिकी उस पृथकताका दौर शुरू होता है जो वास्तवमें असत्य और असम्भव है, किन्तु जो सच्ची व्यक्तिता यानी असली शखसीयतका ज्ञान प्राप्त करनेका एकमात्र साधन है।

इस प्रकार एक ऐसी "सभ्यता"के शुरू होते ही, जिसकी बुनियाद "व्यक्तिगत सम्पत्ति"पर है,उस प्राचीन समाजकी एकता खण्डित होजाती है जिसकी बुनियाद संयुक्त जातीय जीवनपर थी। प्राचीन मनुष्य-समाजकी नीव—जिसमें एक जाति वा एक कबीलेके सहस्रों पुरुष-स्त्री हर प्रकारसे संयुक्त जीवन व्यतीत करते थे—रिश्तेदारी और खूनके सम्बन्धपर कायम थी जिससे पुराना भ्रातृभाव और समता बराबर कायम रहती थी, किन्तु अब यह सम्बन्ध सदाके लिये टूटकर उसकी जगह केवल धन-सम्पत्ति पास होनेसे ही एक मनुष्यको अपने दूसरे भाइयों-के ऊपर सब तरहके अधिकार मिलने लगे। "धन"के बढ़नेसे प्राचीन मनु-"समाज"को टुकड़े टुकड़े कर दिया; "धन"के साथ साथ चलनेवाली शक्ति और माल-असबाब इत्यादिके लोभने मनुष्यको उसकी आन्तरिक जड़ोंसे हिलाकर अलग कर दिया; व्यक्तिगत लोभका शासन हुआ;"हर कोई अपनी अपनी फिकर करे"—यही हर किसीका सिद्धान्त होगया; हर मनुष्यका हाथ अपने भाईके खिलाफ उठने लगा, और अन्तको सारा समाजका समाज एक ऐसी संख्या होगई जिसके द्वारा अमीर गरीबोंका खून चूस चूसकर मोटे होते हैं और बलवान निर्बलों-की हत्या करके बढ़ते हैं।

[इस सिलसिलेमें यह बात ध्यान देनेयोग्य है कि लूई मौरा-गन "सभ्यता"के युग और उससे पूर्वकी 'असभ्यता' वा जंगली-अवस्थाके युग, इन दोनोंके फर्ककी दर्शाते हुए लिखाईके अक्षरों-की ईजाद और व्यक्तिगत सम्पत्तिके विचारकी उत्पत्ति, इन दोनों को सभ्यता-युगकी दो मुख्य विशेषताएं बतलाता है; क्योंकि शायद लिखाईकी ईजादसे बढ़कर कोई दूसरा सीमा-चिन्ह उस समयका नहीं मिल सकता, जबसे कि "मनुष्य"के अन्दर आत्मज्ञानका प्रारम्भ हुआ अर्थात् जबसे कि उसे स्वयं अपने अस्तित्वका ज्ञान होने लगा और वह अपने व्यक्तिगत कृत्यों

और विचारोंको लेखबद्ध करने लगा; इस प्रकार उस समयसे ही मनुष्यने असली "इतिहास"को शुरू किया। और व्यक्तिगत सम्पत्तिके रिवाजका शुरू होना उस समयका सीमा-चिन्ह है, जबसे कि मनुष्य अपने तईं अपने दूसरे भाइयोंसे पृथक करने लगा और इसीलिए जबकि पाप (यानी पृथकता) की समझ पहली बार उसमें जागृत हुई, और उसके साथ ही इखलाकी परेशानीका लम्बा युग और अपने तथा अपने भाइयोंके बीचके उस संयुक्त जीवनसे इनकार शुरू हुआ जो वास्तवमें मनुष्य-जीवनका सार है।]

इस इतने पतनके बाद "गवर्नमेण्ट" (हकूमत)नामकी संस्था पैदा हुई।

इसके पूर्व सिवाय एक बिल्कुल प्रारम्भिक वा बीजरूपके गवर्नमेण्टका अस्तित्वतक न था। शुरू जमानोंकी मनुष्य-जातियां व्यक्तिगत मिलकीयतकी कुछ चिन्ता न करती थीं, और जो कोई गवर्नमेण्ट उनके यहां होती थी, वह अधिकतर सच्ची लोकसत्तात्मक होती थी—अर्थात् एक क़बीलेके पैदा हुए सब लोग जो सामाजिक दृष्टिसे बराबर माने जाते थे केवल अपनेमेंसे एकको अपना नेता चुन लेते थे। किन्तु जब मनुष्यको यह भ्रम होने लगता है कि वह केवल अपने संकुचित व्यक्तित्वके लिए भी जीवित रह सकता है—अर्थात् यह कि उसका बाहरी और क्षणिक रूप उसके उस महान् आन्तरिक तथा विश्वव्यापी रूपसे पृथक होकर कायम रह सकता है जिसके द्वारा ही वह अपने भाइयोंके साथ वास्तवमें एक है—जब यह भ्रम मनुष्यको सताने लगता है तो फिर शीघ्र ही इसके फलस्वरूप व्यक्तिगत सम्पत्तिकी कोई न कोई व्यवस्था अवश्य कायम होजाती है। प्राचीन समयका सम्मिलित जीवन और उसका आनन्द फिर उड़ जाता है, और प्रत्येक मनुष्य केवल अपने लिये अधिकसे अधिक सम्पत्ति इकट्ठी करनेका प्रयत्न करता है और अपने ही

दड़बेमें घुसकर अकेला उसका भोग करना चाहता है। खास खास व्यक्तियोंके पास बहुत बहुत धन सम्पत्ति जमा होने लगती है; इन्सानी :जिन्दगीकी निआमतोंका कुदरती प्रवाह जो सब किसीतक पहुंचता था रोक दिया जाता है, और इन नियामतों-रूपी जलकी ऊंची-नीची सतहोंको कायम रखनेके लिए "कानून" नामके खिलाफ कुदरत बन्द बान्ध बान्धकर खड़े करने पड़ते हैं। मिलकीयतकी इच्छाके पीछे पीछे अत्याचार और दगाबाजी चलती है; मालिकोंको और लोगोंके खिलाफ कानूनके बन्धन कायम रखनेके लिए शारीरिक बलका उपयोग करना पड़ता है; मनुष्योंकी ऊंची-नीची श्रेणियां बन जाती हैं; और इस सबके अन्तमें बाजाब्ता "गवर्नमेण्ट" कायम होजाती है, जो मुख्यकर इसी शारीरिक बल वा पशुबलकी एक जाहिरा शकल है; यह "गवर्नमेण्ट" वा हकूमत उस समयतक ज्यों-त्यों कर अपनेको कायम रखती है जिस समयतक कि वह सामाजिक तथा आर्थिक ऊंच-नीच यानी असमता,जिसे गवर्नमेण्ट पुष्ट करती है, अधिक बढ़कर जनताकी आंखोंमे खटकने न लगे और रुके हुए सामाजिक जल जोर पकड़कर, फिर एक बार क्रान्तिद्वारा बन्धनोंको तोड़-फोड़कर अपनी कुदरती सतहों यानी समताको प्राप्त न कर लें।

इसी तरह मौरगन अपनी पुस्तक "Ancient Society" में बारबार दर्शाता है जबकि प्राचीन कबीले और कौमें मनुष्यत्व-के आधारपर कायम थीं, आजकलका सभ्य-समाज इसके विपरीत धन-सम्पत्ति और जमींन्दारीके आधारपर कायम है (यानी जब कि प्राचीन समाजोंमें किसी कबीले वा कौममें उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक मनुष्यको अपने जन्मसे ही दूसरोंके साथ बराबरके अधि-कार प्राप्त होते थे, आजकलके 'सभ्य'-समाजोंमें अधिकारों और शक्तिका कम वा अधिक होना धन और भूमिकी मिलकीयतपर निर्भर है—अ०); और इस भेदके कारण ही 'सभ्य' गवर्नमेण्टोंका

रूप और उनका कार्य प्राचीन मनुष्य-समाजोंके सीधे-सादे संघटनसे बिल्कुल भिन्न है। वह पृष्ठ १२४ पर लिखता है कि—"प्राचीन कुल-पद्धितिके साथ एक राजतंत्र अर्थात् एक राजा वा बादशाहकी अनियंत्रित सत्ता चल ही नहीं सकती।" "सभ्यता" के साथ और "गवर्नमेण्ट" के साथ "व्यक्तिगत सम्पत्ति" का जो सम्बन्ध है उसके विषयमें वह अपने विचार अपनी पुस्तकके पृष्ठ ५०५ पर इन सारगर्भित शब्दोंमें प्रकट करता है—

"मनुष्य" जातिके "सभ्यता" तक पहुंचनेमें सम्पत्तिका जो जो असर पड़ा उसका अन्दाजा लगानेमें मुबालगा वा अत्युक्ति होसकना असम्भव है। सम्पत्ति ही वह ताकत थी जो आर्य (यानी यूरोपियन, भारतीय इत्यादि) और सैमिटिक (यानी यहूदी, अरबी इत्यादि) कौमोंको असभ्य अवस्थासे निकालकर 'सभ्य' अवस्थामें लाई। इन्सानके दिमागमें सम्पत्तिके विचारकी उत्पत्ति निर्बलताके कारण हुई, किन्तु बढ़ते बढ़ते अन्तको यह विचार ही उस दिमागकी सबसे जबरदस्त वासना बन बैठा। "गवर्नमेण्टों" के कायम होने और "कानूनों"के बनाये जानेका सबसे पहला उद्देश्य यही है कि सम्पत्ति पैदा की जावे, उसकी हिफाजत की जावे और उसका भोग किया जावे। सम्पत्तिने ही अपनी उत्पत्ति और बढ़ौतीके लिये एक साधनरूप गुलामीकी प्रथाको जारी कराया; और हजारों वर्षोंके तजरबेके बाद जब यह मालूम हुआ कि एक गुलामकी निस्बत एक आजाद इन्सान ज्यादह अच्छी सम्पत्ति पैदा करनेवाली मशीन बन सकता है तो सम्पत्तिने ही अपने हितमें गुलामीकी प्रथाको तुड़वाया।"

इसी विषयपर एक दूसरी जगह वह लिखता है,—

"यह बात साफ मालूम होती है कि आजकलके समाजके अंगभंग होते ही उस मनुष्य-जीवनका खातमा होजावेगा जिसका अन्तिम लक्ष्य तथा ध्येय सम्पत्ति ही है; क्योंकि इस

प्रकारके जीवनके अन्दर ही उसके अपने नाशके बीज मौजूद हैं। मनुष्यके लिए इससे आगेका अधिक ऊंचा मैदान "लोक-सत्ता" का मैदान है। यह भावी "लोक-सत्ता" एक अधिक उन्नत रूपमें प्राचीन मनुष्य-जातियोंकी आजादी, बराबरी, और भाईबन्दीका ही एक पुनरुज्जीवन होगी।"

वास्तवमें "गवर्नमेण्ट" नामकी संस्थाका कायम होना सामाजिक जीवनमें इस बातका सबूत देता है कि मनुष्यके भीतरका और मरकजी शासन नष्ट होगया, और इसीलिये उसे किसी बाहरके शासनकी जरूरत पड़ी। अपने सच्चे मार्गप्रदर्शक अर्थात् भीतरके "मनुष्य" यानी "आत्मा" के साथ अपना नाता तोड़कर मनुष्य एक ऐसे बाहरके कानूनका सहारा लेने लगता है जो कभी सच्चा हो ही नहीं सकता। यदि प्रत्येक मनुष्य समष्टि रूपसे अपने दूसरे सब भाइयोंके साथ सामाजिक शरीरके बिल्कुल एक अंगकी तरह मिल-जुलकर रहे तो कभी कोई गहरी अस्तव्यस्तता वा विरोध पैदा होने न पावे; किन्तु जब मनुष्य-समाजकी यह प्राणरूप एकता कमजोर होजाती है तो फिर उसे कृत्रिम उपायोंद्वारा कायम रखना पड़ता है और इसीलिए पुराने जमानेके कुदरती और स्वाभाविक सामाजिक जीवनके नाशके साथ साथ एक ऐसी शासन-प्रणाली पैदा होजाती है जो अपनेसे पहली प्रणालीकी तरह समस्त जनसमूहके जीवनका लोक-सत्तात्मक प्रतिरूप नहीं होती; बल्कि जो एक प्रकारका बाहरी अधिकार होती है, जोकि एक शासक-जाति वा शासक-श्रेणी शेष समस्त जनपदके ऊपर जबरदस्ती लाद देती है।

शायद "गवर्नमेण्ट" का सबसे सच्चा रूप, और यद्यपि हमेशा नहीं तो भी बहुधा सबसे आरम्भका रूप, "राजसत्ता" यानी 'एक राजाकी सत्ता' है। जिस समय मनुष्य-जातिकी एकताका भाव बिल्कुल तो नहीं, किन्तु एक दर्जेतक नष्ट होचुकता है, उस समय लोग, समाजको मिलाकर रखनेके उद्देश्यसे, अपने ऊपर

शासन करनेके लिए अपनेमेंसे किसी एक ऐसे व्यक्तिको चुन लेते हैं जिसके अन्दर यह एकताका भाव एक बढ़े हुए दर्जेतक पाया जाता हो। यह व्यक्ति सच्चे अर्थात् आदर्श "मनुष्य" का प्रतिरूप होता है और इसीलिए जनपद्का सच्चा प्रतिनिधि होता है। प्राय: यह वह समय होता है जबकि चारों ओर युद्ध जारी होते हैं और जबकि अलग अलग कौमोंकी रचना होती है। इस सम्बन्धमें यह बात बड़ी मनोरञ्जक मालूम होती है कि सभ्यता-युगके आरम्भ होनेके ठीक पहले प्रत्येक कौमके बिल्कुल शुरूके "राजा" अथवा नेता आम तौरपर सर्वोच्च धार्मिक पदोंसे सम्बन्ध रखते थे, जैसाकि रोमके बादशाह (Rex) यूनानके बादशाह (Basileus) प्रारम्भिक मिश्रके बादशाह, इस्राईल कौममें मूसा, और ब्रिटन जाति (प्राचीन इङ्गलैण्ड-निवासियों) के ड्रूइड नेता, इत्यादि।

कुछ समय बाद, जैसे जैसे कि प्रत्येक मनुष्यके भीतरका शासन और भी अधिकाधिक निर्बल होता जाता है और बाहरी "सम्पत्तिका मोह बढ़ता जाता है, वैसे वैसे ही "समाज"का रूप भी बदलता जाता है। लौकिक शासनके अधिकार और रूहानी यानी मजहबी अधिकार जो पहले मिले हुए होते थे, अब एक दूसरेसे अलग कर दिये जाते हैं। बादशाह, जो आरम्भमें समाजकी "दिव्य आत्मा" (Divine spirit) यानी समष्टि रूपसे समाजकी सामाजिक रूहका प्रतिरूप माना जाता था, अब राजकार भारमें पीछे पड़ जाता है, और उसके ऊंची श्रेणीके अमीर वजीर (जिनकी तुलना अन्तरमें मनके अधिक उच्च और अधिक उदार भावोंके साथकी जासकती है) उसकी जगह लेने लगते हैं। यह जमाना उच्च कुलोंके शासनका (Aristocracy) और बड़े बड़े भूमिपतियोंके शासनका (Feudal age) अथवा यूनानके हकीम अफ़लातून (प्लेट)के अनुसार जायदाद-वालोंके शासन (Timocracy) का जमाना होता है। इस

जमानेमें ही बड़े बड़े भूमिपति पैदा होते हैं और इस जमानेमें ही गुलामी की प्रथा और 'सर्फडम' की वह प्रथा जारी होती है, जिसमें किसी मालिकके खेतमें काम करनेवाले गुलाम उस खेतके बिकनेके साथ ही दूसरे मालिकको बेच दिये जाते हैं—जो गुलामीकी प्रथा इस प्रकार बाहर समाजमें प्रकट होती है वह वास्तवमें मनुष्यकी आन्तरिक गुलामीका बाहरी प्रतिरूपमात्र होती है।

इसके बाद "तिजारतका युग" आता है—जबकि गवर्नमेंट मुट्ठीभर लोगोंके हाथोंमें आजाती है (Oligarchy) अथवा जिसे अफलातून (प्लेटो) 'धनाढ्योंकी गवर्नमेण्ट (Plutocracy) कहता है। "मान-मर्यादा"की जगह अब "धन" को मिलती है। शासक व्यक्तिगत योग्यता अथवा पैतृक अधिकारोंके कारण शासक नहीं बनाये जाते, बल्कि अधिक धन-सम्पत्ति रखनेके कारण। पार्लिमेण्टें, शासन-व्यवस्थाएं (Constitutions) और व्यर्थ धोकेकी कान्फरेन्सें (Palaver) इस समयमें चारों ओर दिखाई देने लगती हैं। मजदूरी देकर गुलामी कराना, सूद, रहन तथा अन्य इसी प्रकारकी नापाक चीजें इस नाशक गतिके बढ़नेके लक्षण हैं। धन-लाभ ही व्यक्तियोंके जीवनका लक्ष्य हो-जाता है; उद्योग-धंधे और वैज्ञानिक छल-कपटोंका उपयोग कर सकनेकी योग्यता मनुष्यके सर्वोच्च गुण गिने जाने लगते हैं।

अन्तमें यह सामाजिक अंगभंग अर्थात् नाशकी गति अपनी हदको पहुंच जाती है। लोग अपने दिव्य स्वरूपको और अपने भीतरके सच्चे मार्ग-प्रदर्शक यानी अपनी आत्माके समस्त इतिहास और उसके अस्तित्वतकको बिल्कुल भूल जाते हैं। मनुष्यकी उच्चतर वासनाओंका धीरे धीरे नाश होता जाता है, क्योंकि उन्हें भीतरमें कोई ऐसा नेता नहीं मिलता जिसको वे अपने तईं अर्पण कर सकें। उसकी परिश्रम-शक्ति और उसका दिमाग, दोनों केवल उसकी उन छोटी छोटी इच्छाओंको पूरा करनेका

काम करते हैं जो उसे चारों ओरसे घेरे रहती हैं। यही असली अराजकताका जमाना है—जिसे कारलाइल* अपने शब्दोंमें जन-सत्ताका जमाना कहता है; असलमें वह भब्बड़ यानी भीड़ (Mob-law) के शासनका जमाना होता है; कूट-राजनीतिज्ञों-की गुप्त बैठकें और राजनैतिक गप्पें, अहमहम्यता और सर्व-व्यापी लोभ, इस जमानेमें फोड़ोंकी तरह फूट फूटकर प्रजाके साथ अन्यायों और धनके जोरपर हुकूमतोंके रूपमें प्रकट होते हैं—समस्त समाज सर्वव्यापी अस्तव्यस्तता और तूफानकी हालतमें दिखाई देने लगता है। क्योंकि ठीक जिस तरह हम मनुष्यके शरीरमें देख चुके हैं कि "स्वस्थता"की भीतरी और भावात्मक शक्तिका लोप होते ही, शरीर रोगके ऐसे कीड़ों आदिका शिकार बन जाता है जो चारों ओरसे उसे घेरकर खाजाते हैं; इसी तरह जबकि सामाजिक शरीरसे उस शरीरकी असली जान उसकी चलानेवाली मरकजी शक्ति जाती रहती है, तो वह शरीर स्वार्थ और वैयक्तिक लोभरूपी कीड़ोंकी तक-लीफके कारण तड़पने लगता है, और अन्तको किसी एक ऐसे अत्यन्त भयंकर अहंकारी स्वार्थी अन्यायीके वशमें पड़ जाता है जो सामाजिक जीवनकी उस भ्रष्टताद्वारा ही पैदा हुआ होता है।

इसप्रकार हमने थोड़ेसे शब्दोंमें उस "रोग"के विविध लक्षणों-के एक दूसरेके बाद प्रकट होने और बढ़नेको बयान किया है जोकि, जैसा हम पहले कह चुके हैं, जिन जिन कौमोंपर हमला करता है उन सबमें यद्यपि बिल्कुल यही नहीं तथापि अधिकतर इन्हीं अवस्थाओं और लक्षणोंमेंसे गुजरता है। और यदि यह अन्तिम अवस्था ही वास्तवमें मनुष्यके सामाजिक जीवनकी सबसे अन्तिम होती, यदि यही असली "लोक-सत्ता" (Demo-

* १७९५—१८८१ इङ्गलैण्डका एक मशहूर विद्वान और लेखक।

cracy) होती, तो निस्सन्देह भविष्यके लिए शुभ आशाकी कोई गुंजाइश न थी। कारलाइलके (जिसने लोक-सत्तात्मक राज्यकी बड़ी बड़ी आलोचना की है) कड़ेसे कड़े शब्द भी इस लोक-सत्ताकी कालिमाको पूरी तरह चित्रित न कर सकते। किन्तु वास्तवमें यह कोई सच्ची "लोक-सत्ता" नहीं है। "हर एक आदमी अपनी अपनी फिकर करे" (Each for himself)इसमें उस लोक-आत्मा (Demon) का बनाया हुआ कोई नियम नहीं जो हर मनुष्यके अन्दर मौजूद है, और न इसमें उस लोक-आत्माके नियमोंसे मिलती-जुलती कोई बात है। इसमें उस ठोस एकता और समानताका पतातक नहीं जोकि प्राचीन जातियों और प्रारम्भिक समाजमें पाई जाती थीं, बल्कि उसके बजाय इस असूलका नतीजा केवल टुकड़े टुकड़े होना और अन्तमें एक मिट्टीका ढेर दिखाई देता है। सच्ची "लोक-सत्ता"का कायम होना अभी बाकी है। यह मौजूदा हालत केवल भीतरके और असली शासनको फिरसे स्थापित करनेके लिये तैयारीकी वह हालत है जिसमें मनुष्य पहले हर प्रकारके बाहरी शासन और विशेष श्रेणियोंकी गवनमेण्टोंको सहन करनेसे सदाके लिये इनकार कर देता है। इस अवस्थातक पहुंचकर "सभ्यता" का काम खतम होजाता है; इन तमाम सदियोंका असली मतलब और उद्देश्य पूरा होजाता है; वह कड़ुवा तजुरबा, जिसमेंसे होकर मनुष्य जातिको गुजरना जरूरी था, पूरा होजाता है; और अन्तको इस मृत्युमेंसे तथा इसके साथ साथ होनेवाली समस्त पीड़ाओं और बेचैनीमेंसे ही मनुष्यका पुनरुज्जीवन (Resurrection) होता है। "मनुष्य" अपनी दिव्य आत्मासे पृथकता वा वियोगकी गहराइयोंकी थाह लेचुकता है, वह कष्टोंके प्यालेकी अन्तिम बूँदेंतक पीचुकता है, वह अक्षरशः "नरक" (Hell) में पहुंच चुकता है; इसके बाद अब वह अपने व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन, दोनोंमें पीछे मुड़कर फिरसे, पूरे

निश्चयके साथ और ज्ञानके साथ, एकताके उस शिखरकी ओर चढ़ता है जिसे वह खो बैठा था *।

इसी झूठी लोक-सत्ताकी तहमें सच्ची "लोकसत्ता" धीरे धीरे रूप धारण करने लगती है,यह सच्ची "लोक-सत्ता" किसी अर्थमें भी बाहरकी गवर्नमेण्ट नहीं होती, वल्कि भीतरका शासन अर्थात् प्रत्येक मनुष्य यानी व्यक्ति (Unit man) के अन्दर लोक-"आत्मा" (Mass-man) का शासन होता है, और इस सच्ची "लोक-सत्ता"के रूप धारण करते ही उसे व्यक्त यानी विकसित करनेके लिये झूठी लोक-सत्ता इस प्रकार ऊपरसे फटकर अलग होजाती है जिस प्रकार कलीको दर्शानेके लिए ऊपरके पत्ते चटककर अलग होजाते हैं। क्योंकि किसी तरहकी बाहरी गवर्नमेण्ट भी समाजकी रक्षाके लिये एक क्षणिक उपायसे बढ़कर और कुछ नहीं होसकती—ये सब गवर्नमेण्टें एक इस तरहका अनस्थाई कड़ा छिलका वा खाल होती हैं जो उस

* सभ्यता-कालकी एक और विशेषता ध्यान देनेयोग्य यह है कि इस कालमें एक ओर शारीरिक इन्द्रियोंकी शक्ति और दूसरी ओर सद् सदमें विवेक करनेवाली अन्तरकी नैतिक शक्ति, इन दोनोंके मुकाबलेमें और इनसे पृथक मन यानी दिमागकी सूक्ष्म प्रवृत्तियां Abstract in tallect असाधारण ढङ्गसे बढ़ जाती हैं। यह देखते हुए कि जिस झूठी व्यक्तिता वा पृथकताका उत्पन्न करना "सभ्यता" का उद्देश्य है उसका स्वभावसे ही एक बहुत बड़ी कला असलीयतसे अलहदा खिंच जाना है, परिणामरूप हमें इस युगमें इन कोरी दिमागी बारीकियोंके बेजा तौरपर बढ़ जानेकी आशा करनी ही चाहिये थी। होता यह है कि इस युगमें मनुष्य अपने चारों ओरकी विशाल असली दुनियासे अलग अपने लिए एक मानसिक दुनिया गढ़ लेता है; वह पुस्तकोंके अन्दर "असली चीजोंके भूतों" का अध्ययन करने लगता है; विद्यार्थी मकानोंके अन्दर रहते हैं, वे खुली हवाका सामना नहीं कर सकते—

समयतक अन्दरकी नई जानको संभाले रखता है जबतक कि उसका पूरा स्वरूप बनकर तय्यार न होजावे—अथवा सभ्यता-युगके ध्येयको सिद्ध करनेकी वे तरकीबें होती हैं। इससे आगे बाहरी गवर्नमेण्ट नहीं जासकती; क्योंकि कोई सच्चा जीवन किसी बाहरी आधारके सहारे नहीं ठहर सकता, और जब मनुष्य-समाजका सच्चा जीवन प्रकट होगा, तो उसके समस्त नये बाहरी रूप ठीक, कुदरती, स्वाभाविक, स्वतःप्रवर्तित और स्वेच्छा-प्रेरित होंगे।

उनके किताबी सिद्धान्त "मुमकिन है पढ़ाईके कमरेमें अच्छी तरह साबित होजावें, किन्तु घिरे हुए बादलोंके नीचे वा भू-प्रदेशों और बहते हुए चश्मोंके सामने बिल्कुल साबित न होसकें" बच्चोंको असली जिन्दगी से अलग रखकर "शिक्षा दी जाती है" अत्यन्त कमजोर नीवोंके ऊपर फलसफे और विज्ञानके ऊंचे ऊंचे मायावी मन्दिर खड़े किये जाते हैं; और इन मन्दिरोंमें विद्यार्थी वास्तविक घटनाओंसे दूर सुरक्षित रहकर अपना समय बिताता है। क्योंकि जिस तरह पानीकी एक बून्द, लाल जलते हुए लोहेके साथ मिलते ही, अपने तई भापके एक बादलके रूप-में लपेटकर सर्वनाशसे अपनी रक्षाकर लेती है, इसी तरह मनुष्यका छोटासा दिमाग, इस डरसे कि कहीं "कुदरत" और "खुदा" की जलती हुई सचाईसे छूकर वह नष्ट न हो जावे, इस स्पर्श (की सम्भावना) के हर अवसरपर झूठे कोरे विचारोंका एक खोल बनाकर कुछ समयके लिए उस खोलके अन्दर 'कुदरत' और खुदासे पृथकताका जीवन बिताता है। और अन्तको यह खोल ही उसके अन्दर आत्मज्ञानका पोषण कर उसे बड़ा करनेवाली धाय साबित होता है।

चौथा अध्याय

और अब भविष्यकी एक झलक लेनेके लिए—देखें—इस हजारों वर्षके भटकनेके बाद मनुष्य किस रास्ते जावेगा ?

यह एक ऐसा विषय है जिसे हाथ लगानेकी हमको पूरी हिम्मत नहीं होती। अमरीकाका सुप्रसिद्ध विद्वान् महात्मा थोरो* लिखता है—"प्रातःकालकी हवा हमेशा बहती रहती है, सृष्टिकी कविता निरन्तर जारी है—किन्तु बहुत थोड़े कान हैं जो उसे सुनते हैं।" और हम लोग जो इस वर्तमान जीवनके भंवरके अन्दर पड़े हुए हैं अपने भावी गौरव और ऐश्वर्यका किस तरह ठीक ठीक अनुमान कर सकते हैं ? किन्तु हमें अपने आजकलके ज्ञानकी कायमकी हुई हदबन्दियोंसे डर नहीं जाना चाहिये; जब समय आवेगा तब वे सब बातें, जो इस समय असम्भव मालूम होती हैं, बड़ी आसानीसे हल होजावेंगी; और शरीर-व्यवच्छेद-विद्या सम्बन्धी यह कठिनाई कि मनुष्यके पर कहां लगेंगे और कैसे लगेंगे उस समय लोप होजावेगी जिस समय पर स्वयं निकलते हुए अनुभव होंगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं होसकता, जैसा अभीसे जाहिर होरहा है कि भविष्यमें लोगोंकी प्रवृत्ति 'कुदरत'की ओर और 'सम्मिलित सामाजिक जीवन' की ओर फिरसे लौटनेकी होगी। भूतकालके उस खोए हुए स्वर्गका, जिसमें आदम और हव्वा रहते थे अथवा कहना चाहिये कि भविष्यके उस नये स्वर्गका,

---

*१८१७-१८६२, अमरीका एक सर्वोच्च कोटिका विद्वान, दार्शनिक तत्ववेत्ता, और सत्याग्रही। उसकी दो पुस्तकें The Duty of Civil Disobedience और Waldenor Life in the Words अंगरेजी भाषाके ग्रन्थरत्नोंमेंसे हैं—

जिसकी कि पिछला स्वर्ग केवल एक छायामात्र था, यही मार्ग है। "मनुष्य" को अपने सदियोंके उन गिलाफों और खोलोंको उतारकर फेंक देना होगा, जिनके द्वारा वह अपने तईं सूर्यकी रोशनीसे अलग बन्द करके एक तरहकी जाहिरा मौतकी हालतमें पड़ा रहा, किन्तु साथ ही उस हालतमें चुपचाप अपने शानदार भावी पुनरुज्जीवन और ऐश्वर्यकी तैयारी करता रहा—न केवल अपने पुनरुज्जीवनकी, बल्कि समस्त संसारके पुनरुज्जीवनकी, क्योंकि मनुष्य ही वह अद्भुत पुराना छिलका अथवा वह सीप है जो संसारकी वास्तविक आत्माको अपने भीतर छिपाए हुए है। मनुष्यको भविष्यमें मकानोंसे और अपने उन सब अन्य आश्रय-स्थानोंसे बाहर निकलना होगा जिनमें कि इतने समयतक मारे शर्मके उसने अपने आपको छिपाए रखा, ठीक उस ही तरह जिस तरह कि बहिश्तके बागमें खुदाकी आवाज सुनकर हजरत आदमने अपने तईं छिपा लिया था—और एक प्रकार फिरसे उसे "कुदरत"को ही अपना घर बनाना होगा जिस तरह कि जानवरों और फरिश्तों, दोनोंने उसे अपना घर बना रखा है।

जैसाकि एक पुरानी जादू भरी कहावतमें लिखा है:—मनुष्य नीचे उतरनेके लिए वस्त्र धारण करता है, और ऊपर चढ़नेके लिए वस्त्र उतार फेंकता है। अपने रूहानी अथवा हवाई जिस्मके ऊपर मनुष्य एक मिट्टीका शरीर धारण करता है; इस मिट्टीके जिस्मके ऊपर वह जानवरोंकी खालें और दूसरे कपड़े पहनता है; फिर वह इस जिस्मको पर्दों और पत्थरकी दीवारोंके पीछे एक मकानके अन्दर छिपा लेता है। यह मकान उसके लिए दूसरी खालों वा विस्तृत शरीरोंकी तरह हो-जाते हैं। इस प्रकार मनुष्यके और उसके सच्चे आपे या सच्चे जीवनके बीच झाड़-झंकारोंकी एक घिनी और अभेद्य दीवार खड़ी होजाती है; और अपने इस मिट्टीके जिस्म और उसकी

तमाम खालों और मकानों आदिसे उत्पन्न होनेवाली अनेक चिन्ताओं और फिकरोंके कारण मनुष्य शीघ्र इस बातको भी भूल जाता है कि वह "मनुष्य" यानी "आत्मा" है; उसका यह सच्चा आपा—उसकी आत्मा—इस प्रकार सदियोंके लिए एक गहरी सुषुप्तिकी अवस्थामें चला जाता है।

किन्तु उन सब लोगोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति, जोकि अपने अन्दरकी आत्मा अर्थात् अपने ईश्वरीय रूपको आजाद करना चाहते हैं, इन वस्त्रोंको उतार फेंकनेकी तरफ है; केवल "वस्त्रों" शब्दके शब्दार्थकी दृष्टिसे ही नहीं, बल्कि उससे कुछ बढ़कर अर्थों में भी। स्वयं विकासकी सारी गति ही, जोकि एक प्रकार कलियोंके ऊपरसे छिलका वा पत्तोंके छिटक छिटककर अलग होने और इस ही तरह नित्य नई कलियोंके भीतरसे निकलते रहनेकी गति है, केवलमात्र "कुदरत" का लगातार अनेक वस्त्रोंको उतार उतार कर फेंकना है, जिसके द्वारा कि उस परिपूर्ण मानव "रूप"का व्यक्त होना जोकि समस्त प्रकृतिकी मूल है अधिकाधिक निकट आता जाता है।

इस प्रकार अपनी खोई हुई "स्वस्थता" को फिरसे लाभ करनेके लिए मनुष्यको भविष्यमें इस ओर झुकना होगा। दरवाजों और मकानोंके अन्दरका जीवन जो इस समय उसके अस्तित्वका अधिकांश वा मुख्य भाग है केवल एक छोटासा अंश रह जाना चाहिये। इसी तरह ओढ़ने-पहननेके कपड़ोंमें भी बहुत कमी करनी होगी। इस समय यह पता लगानेकी जरूरत नहीं है कि यह गति किस हद्तक जावेगी। साफ जाहिर है कि इस समय हमने अपने घरेलू जीवनके जो सामान—कपड़ों आदिका एक जबरदस्त बुत बना रखा है, और हम उनमेंसे अनेक ही ऐसी फजूलियातको एकदम निकालकर अलग कर सकते हैं, जिनके छोड़ देनेसे बहुत बड़ा लाभ होगा। हम उन्हें बजाय बुत बनाकर पूजनेके

केवल अपनी जरूरतके अनुसार उन्हें अत्यन्त थोड़ा कर इसी समयसे उन्हें अपने अधीन कर सकते हैं। हर मनुष्यको इस बातका विश्वास करना चाहिये कि इस बातमें उसे जितना लाभ होगा उतना ही उसे सच्चे जीवनका लाभ होगा—चाहे उसका खुला हुआ सिर आकाशकी हवाका स्पर्श करे, अथवा उसके नंगे पैर बिजलीभरी पृथ्वीको दबाकर चलें, या उसके केवल नंग ढकनेके कपड़े अपने जंजालमेंसे उसकी उपस्थ इन्द्रियोंतक रोशनीको सीधा पहुंचने दें—हर सूरतमें उसे सच्चा लाभ होगा। खुली हवाकी जिन्दगी, आंधियों और लहरोंके साथ बेतकल्लुफी, स्वच्छ और पवित्र भोजन, जानवरोंके साथ सहचारिता—यहांतक कि अपने भोजनके लिए महती "माता प्रकृति" के साथ कुश्ती—ये तमाम चीजें धीरे धीरे फिरसे उस सम्बन्धको कायम कर देंगी जिसे मनुष्यने इतने दिनोंसे तोड़ रखा है; और इस सबके परिणामरूप जो नई जीवनी शक्ति उसके शरीरके अन्दर प्रवाह करने लगेगी, वह उसे तन्दुरुस्तीकी उस अद्भुत परिपूर्णता और अस्तित्वके उस ज्योतिर्मय विकासतक पहुंचा देगी जिसका इस समय उसे गुमानतक नहीं है।

निस्सन्देह जवाबमें यह कहा जासकता है कि इनमेंसे कई बातोंपर हमारे देशमें (अर्थात् इङ्गलैण्डमें) अमल होसकना कठिन है, हमारी आबोहवा हमें दरवाजोंके अन्दर रहने और उसके सब सुख-दुःख सहनेके लिए मजबूर करती है। किन्तु यदि यह बात कुछ दर्जेतक—और असलमें बहुत ही कम दर्जेतक—सच भी है तो भी यह कोई कारण नहीं कि हम जो दिशा हमें ऊपर बताई गई है उस दिशामें आगे बढ़नेके हरेक अवसरसे पूरा पूरा फायदा क्यों न उठावें। साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि हमारे यहांकी आबोहवा अधिकतर हमारे ही हाथोंकी बनाई हुई है। यदि हमारे अनेक बड़े बड़े शहरोंकी और उनके आसपास मीलोंतककी हवा इतनी जीवन-रहित और

जहरीलो है कि ठण्डी मौसममें गरीब मनुष्यके अन्दर सरदीका मुकाबला करनेकी शक्ति पैदा करनेके बजाय वह उसे ओवर कोट और गुलूबन्द लपेटकर अपनी जिन्दगीको खतरेमें डालनेपर मजबूर कर देती है—तो इसमें कसूर सिवाय हमारे और किसी-का नहीं। हमने जान-बूझकर अपनी भूमिको धुएंके एक गिला-फसे ढक रखा है, और उस गिलाफके नीचे नीचे हम स्वयं अपनी कबरोंकी ओर बढ़े चले जारहे हैं।

किन्तु यह बिलकुल सम्भव है कि यहांकी आबोहवा, अच्छीसे अच्छी हालतमें भी, मनुष्य-जीवनकी सर्वोच्च अवस्था-ओंके लिये उपयुक्त न हो। यदि इङ्गलैण्ड "सभ्यता" की कुछ बड़ीसे बड़ी घटनाओंकी रंगभूमि रहा है तो इससे यह जरूरी नहीं होता कि आगे आनेवाले युगमें भी इङ्गलैण्ड ही नेता बना रहेगा। सम्भवतः भविष्यकी "उच्चतर (वा उन्नततर) जातियां" अधिक गरम मुल्कोंमें पैदा होंगी, जहांका कि जीवन इङ्गलैण्डके जीवनकी निस्बत अधिक सम्पन्न, अधिक फलप्रद, अधिक परि-पूर्ण, अधिक स्वाभाविक और अधिक उदार है।

इस सम्बन्धमें एक दूसरी बात भोजनका प्रश्न है। जब कभी भी मनुष्यके अन्दरकी मरकजी शक्ति निर्बल होजावे वा नष्ट हो जावे तो उसे फिरसे ठीक करनेके लिए अधिकतर फलों और नाजका आहार सबसे ज्यादह उपयुक्त रहता है। मांस अकसर थोड़ेसे समयके लिए शरीरकी नसोंमें खूब ताकत पैदा कर देता है—और खास खास बातोंके लिए मुफीद होसकता है; किन्तु जो ताकत मांस खानेसे पैदा होती है वह क्षणिक दौरेकासा वा बुखारकासा जोश दिखानेवाली होती है; मांस खाना आम तौरपर शरीरके बाह्य चक्रों यानी इन्द्रियोंको भड़काता है, और उस दर्जेतक ही उन इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाली भीतरकी शक्तिको निर्बल करता है। जो लोग अधिकतर मांस खाकर रहते हैं उन्हें बीमारियां अधिक होती हैं—और केवल शारीरिक

बीमारियां ही नहीं; क्योंकि उनके मन भी ज्यादह आसानीके साथ इच्छाओं और शोकका शिकार होजाते हैं। इसलिए रंजके समय वा किसी प्रकारके भी मानसिक कष्टके समय, अथवा जिस्मानी बीमारीके समय भी फौरन अधिक सादा और शुद्ध भोजन अर्थात् निरामिष भोजन शुरू कर देना चाहिये। इस तरहके भोजनसे मेहनत करनेमें शरीरको थकान कम होती है, किसी तरहका दर्द कम महसूस होता है और सरदी-गरमीका असर भी कम होता है; और शरीरके जख्म गैर-मामूली शीघ्रताके साथ अच्छे होजाते हैं; ये सबकी सब बातें हमें एक ही नतीजेपर लेआती हैं। दूसरी एक यह बात भी ध्यानमें रखनेयोग्य है कि बीजकी किस्मके खानोंमें—जिनसे हमारा मतलब हर तरहके फल, मेवे, कन्द, अनाज, अण्डे इत्यादिसे है (और इसीमें मैं दूधकी मुख्तलिफ शक्लें जैसे मक्खन, पनीर, दही इत्यादि भी शामिल कर लेता हूं)—इन सब खानोंमें न केवल कुदरती तौरपर और एक अत्यन्त सार रूपमें शारीरिक जीवनके सब तत्त्व ही मौजूद होते हैं, वरन् इनमें एक और विशेष लाभ यह है कि ये सब चीजें बिना किसी जीवकी हिंसा किये प्राप्त की जासकती हैं—क्योंकि सम्भव है कि बन्दागोभी भी, जब हम उसे जड़से उखाड़कर उबालते हैं, रोती हो किन्तु उसकी आवाज हमें सुनाई न देती हो, परन्तु स्ट्रावरीका पौदा हमें अपने फल तोड़नेके लिये बुलाता है, और खासकर उन्हें लाल रंग देता है ताकि हम उन्हें देख सकें और खासकें! इन दोनों विचारोंसे हमें इस बातका विश्वास होजाना चाहिये कि इस तरहका भोजन मनुष्य-जीवनके सारको उन्नत करनेके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है।

इस सबका मतलब शुद्धता यानी पाकीजगी है। जिस समय मनुष्यके स्वभावकी एकता फिरसे कायम होजावेगी उस समय शरीरके भीतर और बाहर, दोनों ओरकी शुद्धताकी वह कुदरती

आदत जो पशुओंका एक अत्यन्त स्पष्ट गुण है, फिरसे मनुष्यमें पैदा होजावेगी। भेद केवल यह होगा कि उस समय केवल एक अन्धी कुदरती आदत होनेके स्थानपर वह एक ज्ञानयुक्त और आनन्ददायक प्रवृत्ति होगी; क्योंकि गन्दसे केवल अव्यवस्था और रुकावट होती है। इस प्रकार जिस समय सम्पूर्ण मनुष्य अपने अन्तर्तम केन्द्रसे लेकर बाहरकी परिधि अर्थात् बाहरसे बाहरके अङ्गोंतक शरीर और मन, दोनोंमें शुद्ध और नूरानी होकर "नया दिव्य रूप" धारण कर लेता है, उस समय 'रूहानी' और 'जिस्मानी', इन शब्दोंका भेदतक मिट जाता है। फिर व्हिटमैन * के शब्दोंमें दिखाई देने लगता है कि—"स्थूल पदार्थ और निराकार आत्मा सब एक हैं।"

किन्तु "कुदरत" की ओर इस वापिस जाने और एक प्रकार-से समस्त विश्वके साथ मिलकर एक होजानेका मतलब मनुष्य-जीवन और उसके शौककी चीजोंको त्याग देना वा उनकी बेकदरी करना हरगिज नहीं है। आम तौरपर यह समझा जाता है कि "मनुष्य" और "कुदरत", इन दोनोंमें एक प्रकारका विरोध है, और "कुदरत" से अधिक मिलकर जीवन व्यतीत करनेकी सलाहका अर्थ केवल वैराग्य अथवा संन्यास है; और बदकिस्मतीसे आजकलके हिसाबसे यह विरोध है भी ठीक, यद्यपि निस्सन्देह यह सदाके लिए कायम न रहेगा। आज बद-किस्मतीसे यह बिलकुल ठीक है कि अकेला "मनुष्य" ही एक ऐसा जानवर है जो जहां रहता है वहां अपने अस्तित्वसे "प्रकृति" को सजाने और अधिक सुन्दर बनानेके स्थानपर उसे अधिक खौफनाक बना देता है। लोमड़ी और गिलहरी जङ्गलमें अपने घर बनाकर जङ्गलके सौन्दर्यको बढ़ाती हैं; किन्तु जब ऐल्डर-मैन स्मिथ वहां जाकर अपना मकान बनाता है तो वहांके देवता अपना असबाब लपेटकर वहांसे चल देते हैं; वे उसे

* १८१९-१८९२, अमरीकाका एक प्रसिद्ध तत्ववेत्ता।

सहन नहीं कर सकते। अफरीकाकी बुशमैन नामकी जङ्गली जातिके लोग नंगी चट्टानोंके ऊपर अपनेको छिपाकर पत्थरके रंगमें मिलकर एकमय हो अपनेको अदृश्य बना सकते हैं; वे अपने नंगे छोटे छोटे पीले रंगके शरीरोंको रस्सीकी तरह एक दूसरेमें मिलाकर सूखी लकड़ियोंके गट्ठोंके समान दिखाई देने लगते हैं; किन्तु जब ऊंचा टोप और फ्रौक कोट पहरे आजकलका कोई यूरोपियन वहां दिखाई देजाता है तो पक्षी चिल्लाते हुए वृक्षोंसे उड़ जाते हैं। प्राचीन यूनानियोंने यह एक बड़े गौरवका काम किया था कि उन्होंने "कुदरत" को अपनाकर उसे और अधिक सम्पूर्ण तथा निर्दोष बनाया। यूनानकी राजधानी एथन्सके महलपर'कुदरती लाइम स्टोन पत्थरकी तहोंमेंसे उन लोगोंने 'पार्थिनौस' देवताका विख्यात विशाल मन्दिर खड़ा कर दिया जिसमें चट्टानकी कुदरती रेखाओंको धीरे धीरे इस तरहपर मेहराबों, कगारों आदिकी निर्दोष मनुष्यकृत सुन्दरतामें बदल दिया कि जो मालूमतक नहीं होता, और उसमें आकाशकी नीली हवाको खुले उतरने और रहनेका मौका दिया; इसी तरह अपने तमाम अच्छेसे अच्छे कामोंमें और अपने जीवनमें उन्होंने जमीन आस्मान और तमाम स्वाभाविक और कुदरती चीजोंके साथ अपना यही अत्यन्त नजदीकी सम्बन्ध कायम रखा, और उनमें तथा अपनेमें किसी तरहका भेद वा दूरी पैदा होने न दी, बल्कि उनकी कुदरती अर्थसूचकता और सुन्दरताको और भी अधिक परिपूर्ण कर दिया। भविष्यमें किसी न किसी दिन हम लोग भी उन बातोंको अवश्य समझेंगे जिसे यूनानियोंने सच्चे "कला कौशल" के उषाकालमें ही इतनी अच्छी तरह समझ लिया था।

सम्भवतः किसी न किसी दिन हम फिर अपने मकान और रहनेके स्थान इतने सीधे-सादे और सरल ढंगके बनाने लगेंगे कि वे पहाड़ोंकी कन्दराओंमें, वा नदियोंके तटके बराबर

बराबर, अथवा जङ्गलोंके किनारोंपर बिना भूप्रदेशके सौन्दर्यको बिगाड़े वा पक्षियोंके गानेमें बाधा डाले खप जाया करेंगे। उस समय पहाड़ोंकी प्रत्येक चोटीपर अथवा नदियों वा झीलोंके तटोंपर बड़े बड़े सुन्दर भवनोंमें तमाम कीमती और प्यारी चीजें ला लाकर जमा कर दीजावेंगी। वहांपर पुरुष, स्त्री तथा बच्चे आ आकर उस जबर्दस्त और अद्भुत सम्मिलित जीवनमें भाग लेंगे। इन सार्वजनिक भवनोंके आसपासके बगीचे उन जानवरोंके लिए छोड़ दिये जावेंगे जिन्हें कोई हानि न पहुंचावेगा और जिनका उन बागोंमें विचरना शुभ समझा जावेगा; वहांपर हर किसीके लिए पुस्तकोंके गाने, बजाने और कला-कौशलके संग्रह रहेंगे और सबके लिए पूरी पूरी सुविधाएं रहेंगी; वहींपर सामाजिक जीवनके लिये और परस्पर व्यवहारके लिए सबके आने और मिलनेकी जगह होगी, वहींपर नाच, खेल और दावतें होंगी। हर गांवमें और हर छोटीसे छोटी आबादीमें इस तरहके एक वा एकसे सधिक भवन होंगे। व्यक्तिगत संग्रहोंकी कोई जरूरत न होगी। हरेक पुरुष खुशीके साथ और उससे भी ज्यादह खुशीके साथ हरएक स्त्री उन चीजोंको छोड़कर, जो तत्काल और आवश्यक उपयोगमें होंगी, अपनी बाकी सब कीमती चीजें उस सार्वजनिक स्थानपर पहुंचा देगी, जहांपर कि उन चीजोंका आनन्द उठा सकनेवाले लोगोंकी संख्या बढ़ जानेके कारण चीजोंकी कीमत और उपयोगिता भी सैकड़ों, बल्कि सहस्रों गुणा बढ़ जावेगी, और जहांपर कि इधर-उधर व्यक्तियोंके हाथोंमें पड़े रहनेकी निस्वत उनकी बहुत ज्यादह पूरी तरह और बहुत कम परिश्रमके साथ हिफाजत की जासकेगी। एकदम घरोंकी हिफाजतकी आधी मेहनत और सारी चिन्ता मिट जावेगी। आजकलके रहनेके मकानोंमें जितना ज्यादह और जितना ज्यादह कीमती सामान होता है, उतने ही वे मकान भी ज्यादह व ज्यादह कीमती और भूलभुलइयांके समान

फैले हुए होते हैं। किन्तु उस समयके रहनेके मकान ऐसे न रहेंगे और इसलिए उनकी खिड़कियों और दरवाजोंको आजकलकी तरह अपने इन्सान-भाइयों और माता-प्रकृतिके खिलाफ ईर्ष्यापूर्वक बन्द रखनेकी जरूरत न होगी। धूप और हवा आजादीसे उन मकानोंमें जासकेगी,और मकानोंमें रहनेवाले भी उतनी ही आजादीके साथ बाहर आ जासकेंगे। किसी भी पुरुष वा स्त्रीको फिर उसके रहनेके मकानके साथ एक गुलामकी तरह बांध न दिया जावेगा; और अन्तको मनुष्यके वे घर, जोकि कमसे कम आधी मनुष्य-जातिके लिए इस समय जेलखाने बने हुए हैं, फिरसे 'कुदरत'के अंग बनकर जेलखाने न रह जावेंगे।

लोग अकसर पूछते हैं कि नई "गृह-निर्माण-कला" क्या होगी और किस तरहकी होगी। किन्तु इस तरहके सवालका उस समयतक कोई जवाब नहीं दिया जासकता जिस समयतक कि लोगोंके दिमागोंमें मनुष्य-जीवनके विषयमें नई तरहके विचार प्रवेश न कर चुके हों, और जब ये विचार बदल जावेंगे तो इस सवालका जवाब स्वयं ही साफ समझमें आजावेगा। क्योंकि जिस प्रकार प्राचीन यूनानके बड़े बड़े दर्शनीय "मन्दिर" और मध्यकालीन यूरोपकी "गौथ" जातिके आलीशान "गिरजे" उन लोगोंके बनाये हुए हैं जो हमारे आजकलके विचारोंके अनुसार एक अत्यन्त सरल और किफायतकी जिन्दगी बसर करते थे,और जो अपने अच्छेसे अच्छे कामों और अपनी कीमतीसे कीमती चीजोंको अपने देवताओं और अपनी जातिके सम्मिलित जीवनके नामपर अर्पण कर देनेको सदा तैयार रहते थे; और जिस प्रकार कि आज दिन जबकि एक ओर हमारा अपना बड़े बड़े और ऐश ओ आरामके सामानसे भरे हुए बंगलोंके बिना गुजारा ही नहीं होसकता, दूसरी ओर मालूम होता है कि हम एक साफ-सुथरे गिरजे वा एक साफ-सुथरे सार्वजनिक भवनकी तजवीजतक कर सकनेके नाकाबिल हैं; इसी तरह जबतक हम फिर एक

बार मुख्य हित और अपना मुख्य जीवन ही अपने देवताओंके जीवनमें और अपने समाजके सम्मिलित जीवनमें अनुभव न करने लगेंगे तबतक हमारी गृह-निर्माण-कलामें भी नया जीवन और नये भाव पैदा न होंगे। उस समय जबकि हमारे "मन्दिर" और हमारे "सार्वजनिक भवन" किसी बनवानेवाले वा किसी चन्दा देनेवाले धनाढ्य व्यक्तिके यशको बढ़ानेके मतलबसे न निर्माण किये जावेंगे, बल्कि आजाद मर्दों और अजाद औरतोंके उपयोगके लिये, खुले आसमान, और समुद्र और सूर्यका सामना करते हुए वृक्षों और चट्टानोंसे मिलते हुए और धूपसे चमचकाती हुई गोल पृथ्वी अथवा गहरी तारोंभरी रातके ठीक समान भावोंको प्रकट करते हुए, स्वयं पृथ्वीके गर्भसे निकालकर खड़े किये जावेंगे—उस समय, हम कहते हैं कि, उनके रूप और बनावटका निर्णय स्वयं ही शीघ्रताके साथ होजावेगा, और उन्हें सौन्दर्य प्रदान करनेमें लोगोंको कोई भी कठिनाई न होगी। और यही बात लोगोंके घरों अथवा रहनेके मकानोंके विषयमें कही जासकती है। इस तरहके मकान लोगोंकी विविध आवश्यकताओंके लिए विविध प्रकारके ही होंगे, चाहे केवल एक व्यक्तिके रहनेके लिये अथवा एक कुटुम्बके रहनेके लिये अथवा बहुतसे व्यक्तियों वा बहुतसे कुटुम्बोंके एक साथ रहनेके लिये, चाहे हद दर्जके सीधे और सरल और चाहे थोड़े-बहुत सजे हुए और पचीदा, तथापि नये विचार और जीवनकी नई आवश्यकताएं अवश्य उनके निर्माणमें खास हिस्सा लेंगी और एक भीतरसे प्रकट होनेवाले कानूनके अनुसार उन्हें रूप आदिक प्रदान करेंगी।

इस प्रकारके नये मनुष्य-जीवनमें—उसके मैदानों, उसके खेतों, उसके कारखानों और उसके नगरोंमें—जिसमें मनुष्यके हाथका किया हुआ काम भूमिको सदा अधिक पूर्ण और अधिक सुन्दर बनावेगा, धूप और मिट्टीकी जबरदस्त कोशिशमें सदा सहायक होगा और बेजबान पृथ्वीकी इच्छाको शब्दोंमें

प्रकट करेगा—इस तरहके नये सम्मिलित सामाजिक जीवनमें, जो कुदरतसे मिलता हुआ होगा, बजाय किसी तरहके वैराग्य वा रूखेपनके, हम समझते हैं कि इतना अधिक परस्पर प्रेम और सामाजिक मेल-मिलाप दिखाई देगा जितना कि पहले कभी भी देखनेमें न आया था। इस तरहके जीवनमें तमाम इन्सानोंके अन्दर एक दूसरेकी सहायता करनेकी वह अमित प्रवृत्ति और परस्पर सहानुभूतिके वे अनन्त भाव पाये जावेंगे जो एक माके बच्चोंमें पाये जाते हैं। एक दूसरेकी मदद करना और मिलजुलकर काम करना उस समय एक खुद ब खुद पैदा होनेवाली और स्वाभाविक बात होजावेगी। प्रत्येक मनुष्य ठीक वैसे ही अनिवार्य और स्वाभाविक ढंगसे और उसी कारणसे अपने पड़ोसीकी सेवा करनेमें भाग लेगा जिस तरह और जिस कारणसे कि मनुष्य-शरीरके अन्दर दाहिना हाथ बायें हाथकी मददके लिए बढ़ता है। सोचो, कि वह सामाजिक अवस्था कितनी अपूर्व होगी जिसमें हर मनुष्य ठीक वही काम करेगा जिसे वह पसन्द करता है. जिसे वह करना चाहता है, जो जाहिरा उसके सामने करनेके लिये पड़ा हुआ है, और जो वह जानता है कि, अवश्य उपयोगी होगा, और उस कामके करनेमें मजदूरीका या इनामका उसे खयालतक न होगा; और इनाम भी उसे उतने ही अनिवार्य और कुदरती तौरपर हासिल होगा जिस तौरपर कि शरीरके अन्दर उस अंगकी ओर खूनका प्रवाह होता है जो अंग कि मेहनत करता है। मेहनतके हिसाबसे मजदूरीको तै करनेके आये दिनके झगड़े, अपनी पदवी अथवा नौकरीका फर्ज मनसबी एक ओर खींचता है और तबियत दूसरी ओर; और दरिद्रता और जिन्दगीसे बेजारी—इन सब मुसीबतोंका अनन्त भार मनुष्यके ऊपरसे हट जावेगा; वे सब व्यर्थके बड़े बड़े काम जो मनुष्यकी भीतरी प्रवृत्तिके खिलाफ उससे कराये जाते हैं और जिनमें इतनी जबरदस्त मेहनत नष्ट

जाती है, बन्द होजावेंगे। जिस तरह कि अगणित मनुष्योंकी अगणित प्रकारकी ही अलग अलग अपनी अपनी प्रकृतियां हैं, उसी तरह उस अगणित प्रकृतियोंद्वारा अगणित प्रकारके ही किन्तु सब बिल्कुल स्वाभाविक पेशे और व्यापार पैदा होजावेंगे और ये सब व्यापार एक दूसरेके लिए सहायक होंगे। आखिरकार उस समय जाकर मनुष्य-समाज आजाद होगा और युगोंके भटकनेके बाद मनुष्यको उस समय निजात हांसिल होगी।

यही वह "सम्मिलित सामाजिक जीवन" है, अर्थात् वह जीवन जिसमें कोई भी चीज किसी व्यक्तिविशेषकी सम्पत्ति न होगी वरन् सब चीजोंपर सबका एक समान अधिकार होगा (Communism), जिस जीवनसे कि हमारी "सभ्यता" सदा उसी तरह घृणा करती रही है जिस तरह उसने ईसामसीहसे घृणा की थी। तथापि यह अवश्यम्भावी है; क्योंकि मनुष्यके अन्दरकी विश्वव्यापी आत्मा; उसका कुदरती और हकीकी आपा एक बार 'कुदरत' को अपनाकर और उसका शिरो-मुकुट बनकर उस कुदरतके विश्वव्यापी नियमको पूरा किये बिना नहीं रह सकता।

"बाहरी गवर्नमेण्ट" और "कानून"—ये दोनों उस समय लोप होजावेंगे; क्योंकि ये केवल मनुष्यके 'भीतरकी गवर्नमेण्ट' और उसके "भीतरी शासन" की भद्दी नकलें और थोड़े दिनोंके लिये उनके कायम मुकाम हैं। "समाज" अपनी अन्तिम अवस्थामें आजकलके अर्थोंमें न "राज-सत्तात्मक" (Monarchy) रहेगा; न "विशिष्टजन-सत्तात्मक" (Aristocracy), न "लोक-सत्तात्मक" (Democracy) और न "अराजक" (Anarchy) ही, और फिर भी एक दूसरे अर्थोंमें वह इनमेंसे सब कुछ होगा। "अराजक अवस्था" उसे इसलिये कहा जासकता है क्योंकि उसमें किसी भी बाहरी शक्तिका राज अथवा शासन नहीं होगा, किन्तु जीवनकी केवल एक अन्तर्मुखी और अदृश्य भावना

बाहरी शासनका काम देगी। "लोक-सत्ता" उसे इसलिये कहा जासकता है क्योंकि उस समय प्रत्येक व्यक्तिके अन्दर उसकी लोकव्यापी आत्मा (Mass-man or Demon) का शासन होगा। "विशिष्ट-जन-सत्ता" उसे इसलिये कहा जासकता है क्योंकि सब मनुष्योंमें इस प्रकारकी आन्तरिक शक्तिके अलग अलग दर्जे और पदवियां होती हैं। और "राज-सत्ता" उसे इसलिये कहा जासकता है क्योंकि अन्तमें ये सब पदवियां और शक्तियां एक दूसरेमें लीन होकर पूरी तरह एकमय होजाती हैं और फिर केवल एक ही मरकजी हुकूमत रह जाती है। इस प्रकार मालूम होता है कि 'गवर्नमेण्ट'की वे अनेक बाहरी शकलें जो "सभ्यता-युग" में देखनेमें आती हैं केवल अलग अलग बाहरी रूपोंमें समाजके सच्चे आन्तरिक जीवनकी घटनाओंके प्रतिरूप मात्र हैं।

और जिस प्रकार "सभ्यता-युग" की गवर्नमेण्टोंकी मुख्तलिफ बाहरी शकलों अर्थात् आजकलकी अनेक शासन-प्रणालियोंका असली उद्देश्य और उनका मतलब आगेके युगमें जाकर मिलेगा वसे ही आजकलकी कलों, मशीनों तथा अन्य ईजादोंके विषयमें भी होगा। उसी समय उनमेंसे भी प्रत्येकको एक एक कर उचित स्थान दिया जावेगा और प्रत्येकका ही उचित उपयोग भी किया जावेगा। इन मशीनों और ईजादोंको फेंक न दिया जावेगा; किन्तु उन्हें मनुष्यके अधीन करना होगा। हमारे आजकलके लोकोमोटिव इंजन, हमारी मशीनें, तार और डाकखाने; हमारे मकान, सामान, कपड़े, किताबें, हमारे भोजनोंके तैयार करनेकी भयंकर और अद्भुत विधियां, शराबें, चाय, तम्बाकू; हमारे डाकृरी और चीर-फाड़के औजार; हमारे बड़े बड़े नामोंवाले अनेक विज्ञान और फलसफे—और वे सब चीजें जिनसे अभीतक मनुष्यका दिमाग चक्कर खाता रहा है—इन सबको केवल जीतकर वास्तविक मनुष्यके सर्वथा अधीन

और वशमें कर देना होगा। ये सब चीजें और हजारों और चीजें, जिनका इस समय हमें स्वप्नतक नहीं है, मनुष्यकी शक्तिको पूरा करने और उसकी आजादीको वसीअ करनेके लिये काममें लाई जावेंगी; किन्तु आजकलकी तरह केवल बुत बनाकर उन्हें पूजा न जावेगा। आजकल ये चीजें मनुष्यका उपयोग करती हैं किन्तु उस समय "मनुष्य" उनका उपयोग करेगा। और "मनुष्य" का अपना असली जीवन इन चीजोंसे कहीं ऊपर एक दूसरे ही क्षेत्रमें होगा। किन्तु इस प्रकार "सभ्यता" की पैदा की हुई इन चीजोंसे कुछ देरके लिये इनकार करके और फिर उन्हें "वशमें करके" ही मनुष्य पहलेपहल उनकी असली उपयोगिताको समझ सकेगा और उनसे वह आनन्द और लाभ उठा सकेगा जिसका उस समयसे पूर्व उसे पतातक न होगा।

यही हालत मनुष्यकी नैतिक शक्तियोंकी होगी। जैसाकि हम ऊपर कह आये हैं, एक खास अवस्थामें पहुंचकर पाप और पुण्यकी तमीज जाती रहती है, अथवा पाप-पुण्यका ज्ञान एक अधिक उच्च ज्ञानमें मिलकर लीन होजाता है। "पाप" का बोध मनुष्यके अन्दरकी एक खास कमजोरीसे पैदा होता है। जबतक कि मनुष्यके अन्दर विरोध और भिन्नता मौजूद है तब-तक ही उसे बाहरकी दुनियामें भी एक दूसरेके विरुद्ध और बाधक असूल दिखाई देते हैं। जबतक कि बाहरी दुनियांके पदार्थ उसके अन्दर इस तरहकी वासनाएं पैदा करते हैं जो वासनाएं उसके काबूसे बाहर हो जाती हैं, तबतक ही वे पदार्थ उसे बुराई, अव्यवस्था और पापके लक्षण प्रतीत होते हैं। इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि वे पदार्थ ही खराब हैं, अथवा वे वासनाएं खराब हैं जो उन पदार्थोंसे उत्तेजित होती हैं; किन्तु असलीयतमें इस समस्त युगके अन्दर ये चीजें मनुष्यको उसकी निर्बलता जता देनेका काम करती हैं। किन्तु जब मनुष्य-के अन्दरकी मरकजी शक्ति फिरसे जाग जावेगी और ये सब

चीजें उस शक्तिके वशमें आजावेंगी तब फिर मनुष्यको किसी चीजमें भी बुराई वा बदी दिखाई नहीं देसकती। शारीरिक प्रेम और रूहानी प्रेममें फिर कोई विरोध नहीं रह जाता, बल्कि शारीरिक प्रेम रूहानी प्रेममें मिलकर एक होजाता है। मनुष्यकी समस्त वासनाएं उस समय बिल्कुल स्वाभाविक ढंगसे अपना अपना उचित स्थान ग्रहण कर लेती हैं और अवसर आनेपर, उसके मनुष्यत्वके व्यक्त होनेके साधन बन जाती हैं। मौजूदह हालतोंमें पाप केवल इसलिये पाप हैं क्योंकि वे मनुष्यको मर्यादासे बाहर कर देते हैं और उसके मनको चलायमान कर देते हैं; किन्तु जिस समय मनुष्य फिरसे अपने ऊपर पूरा काबू हासिल कर लेगा, उस समय फिर पाप न रह जावेंगे। जिस तरह कि यूनानका हकीम सुकरात जिसके शरीरके अंदर एक शुद्ध आत्मा वास करती थी, अपने खुशदिल, साथियोंको शराब पीनेमें हरा सकता था और जबकि वे लोग थोड़ी थोड़ी पीकर ही होश खोबैठते थे, सुकरात उनसे अधिक पीकर भी अपना होश पूरी तरह कायम रखता था और फिर स्वयं सुबहकी हवा खानेके लिये निकल जाता था—जो बात उसके साथियोंमें एक बुराई और एक दोष थी वह उसके लिये केवल उसकी आनन्द अनुभव करनेकी शक्तिको बढ़ा देनेका एक साधनमात्र थी।

समस्त भेद केवल यह है कि जीवन तथा चेतनताके आकर्षण-केन्द्रको इस परिमित तथा एक अंशरूप मनुष्यसे हटाकर विश्वव्यापी मनुष्य यानी आत्मामें कायम कर दिया जाता है, और इस भेदकी बाहरी अलामत यह है कि मनुष्य धीरे धीरे अपने जीवनको अधिक व्यापक यानी दूसरोंके जीवनके साथ अधिकाधिक एकमय करता जाता है। दूसरे शब्दोंमें इसे इस तरह बयान किया जासकता है कि "सभ्यता-युग" में चूंकि शेष शरीर बाजाप्ता कपड़ोंसे ढका रहता है, इसलिये केवल

सिर ही अपने तईं मनुष्य समझ बैठता है—यानी उस विश्व-व्यापी "मनुष्य" से पृथक और उसके बजाय, जिसकाकि शारीरिक प्रतिरूप अनेक अंगोंवाला सम्पूर्ण शरीर है, छोटासा, दिमागी, बालकी खाल निकालनेवाला और अपने तईं कुछ समझनेवाला मनुष्य अपने तईं सामाजिक शरीरके शेष अंगोंसे एक पृथक अस्तित्व समझ बैठता है। समस्त विश्वके साथ अपनी एकताके भावको फिरसे मनुष्यके हृदयमें जाग्रत करनेके लिये पहले उसके शरीरको कपड़ों और बन्धनोंसे आजाद करना होगा। हमें फिरसे, जैसाकि किसी जंगली मनुष्यने एक बार अपने लिये कहा था—"समस्त शरीरको एक बड़ा फैला हुआ चेहरा"*—बना देना होगा।

जहांपर कि मनुष्य विश्वके साथ अपनी एकताको अनुभव कर लेता है वहां फिर अपने इस पृथक आपेका बोधतक नहीं रहता। उस समय वह इस बातको अनुभव करने लगता है कि उसका शरीर और वह चीज जिसे आम तौरपर 'आपा' कहा जाता है, दोनों उसके असली व्यापक 'आपे' के केवल अंग-मात्र हैं, और भीतर और बाहर, स्वार्थ और परमार्थ इत्यादिके सामान्य भेद बहुत दर्जेतक मिट जाते हैं। फिर मनुष्य अपने इस छोटे स्थानिक 'आपे' को ही खास खयाल रखनेकी चीज नहीं समझता और न उसके विचार वार वार इस संकुचित आपेकी ओर लौटते हैं बल्कि उसकी चेतनता लगातार किरणोंके समान भीतरसे निकलती रहती है और उसके समस्त शरीरमें व्याप्त होकर बाहरकी "प्रकृति" के ऊपर फैलती रहती है। इस प्रकार भौतिक दुनियामें "सूर्य" मनुष्यके सच्चे आपे वा आत्माका बाहरी प्रतिरूप समझा जाना चाहिये। उपासकको "सूर्य"

*See alonso di ovalle's "Account of the Kingdom of chile in churchill's "Collection of Voyages and Travels", 1724.

की पूजा करनी चाहिये, उसे अपने तईं सूर्यकी रोशनीसे भर लेना चाहिये, और इस भौतिक "सूर्य" को मानो अपने अन्दर लेलेना चाहिये। "सूर्य" को छोड़कर जो लोग मामूली आग वा मोमबत्तियोंकी रोशनीके सहारे रहते हैं उनके दिमाग हवाई और फर्जी चीजों और झूठे अक्सोंसे भरे रहते हैं; उनके विचार मायाके मृग या छलावे* के समान उन्हींकी भीतरी अशान्त अवस्थाके प्रतिरूप होते हैं, और एक भयंकर अहंभाव सदा उन्हें पीड़ा देता रहता है।

और जब "सभ्यताका युग" बीत चुकेगा, तो पुराना "प्रकृति-पूजा" यानी "कुदरत" की पूजाका मजहब—शायद एक अत्यन्त बढ़ी हुई सूरतमें—फिरसे फैलेगा। सच्चे धार्मिक जीवनका वह जबरदस्त दरिया, जिसका प्राचीनसे प्राचीन इतिहासके दिङ्मण्डलसे कहीं पूर्व आदिकालसे निकास हुआ था और जो इस "सभ्यता युग"के अन्दर यहूदीमत, ईसाई मत, बौद्ध-मत इत्यादिकी अनेक दार्शनिक तथा अन्य छोटी छोटी नहरोंमें अलग अलग फट गया है, फिर एक वार इन सब नहरों आदिको मिलाकर एक जबरदस्त प्रवाह होकर बहने लगेगा और उस प्रवाहकी गोदमें मानव-उन्नतिके इस समयतकके समस्त पवित्र चिन्ह तथा स्मारक जगह जगह तैरते हुए दिखाई देंगे। "मनुष्य" फिर एक बार समस्त मनुष्य-समाजके साथ अपनी एकताको अनुभव करेगा, इतना ही नहीं बल्कि वह पशुओंके साथ, पहाड़ों और नदियोंके साथ, स्वयं पृथ्वीके साथ और तारासमूहोंकी धीर गतिके साथ अपनी एकताको अनुभव करेगा—यह एकताका अनुभव "विज्ञान" अथवा "ब्रह्मविद्या" का एक कोरा वाद वा सिद्धान्त ही न होगा, बल्कि एक जीवित और नित्यस्थाई असलीयत होगा।

*एक प्रकारकी झूठी रोशनी जिससे अकसर दलदलोंमें मुसाफिर धोखा खाजाते हैं।

एक जमाना था जबकि लोग आजकलकी निस्बत इस सचाईको ज्यादह अच्छी तरह समझते थे। हमारे ईसाई मतके कर्म-काण्डमें भी स्त्री-पुरुषके रूप-भेद-सम्बन्धी और ज्योतिष-सम्बन्धी चिन्ह भरे हुए हैं; और ईसाई मतके अस्तित्वसे अत्यन्त पूर्वरूप भेद-सम्बन्धी और :ज्योतिष-सम्बन्धी दो ही मजहबके मूल्य रूप थे। इसका मतलब यह है कि प्राचीन लोग स्वभावसे ही उस महान जीवनको अपने भीतर अनुभव करते थे और उसकी पूजा करते थे जो स्त्री-पुरुषके भेदद्वारा उन्हें प्राप्त होता था, और जो आकाशकी गहराइयोंसे उन्हें प्राप्त होता था। वे दोनोंको पूज्य मानते थे। उन्होंने अपने देवी-देवताओंको—यानी अपने ही मानव रूपोंको—इस रूप-भेदके अन्दर और आकाशके अन्दर स्थापित किया। और केवल इतना ही नहीं, बल्कि जहां कहीं उन्होंने अपने जैसे इस मानव-जीवनको अर्थात् मनुष्यकीसी आत्माके अस्तित्वको अनुभव किया—जानवरोंमें, 'आइबिस (सारसकी किस्मका एक जलपक्षी जिसकी प्राचीन मिश्रमें पूजा कीजाती थी) में, साण्डमें, मेमनेमें, सांपमें, मगरमें; वृक्षों और पुष्पोंमें, शाहबलूतके वृक्षमें, 'ऐश' और 'लारल' के वृक्षोंमें (जिनकी प्राचीन यूरोपमें पूजा कीजाती थी), और संबुलके पौदेमें, चश्मों और पानीके झरनोंमें, पहाड़ोंके दामिनोंपर और समुद्रकी गहराईमें—वहां वहां ही उन्होंने अपने देवी-देवता कायम कर दिये। उनके लिये समस्त ब्रह्माण्ड एक ऐसे जीवनसे परिपूर्ण था जो किसी खास सूरतमें, चाहे उनके लिये हितकर हो वा न हो, तथापि जो सच्चे अर्थोंमें मानव-जीवन था और जो बिलकुल उनके अपने जीवनसे मिलता हुआ और उससे जुड़ा हुआ था, वे इस व्यापक जीवनको प्रत्यक्ष अनुभव करते थे, उसके विषयमें विद्वत्तापूर्ण तर्कवितर्क न करते थे, वरन् केवल उसे साक्षात् अनुभव करते थे।

किसी प्रारम्भिक मनुष्यके दिमागमें यह विचार पैदा ही बड़ी

मुश्किलसे होसकता था कि उसकी अपनी एक भिन्न व्यक्तिता वा शखसीयत है *। इसीलिये वे लोग मनुष्य कहांसे आया और कहां जायगा—इस प्रकारके आत्मघातक प्रश्नोंके फेरमें न पड़ते थे जिस तरह कि आजकलके लोगोंके दिमागोंको चक्कर देते रहते हैं। क्योंकि जब मनुष्य इस महान विश्वमें अपने तईं एक सबसे जुदा परमाणु समझने लगता है, और डरता रहता है कि उसके नीचेका जबरदस्त गार कहीं उसे निगल न जावे, और उस गारसे बचनेका कोई ढङ्ग ढूंढ़ निकालनेकी फिकरमें वह पड़ा रहता है, तभी इस समयके अथवा भावी अकेले-पनका विचार उसके हृदयको कष्ट देता रहता है और केवल इस भावनाके कारण ही उसके दिमागमें 'कहांसे और किधर' के प्रश्न उत्पन्न होते हैं। किन्तु जब मनुष्य फिर एक बार इस बातको अनुभव कर लेता है कि वह, वह स्वयं ही पूरी तरहसे इस महान विश्वका एक ऐसा अङ्ग है जो न उस विश्वसे पृथक किया जासकता है और न जिसका नाश किया जासकता है—तब फिर कोई गार ही नहीं रह जाता कि जिसमें उसके गिर जानेकी सम्भावनातक हो। जब वह इस सचाईको समझ लेता है तो उसके बाद उस सचाईके साक्षात् करनेका प्रश्न—

* एक विद्वान लिखता है—"सम्मिलित जीवन व्यतीत करनेवाली अनेक प्रारम्भिक मनुष्य-जातियोंका जब वह जीवन अङ्गभङ्ग होगया तब उसके बाद मनुष्यके अन्दर अपने अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिके अमर होनेकी पहले प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई और फिर उस इच्छाद्वारा ही इस व्यक्तिगत अमरत्वमें विश्वास पैदा हुआ। जिन लोगोंके अन्दर एक स्वतन्त्र वैयक्तिक जीवनकी जगह एक दूसरेके सहारे चलनेवाले एक सम्मिलित जीवनका गहरा अनुभव मौजूद था, उनमें मौतके बाद वैयक्तिक अस्तित्वके कायम रखनेकी कोई जबरदस्त इच्छा नहीं होसकती, यद्यपि उनके अन्दर थोड़ा-बहुत विश्वास इस तरहके जीवनके जारी रहनेमें होसकता है।" (J. S. Stuart-Glennie's Europe & Asia" P. 161.)

यद्यपि इस प्रश्नकी मनोरञ्जकतामें कोई कमी नहीं आजाती — तथापि यह एक ऐसा प्रश्न रह जाता है जिसके हल करनेके लिए मनुष्य शांति और श्रद्धाके साथ अपना काम करता हुआ इन्तजार कर सकता है। फिर उस समय मनुष्यकी अपनी "आत्मा" (Soul) का बाहरी प्रतिरूप अर्थात् "सूर्य" जो समस्त नाशमान पदार्थोंमें-से मनुष्यके सबसे अधिक निकट और उसके जीवनके लिये सब-से अधिक आवश्यक है, जो अनन्त आकाशमें व्याप्त है, और जो अपने जीवनसे सबका पालन-पोषण करता रहता है; अथवा मनुष्यके अपने अन्तर्मुखी चिन्तनका सूचक और उस चिन्तनका पोषक स्वयं सचेत "मनुष्य" (man) "काल" का मापक, सूर्य-का आईना, अर्थात् "चन्द्रमा" अथवा नक्षत्ररूपी कामनाएं जो दूर दूर घूमती रहती हैं किन्तु फिर भी नियत सीमाओंके अन्दर रहते हैं; अथवा विधिके रूपमें अटल और अचल तारे; अथवा पृथ्वीकी तब्दीलियां और मौसम; अथवा समस्त शरीर-धारी जीवनका; पशुओं और वनस्पतियोंका ऊपरको बढ़ना और धीरे धीरे व्यक्त होते जाना यानी खुलते जाना; और अन्तको उस पूर्ण "मनुष्य" का प्रकट होना जिसको उत्पन्न करनेके लिये ही समस्त सृष्टि सैकड़ों सदियोंसे दुःख और पीड़ा सहन कर रही है—ये सब चीजें उस समय मनुष्यके लिये सच्ची असली-यतें बन जावेंगी और मनुष्य पार-लौकिक यानी सच्चे रूहानी (Supramundane) जीवनके लिए ढांचे अथवा चौकठेका काम देंगी।

उस समय फिरसे मनुष्य प्राचीन मजहबोंके अर्थोंको समझेगा, फिर एक बार* पुराने जमानेकी तरह पहाड़ोंकी ऊंची चोटियोंपर जमा होकर लोग नंगे नाचकर मानव-स्वरूपके गौरवको मनावेंगे और तारोंके बड़े बड़े जुलूस

* इस समस्त पैरेमें लेखकने प्राचीन मनुष्य-जातियोंकी कुछ खास मजहबी रस्मोंको बयान किया है—अ०

निकालेंगे, अथवा नये चांदके उस चमकते हुए प्यालेका स्वागत करेंगे जो अब एक सौ सदियोंके बाद इस तरहके अद्भुत स्मारकोंसे लबालब भरा हुआ मिलेगा जैसे कि—मनुष्योंकी पीढ़ियोंकी आकांक्षाएं, उनके स्वप्न और उनके आश्चर्य—"एस्टार्टे", "दिआना", "आइसिस" (प्राचीन रोम, यूनान और मिश्रके कुछ देवी-देवताओंके नाम) अथवा "कुमारी मेरी" (हजरत ईसाकी मा) की पूजा; फिर एक बार पवित्र वाटिकाओंमें लोग मानव-प्रेमकी वासना और उसके आनन्दको "कुदरत" के सौन्दर्य और पवित्रता-सम्बन्धी अपने गम्भीरसे गम्भीर भावोंके साथ मिलाकर एक कर देंगे; अथवा खुले मैदानमें "सूर्य"के सामने नंगे खड़े होकर वे अपने अन्दर चमकनेवाली नित्य स्थाई ज्योतिके बाहरी प्रतिरूपकी पूजा करेंगे। जीवनकी परिपूर्णता, निर्दोषता और उच्चताका वही भाव जो "सभ्यता"से पूर्वकी प्रारम्भिक मनुष्य-जातियोंमें पाया जाता था—केवल उस समयसे हजार गुणा ज्यादा गहरा, और ज्यादा स्पष्ट रूप धारण किये हुए, तरह तरहकी शकलोंमें और ज्यादा पवित्र बनकर फिर एक बार भविष्यके पापमुक्त और आजाद "मनुष्य" को भीतर और बाहरसे रोपान कर देगा।

मनुष्यके इतिहासमें "सभ्यता" ने जो कुछ भाग लिया है उसे इस प्रकार ऊपर वर्णन करते समय मैं अपने पक्षकी त्रुटियोंसे भी परिचित हूं। एक तो यह कि "सभ्यता" शब्दकी परिभाषा करना ही कठिन है। अधिकसे अधिक यह शब्द भी केवल उन कल्पनाओंमेंसे एक है जो मनुष्यके दिमागको मजबूरन् इस्तेमाल करनी पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त "सभ्यता" का जो वर्णन मैंने ऊपर किया है वह नितान्त अपूर्ण है और शायद मनुष्यके विकासमें दस हजार वर्ष लम्बे पतन-कालके केवल अभावात्मक और नाशात्मक स्वरूपकी तरफ ही अत्यधिक झुकता हुआ है। मैं अपने पाठकोंको यह भी याद दिला

देना चाहता हूं कि यद्यपि यह बिल्कुल सच है कि साम्राज्योंके साम्राज्य एक दूसरेके बाद इस "सभ्यता"के नाशक प्रभावके नीचे आकर लोप होते रहे हैं, और मनुष्यकी उन्नतिके रुके हुए प्रवाहको जारी रखनेके लिये समय समयपर और बार बार असभ्य जंगली जातियोंमेंसे नये और ताजे जीवनके लेनेकी जरूरत पड़ी है [इतिहासमें और विशेषकर यूरोपके इतिहासमें अनेक बार ही सभ्य जातियोंमें रोश ओ अशरत अधिक बढ़ जानेपर असभ्य जातियोंने उनपर हमला किया, उन्हें परास्त किया और उनमें मिलकर उनके जीवनपर एक विशेष और स्वास्थ्यजनक प्रभाव डाला—अ०]। तथापि "सभ्यता" की इस नाशक प्रवृत्तिको कभी भी एक खास सीमासे आगे बढ़नेका मौका नहीं दिया गया, वरन् इसके विपरीत हमें लगातार ऐतिहासिक घटनाओंद्वारा इस बातका सबूत मिलता है कि उस तमाम जमानेमें, जबकि पृथ्वीपर "सभ्यता" का राज्य रहा है, मनुष्यके हृदयमें बराबर एक ऐसी रोगनाशक और पापमोचक शक्ति काम करती रही है जोकि एक प्रकार 'मनुष्य-पुत्र' के दूसरी बार पृथ्वीपर आनेका एक पेश खेमा है [संकेत है इंजील-के इस कथनकी ओर कि हजरत ईसा फिर एक बार प्राणियोंको मुक्ति दिलानेके लिये पृथ्वीपर आवेंगे।—अ०]। कुछ संस्थाएं भी ऐसी हैं जैसे एक ओर"कविता","चित्रकला",इत्यादि कलाएं और दूसरी ओर "कुटुम्ब" की संस्था (यद्यपि बहुत सम्भव है कि जब इनके वर्त्तमान अस्तित्वकी खास परिस्थितियां जाती रहेंगी तो इन दोनोंके रूपमें भी बहुत बड़ी तब्दीली होजावेगी), जिन्होंने कि इन तमाम सदियोंमें मनुष्यके भीतरकी पवित्र ज्वालाको जिन्दा रखनेका काम किया है। कुटुम्बकी संस्थाने, एक ऐसे समयमें जबकि व्यक्तिगत स्वार्थ और लोभके समुद्रोंने चारों ओरसे पृथ्वीको ढक रखा था, एक प्रकारके छोटे छोटे टापुओंकी सूरतमें प्राचीन सम्मिलित मनुष्य-जीवनके नमूने

कायम रखे। और काव्यकला, चित्रकला इत्यादिने एक तरहसे माता "प्रकृति" के साथ पुत्र मनुष्यकी नालको जोड़े रखा और उसे उन गहरी तथा उच्च प्रारम्भिक भावनाओंको प्रकट करनेका एक साधन प्रदान किया, जो किसी भी दूसरे तरीकेसे आस-पासके संसारमें प्रकट न की जा सकती थी।

और यदि यह फर्ज कर लेना, कि मनुष्य-समाज कभी भी कशमकश और परेशानीकी उस अस्तव्यस्त हालतसे बाहर निकल सकेगा, जिस हालतमें कि वह समस्त ऐतिहासिक समयके अन्दर शुरूसे अबतक पड़ा रहा है, बेजा मालूम होता हो अथवा यदि यह आशा करना कि सभ्यताकी वह गति, जिसने प्राचीन समयसे आजतक कौमोंको सदा सर्वनाशतक ही पहुंचाकर छोड़ा है, कभी भी भविष्यमें एक अधिक उच्च और अधिक पूर्ण तन्दुरुस्तीकी सामाजिक हालत कायम होने देगी, अत्यधिक मालूम होता हो—तो हमें अपनी तसल्लीके लिये यह स्मरण रखना चाहिये कि आज दिन इस सम्बन्धमें कई ऐसी बातें नजर आती हैं जो पहले कभी भी मौजूद न थीं। अव्वल तो जिस प्रकार प्राचीन समयकी "सभ्य" जातियां इधर-उधर अकेली पड़ जाती थीं और प्रायः चारों ओर असभ्य जङ्गली जातियोंसे घिरी होती थीं वह अवस्था आजकलकी सभ्यताकी नहीं है। आज दिन "सभ्यता" एक प्रकारसे सारी पृथ्वीपर फैली हुई है और इधर-उधरकी बिखरी हुई असभ्य जातियां इतनी कमजोर हैं कि "सभ्यता" को उनसे हानि पहुंच सकना असम्भव मालूम होता है। पहलेपहल यह घटना उलटी अहित-कर मालूम होगी, क्योंकि यह कहा जासकता है कि यदि बाहरसे "असभ्यता" के समावेशद्वारा "सभ्यता" में नये जीवनका संचार न किया जावे तो "सभ्यता" के भीतरके नियम यानी दोष और भी जल्दी सभ्य-समाजका नाश कर देंगे। और इस कथनमें कुछ सचाई भी होती यदि यह दूसरी बात

ठीक न होती, वह यह कि—जबकि इस समय "इतिहास" में पहली बार "सभ्यता" सारे भूगोलपर एक सिलसिलेसे फैली हुई दिखाई देती है, साथ ही इस समय पहली बार ही हमें इस व्यापक "सभ्यता" के अपने ढांचेके अन्दर एक दूसरेके बाद लगातार ऐसी शक्तियां रूप धारण करती हुई नजर आती हैं जो अवश्य इसका नाश कर एक नई सामाजिक व्यवस्थाको जन्म देंगी। जबकि इससे पूर्व, जैसा ऊपर दर्शाया जाचुका है, केवल कहीं कहीं और कभी कभी अलग अलग ऐसी जातियां हुई हैं, जिन्होंने "सम्मिलित सामाजिक जीवन" (Communisms) व्यतीत किया है, आज दिन "इतिहास" में पहली बार संसारके समस्त उन्नत राष्ट्रोंके विचारवान लोग तथा जनपद दोनों ही समझते-बूझते हुए एक ऐसे भावी सामाजिक जीवनकी ओर बढ़ते जारहे हैं जो वैयक्तिक सम्पत्तिके दोषोंसे रहित होगा, साम्यवादके असूलोंके अनुसार होगा और एक बहुत बड़े पैमानेपर सम्मिलित सामाजिक जीवन होगा। आजकलका परस्पर मुकाबले और स्पर्द्धाका समाज अधिकाधिक शीघ्रताके साथ एक केवल निर्जीव मूरत वा एक ऐसा ऊपरका छिलका बनता जारहा है जिसके भीतर एक नई भावी और (सच्चे अर्थों में) मानव-समाजकी चारों ओरकी रेखाएं अभीसे दिखाई देरही हैं। इसके साथ साथ ही और गोया इस उन्नतिका साथ देनेके लिये ही इतिहासमें पहली बार बजाय बाहरसे किसी जबरदस्तीके होनेके इस समय समाजके भीतरसे ही "प्राकृतिक जीवन" यानी कुदरती जिन्दगी और "असभ्यता" की ओर मनुष्यको लेजानेकी तहरीक जारी है। प्राकृतिक जीवनकी यह तहरीक जो आजसे वर्षों पूर्व साहित्य और कला-कौशलमें शुरू होगई थी अब 'सभ्य' संसारकी अधिक उन्नत श्रेणीके लोगोंमें तेजीके साथ रोजमर्राकी जिन्दगीमें साक्षात् की जारही है। कहीं कहीं तो यह तहरीक इस हदतक पहुंची है कि लोग मशीनोंके और

"सभ्यता" की पैदा की हुई अन्य पेचीदा चीजोंके इस्तेमालसे इनकार कर रहे हैं, और कहीं कहीं लोग चप्पलों और खड़ाउओं और धूप-स्नानद्वारा मनुष्यकी निजातका मार्ग दर्शाने लगे हैं! इन दोनों तहरीकोंमें—एक बढ़े हुए विस्तृत पैमानेपर सम्मिलित सामाजिक जीवनकी ओर जानेवाली तहरीक और दूसरी व्यक्तिगत आजादी और "जंगलीपन" की ओर जानेवाली तहरीक—इन दोनों तहरीकोंमें जो एक प्रकारसे एक दूसरेके तारतम्यको संभाले रखती हैं और एक दूसरेके दोषोंको दूर करती रहती हैं, और जो दोनों यद्यपि हमारी आजकलकी "सभ्यता" के बिल्कुल प्रतिकूल हैं तथापि दोनों उसी सभ्यताके अन्दरसे साफ पैदा होती हुई दिखाई देरही हैं; मैं समझता हूं कि इन्हीं दोनों तहरीकोंमें हमें इस "सभ्यता" के इलाजकी भविष्यमें आशा बाँधनेके लिये काफी वजूहात मिलती हैं।

नोट

नीचे मैं अपने मित्र हैवलौक एलिसके एक पत्रसे कुछ वाक्य उद्धृत करता हूं जिसे प्रकाशित करनेकी उन्होंने कृपापूर्वक मुझे इजाजत देदी है। ये वाक्य इसलिये मनोरंजक हैं क्योंकि इनसे आजकलकी सभ्यताओंकी असफलताके कमसे कम एक कारणका पता चलता है।

"तुम्हारे इस कहनेपर कि तुम अपनी पुस्तक Civilization: Its Cause and Cure (अर्थात् "सभ्यता—उसका निदान और निवारण") को फिरसे प्रकाशित कर रहे हो, मैंने उसे फिर एक बार पढ़ा, और मुझे मालूम होता है कि ठीक इस समय, जबकि चारों ओर लोग 'सभ्यता' से असन्तुष्ट ही असन्तुष्ट दिखाई देते हैं, इस पुस्तकका फिरसे प्रकाशित होना अत्यन्त ही उपयुक्त है। यद्यपि, निस्सन्देह, तुम्हारे इस निबन्धकी कमीको पूरा करनेके लिये उसमें बहुत कुछ और जोड़ा जासकता है, तथापि मुझे उसमें तब्दीली करनेकी कोई वजह नजर नहीं

आती। मगर एक बात जो मुझे खटकती है वह यह है कि जहां कहीं असभ्य जातियोंमें सभ्य लोगोंकी निस्बत अधिक तन्दुरुस्ती, अधिक शक्ति और अधिक ओज होता है वहां तुमने इस भेदका कारण नहीं बताया, और (मेरे विचारसे) वह कारण है उनके अधिक सख्त और अधिक परिश्रमी जीवनके कारण उनमें एक अधिक कड़ी कुदरती छटन्तका होते रहना। निस्सन्देह तुम Wester marck की पुस्तक "Moral Ideas" के अध्याय १७ से परिचित हो जहांपर उसने दिखाया है कि असभ्य जातियोंमें (जो बिल्कुल ही प्रारम्भकी अनगढ़ अवस्थासे बाहर निकल चुकी हैं) और प्राचीन समयकी सभ्य जातियोंमें भी निर्बल बच्चोंको मार डालनेकी प्रथा कितनी बढ़ी हुई थी और साथ ही रोगी मनुष्योंको मर जाने देनेका रिवाज भी कितना बढ़ा हुआ था। जाहिरा तौरपर असभ्य जातियों और प्राचीन सभ्य कौमों, दोनोंकी कुदरती श्रेष्ठताका यही रहस्य था; क्योंकि प्राचीन यूनानी और प्राचीन रोम-निवासी, दोनों इस मामलेमें बड़े सख्त थे। सभ्य लोगोंके शरीरोंका ढीलापन और डाक्टरों तथा स्वास्थ्य-विद्या-विशारदों-की बहुतायत, जिसका तुमने मजाक उड़ाया है, इन दोनोंका कारण यह है कि आजकलके लोगोमें मनुष्य-जीवनकी ओरसे इतना मोह और इतनी दयालुता पैदा होगई है कि वे जो निकम्मेसे निकम्मे मनुष्योंको भी मारकर खतम कर देनेसे डरते हैं; और इस प्रकार वे समस्त 'सभ्य' मनुष्य-समाजके औसत स्वास्थ्यको नीचे गिरा देते हैं। इस मामलेमें एक नई दृढ़ता और कठोरताका लोगोंके जीवनमें समावेश कर दो तो हम भी असभ्य लोगोंकी उच्च स्थिततक पहुंच जावेंगे, जबकि डाक्टर लोग इस प्रकार लोप होजावेंगे गोया किसी जादूसे उड़ गये हों। मैं स्वयं इस बातमें विश्वास नहीं रखता कि हम इस कठोरताका समावेश कर सकते हैं; और यही कारण है कि मैं

अकलके साथ बच्चोंकी पैदायशको नियमबद्ध करके उसके जरिये मनुष्य-जातिकी शारीरिक अवस्थाके उन्नत करनेको इतना अधिक महत्व देता हूं, और यह समझता हूं कि अब इस समय यही एक सम्भव तरीका है जिससे हम उस उच्च कुदरती हालत तक पहुंच सकते हैं जोकि तुम्हारा ध्येय है"—Havelock Ellis (1920)

परिशिष्ट

कुछ लोगोंका यह विचार है कि मैंने पुस्तकके इस भागमें "सभ्यता" प्राप्त जातियोंके ऊपर जो हमले किये हैं उनमें अनौचित्य और अत्युक्तिकी मात्रा भी है इसलिए मैंने यह उचित समझा कि इस परिशिष्टमें इस सभ्यताके समयसे पूर्वके मनुष्योंकी खासीयतों और उनके रीति-रिवाजपर कुछ प्रामाण्य लेखकोंके मत संग्रह कर दूं। निस्सन्देह मेरा उद्देश्य इतना अधिक यह साबित करना नहीं है कि सभ्यताके समयसे पूर्वके मनुष्य सदा सभ्यताप्राप्त मनुष्योंसे श्रेष्ठतर ही होते थे, जितना कि उन पहले जमानेके मनुष्योंके अनेक ऐसे प्रशंसनीय गुणोंपर रोशनी डालना है जिन गुणोंकी ओर एक सस्ती अर्वाचीन सभ्यताने या तो उदासीनता दिखलाई है और या न्यूनाधिक घृणाके साथ उनकी अवहेलना की है।

कोई इस बातसे इनकार न करेगा कि इस 'सभ्यता' के फैलनेसे पूर्वकी मनुष्य-जातियोंमें अनेक ऐसी भी हैं जिनकी अशुद्धता, जिनकी अज्ञानता और जिनके बेहूदा अन्धविश्वासोंके कारण हम किसी तरह उन्हें अपनी प्रशंसाके पात्र नहीं कह सकते। दूसरी ओर इसके खिलाफ हमें अनेकानेक ही जातियां ऐसी भी मिलती हैं जिनमें कोई न कोई ऐसा अद्भुत मानवगुण वा ऐसी सामाजिक क्षमता पाई जाती है जो हमारे लिए अच्छी

तरह विचार करनेयोग्य बल्कि अनुकरण करनेके योग्य है। इन जातियोंके हालात न केवल हमारा ध्यान इस बातकी ओर ही आकर्षित करते हैं कि मनुष्य क्या कुछ कर सकता है किन्तु यह दिखलाकर कि पिछले समयमें क्या कुछ प्रत्यक्ष अनुभव किया जाचुका है, ये हालात हमें इस बातका विश्वास दिलाते हैं कि इस समय भी उन आदर्शोंतक पहुंचना किसी तरह असम्भव नहीं है।

इसी उद्देश्यको सामने रखकर नीचे लिखे उद्धरणोंका संग्रह इस परिशिष्टमें किया गया है। ए० का०

सभ्यतामें सारे ही सद्गुण नहीं आजाते

हरमैन मैलविल्लीकी पुस्तक "Typee" पृष्ठ २२५ इत्यादि (जान मरे, १८६१) उद्धृत।

"मनुष्य-समाजके सारे ही सद्गुण 'सभ्यता'में नहीं आजाते, बल्कि इन सद्गुणोंमेंसे अपना पूरा हिस्सा भी सभ्यताको प्राप्त नहीं होता। अनेक असभ्य-जातियोंके अन्दर ये सद्गुण अधिक बहुतायतके साथ पैदा होते हैं, फूलते-फलते हैं और अधिक पुष्ट होते हैं। अरबके जंगली वाशिन्दोंकी मेहमान नवाजी, उत्तरीय अमरीकाके आदिम निवासियोंका साहस, और पौलिनीशिया* में रहनेवाली कुछ जातियोंकी वफादार दोस्तियां—ये तीनों सद्गुण यूरोपकी सुसभ्य जातियोंके इससे मिलते-जुलते सद्गुणोंसे कहीं बढ़-चढ़कर हैं। यदि सचाई और इन्साफ और मनुष्यस्वभावके श्रेष्ठतर उसूल बिना कानूनके दबावके कायम नहीं रह सकते तो हम टाइपी‡ जातिकी सामाजिक अवस्थाका

---

* पैसिफिक महासागरमें एक टापू-समूहका नाम।

‡ दक्षिण अमरीकासे पश्चिमकी ओर माराक्विसास नामक टापुओंमें रहनेवाली एक प्राचीन और 'असभ्य' जाति जो इस समय फ्रांसवालोंके शासनमें है।

क्या कारण बता सकते हैं ? जब मैंने उनकी घाटीमें प्रवेश किया तो मेरे चित्तमें उनके चरित्रसम्बन्धी बहुत ही गलत विचार जमे हुए थे किन्तु मैंने उन्हें जीवनके समस्त व्यवहारोंमें इतना अधिक पवित्र और इतना सच्चा पाया कि थोड़े ही दिनोंमें चकित होकर मुझे यह कहना पड़ा कि 'क्या ये ही वे खूंखार जङ्गली लोग, वे मनुष्यको खाजानेवाली खूनकी प्यासी जातियां हैं जिनके विषयमें मैंने इतनी भयंकर कहानियां सुन रखी हैं। ये टाइपी लोग अनेक ऐसे लोगोंकी अपेक्षा जो नेकी और दयाधर्म-पर निबन्ध पढ़ते हैं और जो प्रतिदिन रातको वह प्रार्थना दोह-राते हैं, जो सबसे पहले दिव्य और विनीत ईसाके मुखसे निकली थी—एक दूसरेके साथ अधिक प्रेमका व्यवहार करते हैं और अधिक दयावान हैं।' मैं स्पष्ट कहता हूं कि मनुष्यस्वभावके विषयमें इतना उच्च विचार मेरा कभी भी न हुआ था जितना कि मारक्किसास टापुओंकी इस घाटीमें चन्द हफ्ते रहनेके बाद होगया। किन्तु शोक ! उसके बादसे मैं अबतक एक लड़ाईके जहाजके मुसाफिरोंमेंसे एक मुसाफिर रहा हूं और पांच सौ (सभ्य) मनुष्योंकी रुकी हुई धूर्तताने मेरे सब पिछले मन्तव्योंको करीब करीब उलट डाला।"

* * * *

"इन बेचारे टापू-निवासियोंमेंसे अनेक जब अपने चारों ओर नजर डालते हैं तो उन्हें यह क्या मालूम कि उनकी मुसीबतोंके एक बड़े हिस्सेकी बुनियाद सभ्य यूरोप-निवासियोंकी कुछ ऐसी चायकी दावतोंमें मिलती है जिन दावतोंमें जोशमें आकर सफेद वस्त्र पहरे हुए दयावान दिखाई देनेवाले सभ्य लोग चन्दे मांगते हैं और ऐनकें लगाये हुए बूढ़ी स्त्रियां तथा गम्भीर भूरे नीचे गौन पहरे हुए युवा स्त्रियां एक ऐसे फण्डमें छे छे आने चन्दा देती हैं जिसका उद्देश्य कहनेके लिये ईसाई-मतके प्रचार-द्वारा पौलिनीशियाके बाशिन्दोंका आध्यात्मिक उद्धार करना

है किन्तु जिसका वास्तवमें परिणाम लगभग उनके सांसारिक जीवनको नष्ट कर डालना हुआ है।

इन जंगली जातियोंको खुशीसे सभ्य बनाओ, किन्तु उन्हें सभ्य बनाओ उपकारोंद्वारा, आपत्तियोंद्वारा नहीं। विधर्म*का नाश करो किन्तु विधर्मी मनुष्योंका नाश करके नहीं। ऐङ्गलो-सैक्सन यानी अङ्गरेजी जातिके छत्तेने उत्तरीय अमरीकाके महाद्वीपके अधिकांश भागसे पुराने मजहबोंको मिटा दिया है किन्तु उसके साथ ही साथ उसी तरह उन्होंने पुरानी लाल‡ जातियोंके अधिकांश भागके अस्तित्व को भी मिटा डाला। "सभ्यता" धीरे धीरे पृथ्वीपरसे प्राचीन मजहबोंके रहे-सहे अवशेषोंको साफ करती जारही है और साथ ही साथ उन मजहबोंके अभागे माननेवालोंके सुकड़ते हुए शरीरोंको भी साफ कर डाल रही है।

पौलिनीशियाके टापुओंमें ज्यों ही कि पुरानी मूर्त्तियोंको तोड़कर मन्दिरोंको गिराकर उन प्राचीन मूर्त्ति-पूजकोंको नाम-मात्रके लिए ईसाई बना लिया जाता है त्यों ही रोग, बुरे व्यसन और अकाल मृत्युएं अपना स्वरूप दिखलाती हैं। उसके बाद उजड़े हुए देशको फिरसे आबाद करनेके लिए गोरे रङ्गके 'सभ्य' लुटेरोंमेंसे रङ्गरूट भर्त्ती किये जाते हैं जो वहां जाकर बसते हैं और वहांसे चिल्ला चिल्लाकर 'सत्यधर्म' यानी ईसाई-मतकी उन्नतिका ऐलान करते हैं। चारों ओर साफ-सुथरे बङ्गले, कटे-छटे बागीचे, हमवार हरी घासके मैदान, नोकदार मीनारें; और गोल गुम्बदें दिखाई देने लगते हैं; जबकि बेचारा उस देशका 'असभ्य' बाशिन्दा अपने पूर्वजोंके देशमें बल्कि जिस झोंपड़ेमें वह स्वयं पैदा हुआ था ठीक उसी झोंपड़ेके स्थान-

---

* अभिप्राय है ईसाई अतिरिक्त धर्मोंसे—अनुवादक।

‡ उत्तरीय अमरीकाके अधिकांश आदिम निवासी कुछ लालसे रंगके होते हैं।

पर शीघ्र ही अपने तईं एक अधिकारहीन अजनबी महसूस करने लगता है।”

* * * *

“मैं जितने दिन उस टापूमें रहा मैंने उन लोगोंमें आपसमें कभी एक भी लड़ाई होते नहीं देखी और न कोई ऐसी घटना देखी जो किसी दर्जेतक झगड़े वा वाद-विवादसे भी मिलती-जुलती हो। मालूम होता था गोया कि टापूके सारे बाशिन्दे एक बड़ा कुटुम्ब हैं जिसके सब स्त्री-पुरुष और बच्चे प्रबल स्नेहके पाशोंसे एक दूसरेके साथ बन्धे हुए हैं। सगे रिश्तेदारोंका प्रेम मैंने इतना अधिक नहीं देखा, क्योंकि यह छोटा प्रेम उस बड़े प्रेममें मिलकर एकरङ्ग होगया था जो हर किसीको एक दूसरेके साथ दिखाई देता था। जहांपर कि सारी कौममें सब ही एक दूसरेके साथ भाई-बहन कासा व्यवहार करते थे ; वहां यह बता सकना कठिन था कि वास्तवमें सगे भाई-बहन कौन हैं।

कोई यह न समझे कि इस चित्रके खींचनेमें मैंने अत्युक्ति की है। मैंने ऐसा नहीं किया। कोई यह भी न समझे कि इस जातिके लोगोंका विदेशियोंके साथ जो द्वेष है और उसी टापूमें पहाड़के दूसरी ओर रहनेवाले लोगोंसे जो उनके पुश्तैनी झगड़े चले आते हैं यह सब ऐसी घटनाएं हैं जो मेरे कथनके विरुद्ध जाती हैं। ऐसा नहीं है। यह जाहिरा विरोध आसानीसे समझमें आजाता है। बात यह है कि अत्याचार और अन्यायकी अनेक परम्परा-प्राप्त कहानियोंने और साथ ही अनेक ऐसी घटनाओंने, जो उनकी आंखोंके सामने घटी हैं, इन लोगोंको गोरे मनुष्योंको नफरतकी नजरसे देखना सिखला दिया है। पोर्टरने जिस जुल्मके साथ उनके देशपर हमला किया वह अकेली घटना ही उन्हें भड़का देनेके लिए काफी कारण थी

और मैं उस भावके साथ हमदर्दी महसूस कर सकता हूं जिस भावसे प्रेरित होकर टाइपी योद्धा अपने तैयार भालेकी नोकसे अपनी घाटीके तमाम दर्रोंकी रक्षा करता है और अपनी पीठ अपने हरे झोपड़ेकी ओर करके तत्पर खड़े होकर आक्रमक यूरोपियनको बाहर रोके रखता है।"

सभ्यताके प्रभाव

आर० एल० स्टिवेन्सनकी पुस्तक "In the South Seas" पृष्ठ ४३ (चैटो एण्ड विण्डुस १६०८) से।

"पूछा जाता है कि क्या पौलिनीशियाके पुराने बाशिन्दे सदासे व्यभिचारी न थे ? निस्सन्देह थे। किन्तु निस्सन्देह जबसे उनके आश्चर्यजनक सदाचारवाले मेहमान यूरोपसे पहुंचे तबसे वे कहीं अधिक व्यभिचारी होगये हैं। कुकका लिखा हुआ हवाई टापुओंका वृत्तान्त पढ़िये। मुझे कोई सन्देह नहीं कि वह वृत्तान्त बिल्कुल सच्चा है। क्रूसेन्सटर्नने मारकिसास टापुओंमें एक रूसी लड़ाईके जहाजका जो सच्चा सच्चा और लगभग निष्कपट हाल लिखा है उसे पढ़िये। स्वयं हवाईके अन्दर ईसाई मिशनरियोंके लज्जास्पद इतिहासपर विचार करिये।......इसके साथ ही स्मरण रखिये कि ह्वेल मछलीके शिकारके लिये जानेवाले युरोपियनोंकी यह एक आदत थी कि वे मारकिसासपर अपनी नौकाएं खड़ी करके वहांके टापूसे बहुतसी स्त्रियां जबरदस्ती शिकारमें अपने साथ रखनेके लिए भगा लाते थे।...... और याद रखिये कि हमलाआवरोंकी यह एक आदत थी, बल्कि हम कह सकते हैं कि मिशनरियोंने तो अपना यह व्यापार ही बना रखा था कि पौलिनीशियामें रहकर उस देशवालोंके अच्छेसे अच्छे और स्वास्थ्यजनक ताबुओं (धार्मिक नियमों) का भी मजाक उड़ावें और उनका जान-बूझकर उल्लंघन करें।"

सन् १७६६ में ओवाइही टापूमें कप्तान कुक

कुककी पुस्तक 'Life and Voyages' पृष्ठ ३७६ (ज्योर्ज न्यूनेस १६०४) से।

"टापूके असली बाशिन्दों और हमारे साथके लोगोंमें ज्यों ज्यों मेल-जोल बढ़ता गया त्यों त्यों ही उनके शान्त और मीठे व्यवहारके कारण हमारा सारा भय मिटता गया यहांतक कि अङ्गरेज लोग हर समय और हर परिस्थितिमें विश्वासके साथ अपने तईं उनके सपुर्द कर देते थे। हमारे साथके लोगोंके साथ उन्होंने इतनी अधिक मेहरबानियां कीं और इतनी अधिक सुजनता दिखलाई कि उनकी उन सब बातोंको गिना सकना आसान काम नहीं है। विशेषकर उनमें उनके कुछ पुरोहित लोग थे; उन्होंने तो हमारे साथ इतनी अधिक उदारता और दरियादिली दिखलाई कि जिसकी तुलना हमने पहले कहीं न देखी थी। वे हमारे मल्लाहोंको बराबर सुअरका मांस और सब्जी पहुंचाते रहे और बदलेमें कुछ मांगना तो दूर रहा उन्होंने कभी इस बातकी ओर हलकेसे हलका इशारातक नहीं किया।"

पृष्ठ ३०६ पर वातीऊ टापूके लोगोंकी बाबत लिखा है—"यहां आबादी बहुत अधिक है और बहुतसे नौजवान शारीरिक सुन्दरता और सुडौलताके निर्दोष नमूने थे।"

ताहितीके बाशिन्दे

हैवलौक एलिसकी पुस्तक—'Sex in relation to Society' पृष्ठ १४८ (१६१०) से।

"जिन कौमोंको हम आम तौरपर सभ्यताकी नीची श्रेणियों में गिनते हैं उनके सदाचारके विषयमें ताहितीकी मिसाल शिक्षाप्रद है। जे० आर० फौर्सटर नामक एक आरम्भके दिनोंका खोजिया अपनी पुस्तक (Observations Made on a

Voyage Round the World 1778) में लिखता है कि वहांकी आबहवा इतनी बढ़िया थी और स्त्रियां इतनी सुन्दर थीं कि उन्हें देखकर प्रेमका आनन्द भोग करनेकी इच्छा बड़े वेगके साथ पैदा होती थी। किन्तु इसपर भी इस लेखकको मजबूर होकर बार बार इस तरहकी अनेक घटनाएं लिखनी पड़ी हैं जो इन लोगोंके उच्च सदाचारकी गवाही देती हैं। वह लिखता है कि यद्यपि इनके शरीरोंकी बनावट कुछ स्त्रैणी है तथापि उनके बदन कसरती हैं। अलावा इसके अपने युद्धोंमें वे बड़ी बहादुरी और साहसके साथ लड़ते हैं। शेष वे मेहमानोंकी बड़ी खातिर-तवाजो करते हैं। लिखा है कि अपनी विवाहिता स्त्रियोंके साथ वे बड़े आदरका व्यवहार करते हैं, और आम तौरपर जहन और सामाजिक पद दोनोंमें स्त्रियां पुरुषोंके लगभग बराबर हैं। लेखकने वहांकी स्त्रियोंके जो हालात लिखे हैं वे चित्ताकर्षक हैं। अन्तमें वह लिखता है—'सारांश यह कि उनका चरित्र इतना प्यारा और हरदिल अजीज है जितना कि किसी भी ऐसी जातिका होसकता है जो सीधी कुदरतके हाथोंसे विना कृत्रिम मानवी सुधारोंका असर पड़े प्रकट हुई हो' [!]"…

एलिस आगे चलकर लिखता है—"कुक कई बार ताहिती गया और जब वह इन 'उपकारशील और दयावान' लोगोंमें रहता था तो उसने देखा कि वे सदाचार (सतीत्व) का कितना अधिक खयाल रखते थे। उसने देखा कि न केवल जिन लड़कियोंकी सगाई होजाती थी उनकी इन लोगोंमें विवाहसे पहले बड़ी पक्की सावधानीके साथ रक्षा कीजाती थी, किन्तु उनमें यह भी समझा जाता था कि पुरुष भी जो विवाहसे कुछ समय पहले अपने ब्रह्मचर्यका अखण्ड पालन करते थे वे मृत्युके पश्चात सीधे शुभलोकको प्राप्त होते थे।"

कैरो लाइन टापुओंमेंसे* राडाक नामक टापूका हाल

चैमिस्सोकी पुस्तक—'Reise um die Welt' पृष्ठ १८३ (लीपजिग)।

"इस प्रकार हमारा इन लोगोंसे परिचय हुआ और परिचयसे अबतक जितना अधिक प्रेम मुझे इन लोगोंसे है उतना पृथ्वीकी किसी भी दूसरी जातिसे नहीं है। राडाकके बाशिन्दोंकी कमजोरियोंतकने हमारी ओरसे अविश्वास उठा देनेका काम किया; उनकी नम्रता और सज्जनताके ही कारण हम सर्वशक्ति-सम्पन्न विदेशी लोग उनपर विश्वास करने लगे। हम खुले एक दूसरेके मित्र होगये। मैंने देखा कि उनका चलन सीधा-सादा था जिसमें किसी तरहकी बनावट न थी; उनके रहन-सहनमें एक स्वाभाविक लावण्य (grace) और मोह लेनेकी ताकत थी और उनके चेहरोंपर लज्जा (modesty) की सुहावनी लालिमा दिखाई देती थी। निस्सन्देह शारीरिक बल और मर्दाना आजादखीमें 'ओ वाइ ही' जातिवाले इनसे बहुत बढ़-कर हैं। मेरा मित्र कादू इस टापूका बाशिन्दा न था। फिर भी वह हमारे साथ शामिल होगया और मैं संसारभरमें जितने भी मनुष्योंसे मिला हूं उनमें कादूसे बढ़कर चरित्रका मुझे आजतक कोई नहीं मिला और न किसीके लिए मेरे हृदयमें उससे अधिक प्रेम है। बादमें वह राडाक और कैरोलाइन टापुओंके लिए मेरा उस्ताद बन गया।"

शुरूकी मनुष्य-जातियोंका आसपासकी प्राकृतिक स्थितिके अनुसार अपने जीवनको ढालना

मध्य अफरीकाकी 'दिनका' जाति ग्रोगनकी पुस्तक "Cape to Cairo" पृष्ठ २७८ (Hurst and Blackett 1900) से।

* जापानसे दक्षिण,आस्ट्रेलियासे उत्तर और फिलियाइन टापुओंसे पूर्वमें।

"दिनका-देशमें हरएक आदमी एक लम्बा नोकदार भाला और एक भारी लाल लकड़ीका बना हुआ गदा अपने साथ रखता है। इनमें अधिक महत्वके लोग अपने ऊपरके बाजूपर बेहद हाथी-दांतकी चूडियां पहने रहते हैं। इनका फैशन मादर-जाद नंगे रहना है और बालोंमें सारसके परका लगा होना शौकीनीकी खास अलामत है। इन सबकी शरीरकी बनावट बड़ी सुन्दर होती है। इनके कन्धे चौड़े होते हैं, कमर छोटी होती है, चूतड़ भारी होते हैं और टांगोंकी बनावट अच्छी होती है। किसी किसीका कद देवकासा होता है। यह एक अत्यन्त विचित्र बात दिखाई दी कि दलदलोंमें रहनेवाले इन दिनका लोगोंका ढंग पानीके पक्षियोंसे मिलता-जुलता है। इनकी चाल बिल्कुल बगुलेकीसी है। ये अपने पैरोंको बहुत ऊंचा उठाते हैं और फिर खूब आगे बढ़ाकर रखते हैं। इनके पैर भी बहुत ही भारी होते हैं। निस्सन्देह नरकलोंसे भरे हुए जिस देशमें वे रहते हैं उसमें बड़े कदकी वजहसे उन्हें बहुत फायदा रहता है। दिनका लोगोंका सबसे प्रिय आसन है एक पांव घुटनेपर रखकर केवल एक पांवपर खड़े रहना, वास्तवमें यह जलपक्षीका प्रियतम आसन है।···जिस देशमें वे रहते हैं वह उन घने जंगलोंका ठीक उलटा है जिनमें 'बौनी' जाति रहती है और इनका रहन-सहन आदिक भी हर बातमें बौनोंके रहन-सहन आदिका ठीक उलटा है।···हमारा डेरा इन लोगोंके एक बड़े गांवके पास था जिसमें भेड़ और बकरियोंके अलावा कमसे कम १५०० मवेशी यानी गाय-बैल थे। गांवके मुखियाने मुझे एक सुन्दर मोटा बछड़ा लाकर दिया जिससे दो दिनके भोजनका कठिन प्रश्न हल होगया।···सूर्यास्तके समय जब मैं नजदीक आता था तो वह जीवित गांव जिसमें सैकड़ों घरोंके धुएंमेंसे मनुष्योंके समूहके समूह इधर-उधर डोलते हुए और मवेशियोंकी लम्बी कतारें अपने घरोंकी तरफ लौटती हुई दिखाई

देती थीं। धुंधला धुंधला बड़ा ही सुहावना दृश्य मालूम होता था।"

बौनी जातिः "Cape to Cairo" पृष्ठ १४४ और १६१ से।

"पिगमी अर्थात् बौनी जातिके लोग गांव बसाकर नहीं रहते और न खेती करते हैं। वे जंगलोंमें पशुओंके समान रहते हैं और सदा शहद्की तलाशमें वा शिकारके लिए हाथीकी खोजमें फिरते रहते हैं। जब वे किसी पशुको मार पाते हैं तो जबतक उसके सारे मांसको खा न डालें या सुखा न लें तब-तक वहीं दो-चार घासके छप्पर डालकर उनमें पड़े रहते हैं। उन्हें नाजकी भी जरूरत होती है किन्तु नाज उन्हें आसपासकी दूसरी जातियोंसे लेना पड़ता है। वे इन लोगोंसे नाज या तो चुरा लेते हैं या शहद वा हाथीके मांसके बदलेमें खरीद लेते हैं। इसी तरह छुरियां भालों और तीरोंके लिए फलके वे दूसरे लोगोंसे खरीदते हैं। किन्तु तीर और कमान वे अपने लिए खुद बनाते हैं। तीर और कमान यह लोग इतनी अच्छी बनाते हैं कि आस-पासकी दूसरी जातियां इनके तीरों और कमानोंकी बड़ी कदर करती हैं।"...."एक घण्टे बाद मुझे जंगलमें बौना जातिका एक बूढ़ा आदमी मिला और मैंने किसी तरह उसे अपने साथ बातचीत करनेपर राजी कर लिया। वह एक छोटे कदका अच्छा आदमी था; वह आत्मविश्वाससे भरा हुआ था, उसने थोड़े से शब्दोंमें मुझे बहुत ठीक सूचना दी; उसने मुझे बताया कि दो दिन हुए एक गोरे रंगका मनुष्य जिसके साथ बहुतसा सामान था यहीं पाससे गुजरा था फिर वह झीलके किनारेपर चला गया और इस समय वहीं डेरा लगाये हुए है। निस्सन्देह इन लोगोंके पास इशारों और सिग-नलोंसे दूर दूरतक खबर पहुंचानेका कोई बड़ा ही अद्भुत इल्म रहा होगा, क्योंकि बावजूद इस बातके कि वे दूर दूर और नित्य नई नई जगह जाकर बसते हैं उन्हें सदा इस बातका बिल्कुल

ठीक ठीक पता रहता है कि कहां क्या होरहा है। जिस तरहके बौने ज्वालामुखियोंपर मिलते हैं उनका यह बूढ़ा मनुष्य ठीक एक नमूना था—छोटा, मोटा, गठा हुआ, टैंबाज और मस्तानी चाल। उसकी डाढ़ी छातीपर लटकती थी और तमाम छाती और जांघोंपर तारकेसे बाल थे। उसके पास एक कमान थी जैसी आम तौरपर पिगमी लोगोंके पास रहती है— अर्थात् दो बेतके टुकड़ोंकी बनी हुई जो बीचमें घाससे बंधी होती है और जिसमें तांतकी जगह वहांके जंगलोंमें पैदा होनेवाली एक किस्मकी घासके एक तारकी डोरी होती है। ये पिगमी लोग इस बातकी बड़ी सुन्दर मिसाल हैं कि 'प्रकृति' स्वयं किस तरह आस-पासकी परिस्थितिके अनुसार अपनेको ढाल लेती है। वहांके अभेद्य जंगलोंमें एकमात्र रास्ता सुअरके जानेकी लीक होती है और ये लोग मजबूत और छोटे शरीरके होनेके कारण उन रास्तोंपरसे आश्चर्यजनक तेजीके साथ चले जाते हैं और हाथीके शिकारके तकानको सहन कर लेते हैं।"

कीवु झीलके निकट रुआण्डा प्रदेशके बाशिन्दे: "Cape to Cairo" पृष्ठ ११८।

रुआण्डा प्रदेश*के बाशिन्दे दो जातियोंमें बँटे हुए हैं, एक वातुसी जाति और दूसरी वाहुतु जाति।···वातुसी लोगोंको अपने पशुओंके साथ इतना अधिक प्रेम होता है कि यदि कोई उनपर हमला करके उनके पशु छीन लेता है तो उन पशुओंसे अलहदा होनेके बजाय वे गुलाम बन जाना और अपने विजेताओंके लाभके लिए अपने प्यारे पशुओंके साथ रहकर उनकी सेवा करते रहना ज्यादह पसन्द करते हैं। यह बात और भी अधिक विचित्र उस समय मालूम होती है जब हम उसके साथ इस बातको याद करते हैं कि इन लोगोंमें स्वभावसे ही अपनी

* मध्य-अफरीकामें।

जातिके लिए अभिमान होता है और दूसरी जातियोंको तथा गोरे लोगोंको भी वे अपनेसे नीच और हेय समझते हैं।...

पहाड़ियोंपर ये लोग सीढ़ियोंकी तरह एक दूसरेके नीचे हमवार खेत बना लेते हैं जिससे खेतीके लिये जमीन बढ़ जाती है और जोरकी बारिशके कारण ढालोंपरकी जरखेज मिट्टी बह नहीं जाती। बहुत जगहपर ये लोग बहुत बहुत दूरतक आबपाशी करते हैं और नालियोंके जरियेसे नीची पनीली जमीनोंको सुखाते हैं। पानी जमा रखनेके लिए बड़े बड़े तालाब बनाते हैं जिनके इधर-उधर मवेशियोंके पीने आदिके लिए अलहदा हौज होते हैं। बहुधा खेतोंके चारों तरफ कांटेदार झाड़ोंकी बाड़ बोदेते हैं; और इसी तरहकी बाड़ें मवेशियोंके आने-जानेके खास रास्तोंपर तंग स्थानोंके बराबर बराबर लगा दीजाती हैं ताकि मवेशी इधर-उधर न चले जावें वा खेतोको खराब न करें।

ये लोग मामूलसे ज्यादह भिन्न भिन्न प्रकारकी चीजोंकी काश्त भी करते हैं; जैसे एक किस्मका चावल (hungry rice) मक्का, ज्वार, बाजरा, और कई किस्मकी फलियां (सेम आदिक) मटर, केले, और तरह तरहकी जड़ें जिनसे अरारूट जैसे खाद्य पदार्थ निकले हैं। ज्यादह ऊंची जानेवाली फलियोंकी बेलें लकड़ियां गाड़कर उनपर चढ़ा दीजाती हैं। कद्दू और शकरकन्द भी आम तौरपर बोये जाते हैं। और वातुसी लोग बहुत बड़ी संख्यामें मवेशी, भेड़ और बकरियां रखते हैं और उन्हें चराते हैं। इनके चरागाह बड़े ही उत्तम हैं जिसके कारण दूध बड़ी ही बढ़िया किस्मका होता है और ये लोग बहुत बहुत मक्खन तैयार करते हैं। ये लोग मवेशियोंके रखनेमें बड़े ही चतुर हैं, इन्होंने अनेक आवाजें मुकर्रिर कर रखी हैं जिन्हें इनके जानवर समझते हैं। दूध दूहनेके समय आग जलाकर धुआं कर देते हैं ताकि मक्खियां जानवरोंको दिक न करें।......ये लोग लम्बे होते हैं, शरीरकी बनावट मामूली यानी हलकी होती है, चाल

सुन्दर और मस्त होती है और उनके चेहरोंकी काट लावण्यमय और सुथरी होती है। मैंने इनमें कई ऐसी सूरतें देखीं कि अगर उनका रंग कालेसे गोरा करके और सफेद कालर पहराकर उन्हें लन्दनके किसी ड्राइंगरूम (बैठकखाना) में बैठा दिया जावे तो वे अपने रूपकी सुन्दरताके कारण वहां सबकी नजरोंमें चमक उठें।............"

"वाहुतु लोग इसके बिलकुल बरअक्स हैं। वे उस देशके अधिक प्राचीन बाशिन्दे हैं और उनके चरित्रमें जो कुछ प्रारम्भिक विशेषता रही होगी वह अब उनमेंसे बिलकुल निकालकर बाहर कर दीगई है। वे लकड़ियां चीरते हैं और पानी खींचते हैं और तमाम मेहनत-मजदूरी करते हैं और दासताकी नीच वृत्ति उनमें इतनी बढ़ गई है कि मांगनेपर चुपचाप अपनी मेहनतका फल दूसरोंको देदेते हैं। संख्याके लिहाजसे यदि देशमें एक वातुसी है तो कमसे कम सौ वाहुतु हैं, फिर भी अपने देशके विजेता वातुसी लोगोंके सामने वे बिना ऐतराज किये दब जाते हैं; और यद्यपि अपने इन मालिकोंको वे स्पष्ट घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं तथापि उन दोनोंमें कभी कोई झगड़ा देखनेमें नहीं आता।"

अन्दमन टापुओं (यानी कालेपानी) के बाशिन्दे

खलीज बङ्गालमें अन्दमन टापुओंके बाशिन्दों, दक्षिण-अफरीकाकी बुशमैन जाति और पृथ्वीके उत्तरीय भागोंकी ऐस्किमो जाति, इन तीनोंके विषयमें नीचेके उदाहरण विशेषकर मनोरञ्जक हैं; क्योंकि इन सब जातियोंकी इस समयकी सामाजिक अवस्था निस्सन्देह उसी दर्जेकी है जैसी बाकी सभ्य कौमोंकी उस अत्यन्त प्राचीन समयमें थी जबकि वे लोहेके

स्थानपर पत्थर*के औजारों और हथियारोंसे काम लिया करते थे और जहांतक मालूम होता है इनकी यह अवस्था उसी युगकी मनुष्य-जातियोंसे सीधी पीढ़ी-दर पीढ़ी वैसीकी वैसी चली आरही है। इस प्रकार हमें इन जातियोंके द्वारा इस बातकी एक झलक मिल जाती है कि उन पत्थरके औजारोंके युगोंमें भौतिक सामानके लिहाजसे और साथ ही सामाजिक तथा मानसिक उन्नति (यानी विकास) के लिहाजसे मनुष्य-जातियोंकी क्या हालत थी और उनकी सभ्यता किस दर्जेकी थी।

सी० बौडेन क्लौसकी पुस्तक "In the Andamans and Nicobars" पृष्ठ १८४ (मरे १९०३) से।

'अन्दमन टापुओंके बाशिन्दे शुद्ध हब्शी खूनके हैं। शायद ये लोग संसारमें सबसे पुरानी मनुष्य-जातिकी बकाया हैं। बिलकुल आदि समयके मनुष्योंसे इनका ढांचा सबसे अधिक मिलता हुआ है।...पृथ्वीपर कहीं भी अन्दमन-निवासियोंसे बढ़कर पवित्र नसलकी जातिका मिलना असम्भव है, क्योंकि जबसे ये लोग पत्थरके औजारोंके युगमें इन टापुओंमें आकर बसे हैं तबसे आजतक बाहरी दुनियासे वे बिलकुल अलग रहे हैं। उनका कद मनुष्यके औसत कदसे बहुत कम होता है। किन्तु यद्यपि उन्हें बौने और पिगमी कहकर पुकारा गया है तथापि इन शब्दोंसे यह न समझना चाहिये कि उनकी शकलोंमें कोई बात भयंकर वा खिलाफ कुदरत है। इन लोगोंकी बाबत कई तरहकी बातें खूब फैली हुई हैं; मिसालके तौरपर यह कि वे बड़े बदशकल हैं, उनके तीर जहरमें बुझे होते हैं, वे

* आजकलके विद्वानोंका मत है कि अत्यन्त प्राचीन समयमें प्रायः समस्त मनुष्य-जातियां पत्थरके औजारों और हथियारोंसे काम लिया करती थीं, धीरे धीरे सभ्यता बढ़नेपर उन्होंने इस कामके लिये लोहे तथा धातुओंका इस्तेमाल करना सीखा—अ०।

आदमीका मांस खाजाते हैं, इत्यादि। यद्यपि ये बातें बहुत समयसे फैली हुई हैं फिर भी अब समझ लेना चाहिये कि ये सब बिलकुल झूठ हैं। इनमें औसत उंचाई पुरुषकी चार फुट पौने ग्यारह इंच और स्त्रीकी चार फुट सवा सात इंच मिलती है। इनके शरीर, जो उसी औसतसे बने होते हैं, अत्यन्त सुडौल और सुन्दर होते हैं। इनके जिस्मोंको कसरती तो नहीं कहा जासकता तथापि उनकी बनावट अच्छी होती है और पुरुष फुर्तीले और मजबूत होते हैं। उनकी छातियां चौड़ी होती हैं और कन्धे चौकोर।"

ई० एच० मैनकी पुस्तक "The Aborigines of the Andaman Islands" पृष्ठ ६८ (ट्रूबनर १८८३)

"आजतक कभी भी इन लोगोंमें (यानी अन्दमन टापुओंके बाशिन्दोंमें) कोई खब्ती या सौदाई या पागल नहीं देखा गया। इसका कारण यह नहीं है कि जिन्हें इस तरहके रोग होजाते हैं उन्हें उनके साथी मार डालते हों या बन्द कर रखते हों; क्योंकि ये लोग सदा बीमारों, बूढ़ों और अपाहजोंपर अधिकसे अधिक ध्यान देते हैं और उनकी खूब सेवा करते हैं।"

मैन साहब (Fourn Anthrop Dust XII, 92.) यह भी लिखते हैं—"जिन लोगोंको इस जातिके साथ हमदर्दी है उन सबको यह देखकर दुःख हुआ है कि विदेशियोंके साथ मिलने-जुलनेका असर आम तौरपर इस प्राचीन जातिके लोगोंके सदाचारपर खराब पड़ा है; और वह निष्कपटता, वह सचाई और वह आत्मनिर्भरता, जो इन लोगोंमें असभ्य या अशिक्षित हालतमें पाई जाती हैं, इनके विदेशियोंसे सम्पर्कमें आते ही बहुत दर्जेतक लोप होजाती हैं और उनकी जगह झूठ, दूसरोंपर निर्भरता और काहिलीकी आदतें पैदा होजाती हैं।"

दक्षिण अफरीकाकी बुशमैन जाति

एफ० सी० सेलूसकी पुस्तक—"African Nature-Notes" पृष्ठ ३८८ और ३८७ (१६०८) से।

"सन् १८७२ में औरेञ्ज नदीके तटपर जब मैंने सबसे पहली बार बुशमैन जातिके कुछ लोगोंको देखा तो मेरी उमर उस समय बहुत थोड़ी थी और चूंकि मैं उन्हें कुछ घृणाकी दृष्टिसे देखता था, मैंने अपनी डायरीमें लिख लिया कि इन लोगोंमें और पशुओंमें बहुत ही थोड़ा अन्तर मालूम होता है। अब मैं कहता हूं कि मेरा वह लिखना अत्यन्त मूर्खतापूर्ण और अज्ञानसूचक था। उस समयसे अबतक मैंने इस बातको मालूम कर लिया है कि यद्यपि सम्भव है बुशमैन लोग भौतिक उन्नति और साइन्सकी दृष्टिसे आजदिन उसी पिछड़ी हुई अवस्थामें हों, जिसमें एक बार ऐतिहासिक समयसे पूर्व उच्चसे उच्च सभ्यता-वाली युरोपियन जातियोंके (पत्थर-युगके समयके) आदि पूर्वज रह चुके हैं तथापि असलियतमें शुरू जमानेके मनुष्यों और आजकलके 'सभ्य' मनुष्योंकी प्रकृतिमें बहुत कम अन्तर है। इसीलिए यह बिल्कुल सम्भव है कि अधिक सभ्य जातियोंमेंसे जातिका भी कोई एक व्यक्ति एक अर्सेतक उन लोगोंके बीचमें पूरे आनन्द और सन्तोषके साथ रह सके जिन्हें अक्सर पतित और 'असभ्य' कहा जाता है और जिनमें और उसमें सभ्यता शब्दके अन्तर्गत अर्थोंकी दृष्टिसे हजारों वर्षका अन्तर है। मैंने अनेक बार बुशमैन लोगोंके साथ रहकर शिकार खेला है। सन् १८८४ में लगातार कई महीनेतक मैं इन लोगोंके बीचमें रहता रहा। अनेक ही बार रातोंको मैं उनके डेरोंमें सोया हूं जबकि मेरे साथ कोई काफिर खिदमतगार भी न होता था। और यद्यपि मैं पूरी तरहसे उनके काबूमें होता था तथापि मैं सदा उनके बीचमें अपने तईं पूरी तरह सुरक्षित

समझता था। उनमेंसे अधिकांश शेचवाना भाषा बोलते थे इसलिए मैं उनसे बातचीत भी कर सकता था। मैंने उन्हें बहुत जहीन और बतौर साथियोंके बहुत सुशील पाया। मैंने यह भी देखा कि जिस देशमें वे रहते हैं उस देशके तमाम जंगली जानवरोंकी आदतोंसे उन्हें पूरी पूरी वाकफीयत है।...मैंने कभी उन्हें अपनी स्त्रियों वा बच्चोंके साथ बेजा सलूक करते हुए नहीं देखा। और पुरुषों तथा स्त्रियों, दोनोंको मैंने बच्चोंके साथ प्रेम दर्शाते हुए देखा है।"

बुशमैन जातिसे निकट सम्बन्ध रखनेवाली कोराना कौमका एक 'जौन' नामक आदमी सेलूसके पास नौकर था। उसके विषयमें सेलूस एक दूसरे स्थानपर लिखता है—"उसका रंग हलका पीला-भूरा था। उसका शरीर सुन्दर, सुडौल था और उसके हाथ-पैर छोटे और कोमल थे।"

हेलेन ढंगकी पुस्तक "Bushmen Paintings Copied" की हेनरी बैल्फोर लिखित प्रस्तावनासे।

"इसमें सन्देह नहीं कि इन लोगों यानी बुशमैन जातिके लोगोंकी गुफाओं और पहाड़ी मकानोंकी दीवारोंपर पशुओं आदिके जो चित्र बने हुए हैं वे ज्यादहतर कुदरती चीजोंकी बिल्कुल ठीक ठीक नकल हैं और उस स्वतंत्रताके साथ खींचे हुए मालूम होते हैं जो इतनी प्रारम्भिक मनुष्य-जातिकी कारीगरीमें सर्वथा आश्चर्यजनक है। जिस होशियारीके साथ दक्षिण अफरीकाके कुछ खास खास पशुओंके चित्र खींचे गये हैं उससे न केवल उन लोगोंकी चित्रकारी-सम्बन्धी असाधारण योग्यता ही साबित होती है बल्कि यह भी साबित होता है कि उन पशुओंकी आदतों और खासियतोंको भी इन लोगोंने खूब ध्यानके साथ देखा था और उनकी इन आदतों और खासियतोंसे ये लोग पूरी पूरी वाकफीयत रखते थे।... इन चित्रोंमें दोनों बातें अद्भुत हैं। एक यह कि इनमेंसे बहुतसे

कुदरती चीजोंकी बिल्कुल ठीक ठीक नकल मालूम होते हैं और दूसरे यह कि चित्रोंका खाका खींचनेमें बड़ी स्वतन्त्रतासे काम लिया गया है। यह दूसरा गुण प्रारम्भिक मनुष्य-जातियोंके चित्रोंमें—विशेषकर उनके बनाये हुए जानवरोंके चित्रोंमें—अधिकतर पाया जाता है। जानवरोंकी इस तरहकी बैठकों और हालतोंको, जिनका चित्रित करना कठिन है, बिना किसी झिझक-के चित्रित करनेका प्रयत्न किया गया है और कहीं कहीं यह भी मालूम होता है कि चित्रोंके पीछेकी जमीन-सम्बन्धी प्रारम्भिक मोटे मोटे असूलोंको भी वे लोग समझते थे।"

उसी पुस्तकमें केपटाउनकी ग्रे लाइब्रेरीके सुप्रसिद्ध डाक्टर ब्लीककी कन्या ऐस ब्लीकके लिखे हुए नोट (१८७०) से।

"समस्त उपनिवेशमें यूरोपियन नई आबादीके लोग बुशमैन लोगोंको झूठे और चोर बताते हैं, किन्तु जितने बुशमैन हमारे साथ आकर ठहरे वे सबके सब सच्चे और बड़े ईमानदार थे। उन्होंने कभी किसी मौकेपर बागमें जेबसे गिरा हुआ चाकू या वृक्षोंपरसे फलतक नहीं चुराया। उनसे शत्रुता करनेवाले खेतिहरोंकी भेड़ें भले ही उन्होंने छीन ली हों किन्तु किसी मित्र वा पड़ौसीकी वे कभी कोई चीज नहीं उठाते। वे साफ-सुथरे थे और दूसरोंके साथ अपने व्यवहारका बहुत ही खास खयाल रखते थे। यदि उनके साथ कोई उपकार किया जाता तो उसके लिए वे सबके सब बड़े अहसानमन्द होते थे और जिससे बदला लेना चाहते थे उससे बदला लेकर छोड़ते थे। वे आजाद तबियतके और बड़े अच्छे योद्धा थे और पकड़े जानेकी निस्बत मर जाना ज्यादह पसन्द करते थे।......उनमेंसे जो लोग पकड़ लिए जाते थे वे अक्सर नौकर रख लिए जाते थे, किन्तु उनके साथ बहुत कम अच्छा बर्त्ताव किया जाता था और न वे आसानीसे शान्त होकर एक जगह ठहरते थे। जो मालिक उनके साथ मेहरबानीका बर्त्ताव करते

थे उन्होंने भी अनुभव किया कि मेहरबानियोंके द्वारा इन लोगोंकी आजादीकी ख्वाहिशको दबा सकना कठिन था।"

नेशिल्लीकी एस्किमो जाति*

ऐमण्डसेनकी पुस्तक –"North West Passage" जिल्द १, पृष्ठ २६४, (कौन्सटेबल १६०८) से

"यहांपर यकायक हमारा एक ऐसी जातिसे सामना हुआ जो पत्थरके युग‡ से सम्बन्ध रखती थी। मनुष्यकी उन्नतिमें हमें यकायक कई हजार वर्ष पीछे पहुंचा दिया गया और एक ऐसे लोगोंसे जाकर मिला दिया गया जो अभीतक दो लकड़ीके टुकड़ोंको रगड़नेके अतिरिक्त कोई दूसरा तरीका आग बनानेका न जानते थे, और जो सील मछलीके तेलकी आगपर पत्थरकी सिलके ऊपर बड़ी मुशकिलसे अपने भोजनको थोड़ासा नीम गरम कर पाते थे, जबकि हम अपने अर्वाचीन चूल्होंपर एक लमहेके अन्दर अपना खाना पका लेते थे। हम वहांपर अपनी अत्यन्त बढ़िया और नईसे नई ईजादकी बन्दूकें आदि लेकर गये और जिन लोगोंसे हम मिले वे अभीतक भाले, कमान और रेनडीयरके सींगके बने हुए तीर इस्तेमाल करते थे।......तथापि यदि हम इन लोगोंके हथियारों, औजारों और घरेलू व्यवहारकी चीजोंसे यह नतीजा निकालें कि वे बुद्धिमें कम हैं वा जहनके कम हैं तो हमारी गलती होगी। उनके औजार, जो जाहिरा इतने अधिक प्रारम्भिक समयके हैं, उनकी आजकलकी परिस्थिति और आजकलकी जरूरतोंके लिए इतनी अच्छी तरह उपयुक्त साबित हुए जितने कि कई सदियोंके तजरबों और चतुर आजमायशोंके बाद होसकते थे।"

* अत्यन्त उत्तरीय अमरीका, अत्यन्त उत्तरीय एशिया और उत्तरीय ध्रुवके आसपासके बरफानी टापुओंमें रहनेवाली एक प्राचीन मनुष्य-जाति।

‡ इससे पूर्वका एक नोट देखो।

'उगपी' नामका एक एस्किमो

वही पुस्तक जिल्द १, पृष्ठ १६० ।

"उगपीने, जिसे हमलोग सदा उगलेन ('आउल' वा उल्लू) कहा करते थे, तुरन्त अपने स्वरूपके कारण सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया । यदि युरोपियन आदर्शकी दृष्टिसे उसका चौड़ा चेहरा और बड़ा मुंह उसके सौन्दर्यको खराब न कर देते तो कन्धोंतक लटकते हुए लम्बे काले बालों, काली आंखों और चेहरेके निष्कपट सीधे सच्चे भावके कारण वह खूबसूरत समझा जाता । उसके तर्जमें एक प्रकारकी गम्भीरता थी, बल्कि लगभग ऐसा मालूम होता था कि वह कोई स्वप्न देखता रहता है । इसमें किसी प्रकारका धोखा नहीं होसकता कि ईमानदारी और सचाई उसके चेहरेपर अंकित थीं । और मैं किसी भी चीजको उसके सपुर्द कर देनेमें कभी हरगिज एक लमहेके लिए भी न झिझकता था । हमारे साथ रहकर वह पक्षियों और रेनडीयर नामक हिरन, दोनोंका शिकार असाधारण योग्यताके साथ करने लगा । उसकी उमर लगभग ३० के थी और काबलोका नामकी एक छोटीसी १७ वर्षकी लड़कीके साथ उसकी शादी हुई ।"

एस्किमो जाति और "सभ्यता"

वही पुस्तक जिल्द २, पृष्ठ ४८ ।

"जोआ नामक जहाजकी यात्रामें हम कुल दस भिन्न भिन्न एस्किमो जातियोंसे सम्पर्कमें आये ।......और मैं अपना यह दृढ़ विश्वास प्रकट किये बिना नहीं रह सकता कि इन सबमें निस्सन्देह सबसे अधिक सुखी, सबसे अधिक तन्दुरुस्त, सबसे अधिक सम्मानीय और सबसे अधिक सन्तुष्ट वे एस्किमो हैं जो हर प्रकारकी 'सभ्यता' से सर्वथा पृथक रहते हैं । इसलिए

जो 'सभ्य' कौमें एस्किमो जातियोंके साथ सम्पर्कमें आवें उनका यह परम कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे अपने बुरे प्रभावोंसे उन्हें वैसे ही सुरक्षित रखें जैसे किसी लगनी बीमारीसे दूसरोंको बचाया जाता है; और कानूनों तथा कड़े नियमोंद्वारा इस नामधारी 'सभ्यता' के अनेक खतरों और उसकी अनेक बुराइयोंसे उन्हें बचावें। जबतक ऐसा न किया जावेगा तबतक इन पुरानी जातियोंकी बरबादी नहीं रुक सकती।......मेरी सबसे अधिक हार्दिक शुभकामना अपने मित्रों नेशिल्ली एस्किमोके लिए यह है कि यह 'सभ्यता' कभी उनतक न पहुंचे।"

आलिउते जातिमें जातीय सदाचारका उच्च आदर्श

रूसी मिशनरी वेनियामिनौफका आंख देखा वृत्तान्त पुस्तक "Mutual Aid" पृष्ठ १९९ और २०० लेखक—प्रिन्स कुरोपोटकिन।

आम पुस्तकोंमें एस्किमो लोगोंके जातीय सदाचार-सम्बन्धी ऊंचे आदर्शका अक्सर जिकर आता है। ताहम नमूनेके तौरपर एस्किमोसे अत्यन्त मिलती-जुलती आलिउते जातिके सदाचारके निम्नलिखित वृत्तान्तसे कुल 'असभ्य' जातियोंके सदाचारका खासा अच्छा पता चल जावेगा। यह वृत्तान्त दस वर्षतक आलिउते जातिके बीचमें रहनेके बाद एक असाधारण योग्यतावाले मनुष्य, रूसी मिशनरी वेनियामिनौफने लिखा है। मैं अधिकतर उसीके शब्दोंमें उसका सारांश नीचे देता हूं।

वह लिखता है—"उनका एक विशेष गुण जिस्मानी बरदाश्तकी ताकत है। यह ताकत उनमें बिल्कुल अलौकिक है। न केवल इतना ही कि वे प्रति दिन प्रातःकाल बरफसे जमे हुए समुद्रमें स्नान करते हैं और फिर नंगे किनारेके ऊपर खड़े होकर

बरफकी ठण्डी हवासे अपने फेफड़े भरते रहते हैं, बल्कि जब कभी कि नाकाफी भोजनपर उन्हें सख्त मेहनत करनी पड़ जाती है तो उस समयकी उनकी सहन-शक्ति भी किसी तरह अनुमानमें नहीं आसकती। यदि लगातार बहुत अर्सेतक भोजन कम मिलता रहे तो आलिउते पहले अपने बच्चोंकी परवाह करता है; वह सारा भोजन उन्हें ही देदेता है और स्वयं उपवास करता है। सबसे शुरूके रूसी यात्रियोंने भी इस बातको बयान किया है कि आलिउते लोगोंकी रुचि चोरीकी तरफ नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि वे कभी कुछ चुराते ही नहीं। यदि आप किसी भी आलिउतेसे पूछें तो उनमेंसे हरएक स्वीकार करेगा कि उसने कभी न कभी कुछ चुराया है, किन्तु वह चोरीकी चीज सदा बड़ी-छोटी अथवा तुच्छ चीज होती है; सारी घटना बिल्कुल बच्चोंकीसी। माता-पिता यद्यपि बच्चोंके साथ अपने स्नेहको शब्दों अथवा लाड़द्वारा कभी भी प्रकट नहीं करते तथापि बच्चोंके साथ उनका स्नेह मर्मस्पर्शी होता है। किसी भी आलिउतेसे किसी बातका वादा करा लेना एक अत्यन्त कठिन कार्य है किन्तु यदि एक बार वह वादा कर ले तो चाहे कुछ भी क्यों न हो वह अपने वादेको पूरा करेगा।"

एक आलिउतेने वेनियामिनौफको सूखी मछली भेंट की किन्तु चलते समय जल्दीमें वेनियामिनौफ उसे समुद्र-तटपर ही भूल गया। आलिउते उसे अपने घर ले गया। अगला अवसर उस मछलीको रूसी मिशनरीके पास भेजनेका जनवरीमें आता था। नवम्बर और दिसम्बरके महीनोंमें आलिउते-आबादीमें भोजनकी बहुत बड़ी कमी पड़ी। किन्तु उन भूखे लोगोंने उस मछलीको कभी भी हाथ न लगाया और जनवरी आनेपर उसे वेनियामिनौफके पास भेज दिया।

एस्किमो लोगोंका घरेलू जीवन

लेखक—विलियम स्टिफेन्सन, Harper's Monthly Oetober, 1908.

स्टिफेन्सन १३ महीनेतक मैकेञ्जी नदीके ऊपर ओवायनाक नामक एक एस्किमो सरदारके घरमें रह चुका था और अपने विषयका पूरा ज्ञान रखता था। वह लिखता है:—

"स्त्रियों और पुरुषोंमें उनके यहां सर्वथा बराबरीका व्यवहार होता है और एक दूसरेसे अलहदा होजाने (तलाक देने) की दोनोंको पूरी आजादी है, इसलिये उनमें किसी ऐसे दो व्यक्तियोंका स्थायी तौरपर साथ रहना जिनके स्वभाव एक दूसरेसे न पटते हों लगभग अचिन्त्य है। किन्तु यदि एक स्त्री और एक पुरुषको एक दूसरेका स्वभाव इतना काफी पसन्द आजावे कि वे साल-दो सालतक विवाहित जीवन व्यतीत कर सकें तो फिर इनमें तलाककी अत्यन्त ही कम सम्भावना रह जाती है। और दर्मियानी उमरके लोगोंमें जितने अधिक तलाक यूरोपमे होते हैं उससे इन लोगोंके यहां बहुत ही कम होते हैं। आम तौरपर २५ वर्ष और २५ से ऊपर आयुके पुरुष-स्त्रियोंमें एक दूसरेसे बहुत ही गहरा प्रेम होता है। और जब एक बार पुरुष-स्त्री कौटुम्बिक जीवनमें प्रवेश कर लेते हैं तो मालूम होता है कि जितना प्रेम और एक दूसरेके लिए जितना आदर आम तौरपर यूरोपियन कुटुम्बोंमें पाया जाता है उससे इन लोगोंमें ये दोनों बातें कहीं बढ़ी हुई मात्रामें मिलती हैं। किसी एस्किमों-घरानेमें पति और पत्नीके बीच मैंने कभी किसी कटु शब्दका उपयोग होते हुए नहीं सुना, मैंने कभी किसी बच्चेको दण्ड मिलते हुए नहीं देखा और न कभी मैंने किसी बूढ़े पुरुष वा स्त्रीके साथ अनादरका बर्त्ताव होते हुए देखा। इसपर भी उनके घरके सब काम-काज बड़ी तरकीबके साथ होते रहते हैं और लगभग प्रत्येक यात्री उनके यहांके बच्चोंके सुन्दर व्यवहार और उनकी सुशीलताकी प्रशंसा करता है।

"सम्भव है कि एस्किमो-घरानोंके इन मनोहर गुणोंका कारण बहुत दर्जेतक उनका शान्त स्वभाव और उनके चरित्रका वह सर्वव्यापी गुण हो जो उन्हें बड़े बड़े कुटुम्बों वा कबीलों-में मिल-जुलकर प्रेमसे रहनेके योग्य बनाता है, किन्तु यह बात भी युक्ति-संगत प्रतीत होती है कि एक दर्जेतक उनका अपूर्व सामाजिक संघटन भी इन गुणोंका उत्पादक है। जिस तरहके सामाजिक संघटनमें ये लोग रहते हैं उसके लिये हमारे 'सभ्य' संसारके कुछ अच्छेसे अच्छे पुरुष अभीतक प्रयत्नमात्र ही कर रहे हैं। हमारे आदर्श-उपासकोंके लिए अभीतक उस तरहका सामाजिक संघटन (यानी जातिभरका सम्मिलित सामाजिक जीवन) केवल स्वप्नमात्र ही है।"

एस्किमो जातिके धार्मिक विश्वास

रासमस्सेनकी पुस्तक–"People of the Polar North." पृष्ठ १२५ और १२७ (१९०८)।

"इन लोगोंके धार्मिक विचार इस तरहके नहीं हैं कि वे किसी अलौकिक देवी-देवताकी किसी तरहकी पूजा आदि करते हों। किन्तु यदि उन विचारोंको संग्रह कर उन्हें एक धर्मशास्त्रका रूप दिया भी जावे तो उनमें अनेक आज्ञाएं यानी दैनिक व्यवहारके अनेक ऐसे नियम मिलेंगे जिनमें मनुष्यको हानि पहुंचानेवाली अदृष्ट ताकतोंके साथ केवल इन लोगोंके सम्बन्धको नियमित किया गया है।

जादूगर ओटाग नामक एक बुद्धिमान और स्वतन्त्र विचारवाले एस्किमोने मौतके विषयमें मुझसे कहा :—'आप पूछते हैं, किन्तु मुझे मौतका कुछ नहीं पता। मुझे केवल जिन्दगीसे वाकफीयत है। मैं केवल वही कह सकता हूं, जो मैं मानता हूं—मौत या तो जिन्दगीका अन्त है और या किसी दूसरी तरहकी जिन्दगीमें जानेका रास्ता है। दोनोंमेंसे

किसी सूरतमें भी डरनेकी कोई बात नहीं। फिर भी मैं मरना नहीं चाहता, क्योंकि मैं जिन्दा रहनेको अच्छा समझता हूं।' मौतके सामना करनेका यह शान्त तरीका इन लोगोंमें गैर-मामूली नहीं है। मैंने कई गैर-ईसाई एस्किमोंको देखा है जो असंदिग्ध मृत्युका सामना करनेके लिये आगे बढ़े और जिनके चेहरोंपर उस समय भयका किसी तरहका हेशतक न था।

धनका समय समयपर बटवारा, जिससे धन किसी एकके पास एकत्रित होने न पावे

क्रोपौटकिनकी पुस्तक—"Mutual Aid" पृष्ठ ६७ (हैनेमैन १६०८)।

"किसी खास शख्स वा शख्सोंके पास अधिक धन जमा होजानेसे जो मुसीबतें समाजके लिये खड़ी होजाती हैं वे कौमोंकी इस तरहकी जातीय एकताको शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट कर डालती हैं। इसलिये उन मुसीबतोंसे बचनेका एस्किमो जातिने एक अनोखा तरीका निकाल रखा है। इनमें जब कोई शख्स धनाढ्य होजाता है तो वह अपनी जाति या बिरादरीके सब लोगोंकी एक बड़ी दावत करता है और खूब खाना-पीना होनेके बाद अपनी तमाम धन-सम्पत्ति उनमें तकसीम कर देता है। यूकौन नदीके ऊपर डाल नामके यात्रीने स्वयं एक आलिउते कुटुम्बको इस प्रकार अपनी दस बन्दूकें, दस समूरकी पूरी पूरी पोशाकें, दो सौ मालाएं, (दानोंकी) अनेक कम्बल, दस भेड़ियोंकी पोस्तीन, दो सौ ऊदबिलाओंकी पोस्तीन और पांच सौ ऽबल जानवरकी पोस्तीन तकसीम करते हुए देखा। इसके बाद उस घरके लोगोंने अपनी दावतकी पोशाकें उतारकर और उनकी जगह पुरानी फटी हुई समूरकी पोशाकें पहनकर अपने

जाति-भाइयोंसे कुछ शब्द कहे। उन्होंने कहा —'यद्यपि इस समय हम आपमें सबसे ज्यादह गरीब हैं, हमने (धनके बदलेमें) आपकी मित्रता हासिल कर ली है*। इस तरहके बटवारोंका एस्किमो जातिमें एक बाजाप्ता रिवाज मालूम होता है। एक खास मौसममें पहले सालभरकी सारी कमाई सबके सामने लाकर रखी जाती है और फिर इस प्रकार उसका बटवारा किया जाता है। मेरी (यानी क्रोपौटकिनकी) रायमें ये बटवारे एक ऐसी अत्यन्त पुरानी संस्थाको प्रकट करते हैं जो उस कालसे चली आती है जबकि पहले पहल व्यक्तिगत सम्पत्तिका जन्म हुआ। निस्सन्देह जब जब किसी जाति (वा कबीले) के लोगोंमें थोड़ेसे व्यक्तियोंके धनाढ्य हो-जानेके कारण बराबरीके मिट जानेका डर होता था तो उस बराबरीको जातिमें फिरसे कायम करनेका यही एक तरीका था। ऐतिहासिक समयके अन्दर सेमाइट, आर्य इत्यादि अनेक भिन्न भिन्न जातियोंमें समय समयपर जमीनके नये सिरेसे बटवारे हुआ करते थे—और समय समयपर तमाम पिछले करजोंको रद्द कर दिया जाता था। ये सब रिवाज अवश्य उसी पुराने रिवाजके अवशेष थे।"

सामौयेद जाति

ए. ट्रेवोर बैट्टीकी पुस्तक-"Icebound on the Koiguev" पृष्ठ ३८४ (Constable, १८९५)

"सामौयेद जातिके लोगोंमें कुटुम्बियोंकी मोहब्बत बहुत ज्यादह बढ़ी हुई होती है। किसी भी दूसरी जातिमें इससे अधिक कौटुम्बिक प्रेम पाया जाना असम्भव है। दूसरा अत्यन्त चमकता हुआ गुण उनमें घरकी तरतीब है। सारे रोजमर्रहके

---

* डाल—"Alaska and its Resources." Cambridge. U. S. 1870.

काम-काज एक ठीक ठीक नियमित तरीकेसे किये जाते हैं और सबका अलग अलग काम बंटा रहता है। मैंने घरके अन्दर झगड़ेकी वा झगड़ेसे मिलती-जुलती किसी बातकी कभी कोई एक मिसाल भी नहीं देखी।...ये लोग बड़े होशियार मल्लाह हैं, शिकार खेलने और मछली पकड़नेमें बड़े धैर्यवान और सिद्धहस्त और जिन औजारोंका उपयोग वे जानते हैं उनसे काम करनेमें बड़े प्रशंसनीय है। कोई मनुष्य एक टूटी हुई किश्तीकी इतनी जल्दी मरम्मत नहीं कर सकता जितनी जल्दी एक सामोयेद कर लेता है। और इस तरहकी रद्दीसे रद्दी बहकर आई हुई लकड़ीसे, जिसे एक अंगरेज बढ़ई आगमें फेंक देवे, ये लोग तीर-कमान, बरफपर चलनेवाली बिना पहियेकी गाड़ियां, चमचे, पीनेके प्याले, बन्दूककी गोलीके सांचे, और रोजमर्रहके इस्तेमालकी अनेकानेक ही और चीजें बना लेते हैं।"

कौलगुएवकी एक सुन्दरी

ऊपरकी पुस्तक, पृष्ठ १३० से।

"यदि उन लोगोंकी कुदरती शकलपर ऐतराज न किया जावे तो उसकी ननद (वा भौजाई ?) 'उस्तीनिया' निस्सन्देह एक सुन्दर लड़की थी।...उस्तीनियाकी आंखें खूब रोशन थीं और उसके होंठोंपर एक खुशीकी मुस्कुराहट बनी रहती थी। जब वह हँसती थी—और ये लोग सदा हँसते ही रहते हैं—तो जितने सर्वांग सुन्दर दांत उसके मुंहमें दिखाई देते थे उससे अधिक सुन्दर दांतोंका अनुमानतक नहीं किया जासकता। निस्सन्देह इन सब लोगोंके,यहांतक कि बूढ़े उआनोके भी,अत्यन्त अद्‌भुत दांत थे,यानी सफेद वा तरतीब और सर्वांग सुन्दर। उंगलियोंपर उस्तीनिया सफेद और पीली धातुकी भारी अंगूठियां (वा छल्ले) पहरे हुए थी और अन्य समस्त सामोयेद लोगोंके समान उसके हाथोंकी बनावट निर्दोष और उसकी फुर्ती असाधारण थी। रेनडीयर हिरनके बच्चेकी खालकी बनी हुई

पोशाक, जिसमें सफेद और भूरे रंगकी अनेक धारियां पड़ी हुई थीं, उसके घुटनोंतक पहुंचती थी, जिसके पल्लोंपर लाल कपड़े और कुत्तेकी खालके समूरकी पट्टियां लगी हुई थीं। उसके पैर (मोजेके समान) एक मुलायम कमाई हुई खालसे ढके हुए थे जो पैरोंसे लेकर घुटनोंके ऊपरतक पहुंचती थी। कौलगुएव-की सुन्दरी उस्तीनियाका यह चित्र है।"

टोडा जाति

डब्ल्यु०एच० रिवर्सकी पुस्तक "The Todas" (१६०६) से।

यह जाति दक्षिण हिन्दोस्तानमें नीलगिरि पहाड़के ऊपर एक अत्यन्त ऊंचे और अलग मैदानमें रहती है। ये लोग हमारे लिये खास तौरपर मनोरञ्जक हैं क्योंकि सन् १८१२ ईस्वीतक "यूरोपनिवासियोंको इनका बिलकुल पता न था।" और बिना पाश्चात्य "सभ्यता" से सम्पर्कमें आये अपने ही ढंगसे उनके रस्म व रिवाज बनते गये।......इनमें एक एक स्त्रीके कई कई पति होनेका एक पूरी तरह संघटित और निश्चित रिवाज है।......"

ये लोग मजबूत और बड़े फुर्तीले होते हैं। इनका फुर्तीला-पन सबसे ज्यादह उस समय देखनेमें आता है जबकि अपने यहांकी अन्त्येष्टि क्रियाओंके समय उन्हें खूंखार भैंसोंको पकड़ना पड़ता है! वे तकानको खूब सहन कर सकते हैं और अक्सर बड़ी बड़ी दूरके लम्बे सफर करते हैं।...पहाड़के एक हिस्सेसे दूसरे हिस्सेतक जानेमें एक टोडा जहांतक सम्भव होसकता है सदा बिलकुल सीधा हो जाता है, अर्थात् पृथ्वीकी आकर्षण-शक्तिके असरका वह बिल्कुल भी खयाल नहीं करते और ढलवानसे ढलवान पहाड़ीके चढ़नेमें ऐसा मालूम होता है कि उन्हें कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ता। मुझे इन लोगोंके साथ जितना काम पड़ा उस सबमें मैंने इन्हें बहुत ही जहीन पाया। मैं जिस किसी विषयमें उनसे पूछताछ करने लगता,

उसके सम्बन्धकी सब बातोंको वह तुरन्त समझ जाते और प्रायः उलझे हुए विषयोंमें खास शौक लेते और जाहिर करते थे।...कई महीनेतक टोडा लोगोंके साथ रहनेके बाद मैं केवल अपना यह खयाल लेखबद्ध कर सकता हूं कि ये लोग ठीक उतने ही जहीन थे जितने जहीन कि शिक्षित यूरोपनिवासियोंका कोई औसत जनसमूह होसकता है।...एक खास बात इनके बर्त्तावमें यह चमकती है कि आसपासकी दूसरी जातियोंसे अपनी श्रेष्ठतामें इन्हें पक्का विश्वास है। ये लोग गम्भीर और बा-इज्जत हैं तथापि पूरी तरह खुशमिजाज और सब किसीका भला चाहनेवाले।" (पृष्ठ १८-२३)

नंगा रहना

पीलिउ टापू* लेखक जे० जी० वुड (Vol America, P· 447) देखो कैप्टेन, ह एच० विलसन, जिसका सन् १७८३ में वहांपर जहाज बरबाद होगया था।

"यहांके बाशिन्दे स्याह ताम्बेके रंगके हैं। उनकी शरीरकी बनावट बहुत अच्छी है। वे लम्बे हैं और उनकी खास विशेषता उनकी शानदार चाल है। शरीरके गुदवानेका रिवाज इनमें एक विचित्र ढंगका है। वे टखनोंसे लेकर घुटनोंसे कुछ इंच ऊपरतक अपनी टांगोंको खूब घना गुदवाते हैं। इस प्रकार उनकी टांगें शेष शरीरसे ज्यादह स्याह रंगकी मालूम होने लगती हैं। वे खूब साफ रहते हैं, कई कई बार नहाते हैं और अपने शरीरोंपर नारियलका तेल मलते हैं जिसके कारण उनकी खाल मुलायम और चमकीली मालूम होती है।...पुरुष बिल्कुल कपड़े नहीं पहनते, यहांतक कि इस कौमके राजाके शरीरपर भी वस्त्रका निशानतक नहीं होता। गोदना ही वस्त्रोंकी जगह समझा जाता है।...तथापि बावजूद इन लोगोंके

* फिलिपाइन टापुओंके पूर्व और कैरोलीन टापुओंके पश्चिममें।

नंगा रहनेके इनमें स्त्री-पुरुषोंके आपसके बर्त्तावमें शर्म और लिहाजकी हरगिज कोई कमी नहीं होती। मिसालके लिए पुरुष और स्त्री एक ही स्थान वा घाटपर कभी स्नान नहीं करते और न, जबतक घाट बिल्कुल खाली न होजावे, कभी एक दूसरेके घाटके नजदीकतक जाते हैं।"

दक्षिण अमरीकामें ऐमेजौन प्रदेशके बाशिन्दे

एलफ्रेड रस्सेल वैलेस अपनी पुस्तक "Travels on the Amagon" (१८५३) में उस देशके असली पुराने बाशिन्दोंके शरीरोंकी सुन्दरता, उनके हाथोंके फुर्तीलेपन और उनके नेक और शान्त स्वभाव, तीनोंकी अत्यन्त जोशीले शब्दोंमें प्रशंसा करता है। पुस्तकके १७ वें अध्यायमें वह लिखता है—"इन लोगोंके शरीर आम तौरपर बड़े बढ़िया होते हैं; और मुझे सुन्दर-से सुन्दर मूर्त्ति (वा बुत) के देखनेमें कभी इतना आनन्द नहीं आया जितना कि मानवी सौन्दर्यकी इन जिन्दा मिसालोंको देखनेमें आता था।"

अपनी पुस्तक—" My life" जिल्द दूसरी पृष्ठ २८८ पर वह लिखता है—"उनका सारा तर्ज और तरीका अर्द्धसभ्य जातियोंसे जुदागाना था। वे उस आजादाना चालके साथ चलते थे जिसके साथ एक स्वतन्त्र बननिवासीको चलना चाहिये।...जंगलके जंगली पशुओंके समान वे निराले और आत्मावलम्बी यानी स्वयं अपना पोषण करनेवाले थे।...वे अपने ही ढंगपर अपने ही तर्जकी वैसी ही जिन्दगी बसर करते थे, जैसी कि वे यूरोप-निवासियोंके अमरीका पहुंचनेके अगणित पीढ़ियों पहलेसे करते आये थे। जिस तरह ऐमेजौनका जंगल एक अत्यन्त अनोखा जंगल है, जिसे कभी कोई भूल नहीं सकता, उसी तरह उन जंगलोंके असली बाशिन्दे भी अनोखे ही हैं जिन्हें कोई कभी भूल नहीं सकता।"

डब्ल्यु० ई० हार्डनबर्गकी पुस्तक—"The Putumayo, or Devil's Paradise" (१९१२) से।

"दक्षिण अमरीकाकी हुइतोतो जातिकी शारीरिक बनावट अच्छी है। यद्यपि उनके कद छोटे होते हैं तथापि शरीर गठे हुए और मजबूत होते हैं। छाती चौड़ी होती है और शरीरके ऊपरका भाग भारी होता है किन्तु उनके हाथ-पांव और खासकर टांगें बहुत कम भरी हुई होती हैं।...वह घृणित दृश्य जो ऐमेजौन प्रदेशके 'गोरे लोगों' यानी नौआबाद यूरोप-निवासियों और दोगलोंमें आम तौरपर देखनेमें आता है, अर्थात् तोंदका बाहर निकला होना, उस मुल्कके इन पुराने बाशिन्दोंमें बहुत ही कम दिखाई देता है।...बावजूद कुछ त्रुटियोंके भी इनके जिस्म इतने शानदार होते हैं और इनकी चाल-ढाल इतनी स्वतन्त्र और लावण्यमय होती है कि इनके यहांकी स्त्रियोंमें अक्सर अनेक ही ऐसी मिलती हैं जो वास्तवमें खुबसूरत होती हैं।" (पृष्ठ १५२)

"हुइतोतो लोगोंमें पति और पत्नीका सम्बन्ध दोनोंके लिए मान्य और एक बन्धनकी तरह समझा जाता है, पति और पत्नीके दरमियान बहुत ही कम, शायद ही कभी,कोई गहरा मतभेद उत्पन्न होता है। स्त्रियां स्वभावसे ही सुचरित्र होती हैं और उनका यह प्रारम्भिक गुण केवल उस समयसे ही नष्ट होना शुरू हुआ जबसे कि रबर एकत्रित करनेवाले यूरोप-निवासियोंका उनके देशमें पदार्पण हुआ।...स्त्रियोंके नेकचलन होनेका यह गुण आम तौरपर उन पुरानी कौमोंमें पाया जाता है जो अभीतक गोरे लोगोंके सम्पर्कमें नहीं आई'" (पृष्ठ १५४)।

[यही 'हुइतोतो' उन लोगोंमेंसे हैं जिनके पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंको उन यूरोपियन व्यापारी धूर्तों ने जिनके अत्याचारोंको रोगर केसमेण्ट तथा अन्य सज्जनोंने संसारपर प्रकट किया था, रबर जमा करनेके लिए इतनी नीचताके साथ अनेक तरहके कष्ट और पीड़ाएं दी थीं—ए० का०]

'दयाक' जातिके सुन्दर शरीर और उनकी सुन्दर शकलें

बेक्कारकी पुस्तक—"In the Forests of Bornes" पृष्ठ ३२५, ३२६ (Constable १६०४)।

"अक्तूबरकी १६ तारीखको प्रातःकाल, जैसाकि पहलेसे तै होचुका था, लाड्जा आठ अन्य दयाकों* सहित यात्राका पूरा सामान लेकर क़िलेमें आया। लाड्जा एक खूबसूरत नौजवान था; अपने अधिकांश साथियोंके समान वह लम्बा था, बदनका छरैरा था और उसके अंगोंकी बनावट सुन्दर थी। नक्श व निगार करीब करीब बाक़ायदा और उसकी नाक बिल्कुल सीधी थी। किन्तु गालोंकी हड्डियां जरा ज्यादह उभरी हुई और ठोड़ी जरा ज्यादह नोकदार थी। उसका रंग बड़ा हलका था।"..."फ़्लोरेन्स† में आरनो नदीके ऊपर हमारे मल्लाह सदा छिछले पानीमें किश्ती खेते हैं और ठीक उस ही तरह चप्पू चलाते हैं जिस तरह दयाक लोग, किन्तु निस्सन्देह इस प्रकार अपनी हलकी किश्तियोंसे जितने दूर दूरके सफ़र दयाक लोग कर लेते हैं उतने दूर दूरके सफ़र वे लोग नहीं कर सकते। मेरे छै नौजवान दयाक जिस चतुराईके साथ किश्ती चलाते थे वह निस्सन्देह अतुलनीय थी और वह छोटीसी किश्ती उनके हाथोंमें अक्षरशः पानीके ऊपरसे उड़ी चली जारही थी। मेरी समझमें इससे ज्यादह हलका और अधिक आनन्ददायक तरीका सफ़रका नहीं होसकता और निस्सन्देह किसी भी दूसरी तरहके काममें इन नौजवान दयाक लोगोंके शरीरोंकी ऊपरसे नीचेतक निर्दोष बनावट और उनके हाथ-पैरोंके चलानेका सुबुक और शानदार ढंग इतनी अच्छी तरह दिखाई नहीं देसकता जितना इस काममें। इन लोगोंके शरीरपर कपड़े लगभग नहींके बराबर

* चीनके दक्षिण और सिंगापुरके पूर्वमें बोर्नियो टापूके बाशिन्दे।

† इटलीका एक प्रसिद्ध नगर।

होते हैं और उनके शरीर सचमुच मानवरूपके बड़े ही बढ़िया नमूने हैं।"

आइडा फाइकरकी पुस्तक—"Meine zweite Weltreise," Vol 1. पृष्ठ ११६ (Vienna, 1856)

"मैं इकबाल करती हूं कि यदि होसकता तो मैं बड़ी खुशीके साथ बहुत अधिक दिनोंतक इन आजाद् दयाक लोगोंके दरमियान सफर करती रहती। मैंने देखा कि इन्हें अपनी इज्जतका आश्चर्यजनक खयाल रहता है और दया तथा विनयके गुण भी इनमें आश्चर्यजनक ही हैं। निस्सन्देह अभीतक मुझे जितनी मनुष्य-जातियोंसे वाकफीयत है उन सबमें ऊपरके तीनों गुणोंके लिहाजसे मेरे खयालसे ये दयाक लोग सबसे बढ़कर हैं। मैं अपनी तमाम चीजें इधर-उधर पड़ी हुई छोड़ जाती थी और घण्टों मकानसे बाहर रहती थी, किन्तु कभी मेरी कोई छोटीसे छोटी चीज भी गुम नहीं हुई। वह अक्सर जो चीजें देखते थे उनमेंसे कई मुझसे मांग बैठते थे किन्तु ज्यों ही मैं उन्हें यह समझा देती कि मुझे स्वयं उस चीजकी जरूरत है, वह फौरन् मान जाते थे। वे कभी न जिद करते थे और न उनकी कोई बात बार मालूम होती थी। इसके जवाबमें यह कहा जावेगा कि मुर्दोंके सिर काट लेना और उनकी खोपड़ियोंको सुखाकर रखना ठीक दयाकेसे काम दिखाई नहीं देते। किन्तु यह याद रखना चाहिये कि यह शोकजनक रसम अधिकतर एक अनघड़ और अज्ञानमूलक अन्धविश्वासका परिणाम है। मैं अपनी रायपर कायम हूं और अगर उसके और ज्यादह सबूतकी जरूरत हो तो उनका सुव्यवस्थित घरेलू जीवन, जिसमें हरएक व्यक्ति घरानेके सबसे बड़े आदमीकी आज्ञाओंका पूरी पूरी तरह पालन करता है, उनका सदाचार और उनका आपसका बर्ताव, अपने बच्चोंकी ओर उनके प्रेम और बच्चोंकी ओरसे अपने बड़ोंका आदर—ये सब बातें पेश की जासकती हैं।"

दिव्य दृष्टि

दक्षिण अफरीकाके देशी "ज्योतिषी (शकुनपरीक्षक)" डरबन-निवासी सी० एच० बुलकी पुस्तक, "The Spiritualism of the Zulu" से।

"कई वर्ष हुए डरबन और उमजिमकुलुके दरमियान मैं ट्रान्सपोर्टका सामान लेजारहा था। डरबनमें मैंने अपने अदद गिने और देखा कि वे बिल्टीके मुताबिक सब ठीक थे। किन्तु यात्राके अन्तमें पहुंचकर मैंने देखा कि एक बक्स कम था जिसके लिए मुझे अपने पाससे कीमत भरनी पड़ी। जब मैं अपने खेतको लौटा तो मैंने अपने भाईसे सब हाल कह सुनाया। मेरे भाईने अधिकतर मजाकमें यह तजवीज पेश की कि हम किसी ज्योतिषीके पास जाकर पता लगानेकी कोशिश करें कि उस बक्सका क्या हुआ। मैं राजी होगया और हम दोनों मिलकर एक ऐसे ज्योतिषीके पास गये। उसने तुरन्त पहुंचते ही हमें बता दिया कि हम उसके यहां किस गरजसे गये थे। जहांतक मैं कह सकता हूं, किसी भी साधारण तरीकेसे उसके लिए हमारी गरजको जान जाना सर्वथा असम्भव था। इसके बाद वह इस तरहसे बात करने लगा जैसे कोई स्वप्न देख रहा हो। वह कहने लगा—'मैं देख रहा हूं कि एक गाड़ी जिसपर बक्स लदे हुए हैं उमगवा बाबा पहाड़ीके ऊपरसे जारही है। बारिश बहुत होचुकी है और सड़कोंपर फिसलन है। आधी पहाड़ी चढ़कर एक जगह बारिशसे मिट्टी बह जानेके कारण एक खाईसी बन गई है। गाड़ीका पहिया उस खाईके अन्दर लुढ़क गया। इससे एक छोटासा बक्स अपनी जगहसे निकलकर जमीनपर जापड़ा। किन्तु गाड़ीवालेने, जो अपनी जोड़ीको पहाड़ीके ऊपर चढ़ानेमें लगा हुआ है, बक्सको गिरते हुए नहीं देखा। अब गाड़ी नजरसे बाहर चली गई। किन्तु काफिर जातिका एक मनुष्य मुझे पहाड़ीके ऊपर चढ़ता

हुआ दिखाई देरहा है। जब वह उस जगह पहुंचता है, जहांपर कि बक्स पड़ा हुआ है, तो कुछ देरतक रुककर वह उसे देखता है। फिर वह पहाड़ीकी चोटीपर जाता है और वहां कुछ देरतक खड़ा होकर अपनी आंखोंपर इस तरह हाथका साया लेता है जैसे कि वह दूरतक देख रहा हो। अब वह उस जगह लौटा जहांपर कि बक्स पड़ा हुआ है। बक्स उठाकर, सड़कको पार करके, वह ऊंची टाम्बूटी घासमेंको चलकर एक बड़े इए-डोनी वृक्षके पास पहुंचा। उस दरख्तके नीचे जंगली केलोंके कुछ ठूँठ हैं। उसने बक्सको ठूँठोंके बीचमें रख दिया और ऊपरसे कुछ सूखे पत्ते ढककर वह अपने रास्ते चल दिया। बक्स अभीतक वहां ही पड़ा हुआ है।'

यद्यपि इस विचित्र दृष्टिकी सचाईपर मुझे बिल्कुल भी एत-बार नहीं आया तथापि जिस जगहका उसने जिकर किया था वहांपर मैंने अपने दो नौकर भेजे। वे खोया हुआ बक्स अपने साथ लेकर लौटे। बक्स उन्हें ठीक उसी स्थानपर मिला जहां-पर कि उस ज्योतिषीने बताया था कि उसे दिखाई देरहा है।"

दक्षिण अफरीकाकी जूलू जाति

जूलू जाति—जनरल सर डब्ल्यु० बटलरकी पुस्तक, "Naboth's V ineyard" पृष्ठ २६३ (ब्लाइडनकी पुस्तक—"African life and customs" पृष्ठ ४३ से उद्धृत)।

"दक्षिण अफरीकाके समस्त शोकजनक इतिहासमें बहुत कम ऐसी बातें हैं जो जूलू जातिके प्रश्नसे भी अधिक शोकजनक हों। (उन दिनों) जहां कहीं भी जूलू जातिका कोई मनुष्य होता था वहां किसी ताले वा चाबीकी जरूरत न होती थी। नौआबाद गोरे यूरोपियन उनसे अधिकतर इसलिए नाराज थे, क्योंकि वे इन जूलू लोगोंसे गुलामोंकी तरह मेहनत न करवा सकते थे। किन्तु कोई मनुष्य जो जूलू जातिको जानता हो—यहांतक कि कोई गोरा नौआबाद भी—यह न कह सकता था

कि उसने जूलू-जातिके लोगोंको ईमानदार, सच्चा और वफादार नहीं पाया, अथवा यह कि उसकी गोरी पत्नी वा बाल-बच्चे इस काले आदमीके हाथों बेइज्जती वा किसी तरहकी भी हानिसे सर्वथा सुरक्षित नहीं रहे, अथवा यह कि रुपया वा माल-असबाब यूरोप-निवासियों वा एशिया-निवासियोंकी निस्बत जूलू लोगोंके हाथोंमें बदरजहा ज्यादह महफूज नहीं था।"

ब्लाइडनकी पुस्तक—"African life and Customs" पृष्ठ ३७ से।

"आज दिन सैकड़ों अफरीकानिवासी ऐसे हैं जो इस नामधारी "सभ्यता" को त्यागकर फिरसे रहन-सहनके अपने पुराने तरीके अख्तियार करते जारहे हैं। इन लोगोंने यूरोपकी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाके अन्तर्गत असूलोंको अच्छी तरह समझ लिया है; और इस बातको भी समझ लिया है कि जितनी सुन्दरता और सफलताके साथ इनके अपने यहांके पुराने असूलोंके जरिये आजकलके और भविष्यके तमाम इन्सानोंकी पैदायशसे लेकर मौततककी तमाम कुदरती जरूरतोंको पूरा करनेका पूरा पूरा प्रवन्ध किया जा सकता है, वैसा नई यूरोपियन सभ्यताके इन सामाजिक असूलोंके जरिये हरगिज नहीं किया जासकता। इसीलिये ये लोग अब इन्हें (अर्थात् यूरोपियन "सभ्यता" के अन्तर्गत असूलोंको) त्यागते जारहे हैं। इन लोगोंने पढ़ पढ़कर और यात्राएं करके यूरोपियन पद्धतिकी तमाम बरबादियों और उसके समस्त नंगेपनका पता लगा लिया है। शुरू शुरूमें ये भोले अफरीका-निवासी यूरोपियन-पद्धतिको आदर्श पद्धति समझने लग गये थे; किन्तु अब यूरोपकी बढ़ी हुई दौलत भी उनकी आंखोंको पहलेके समान चकाचौंध नहीं कर सकती। यह दौलत अब उनकी नजरसे यूरोपके उन बहुसंख्यक जन-सामान्यको नहीं छिपा सकती जो इस यूरोपियन पद्धतिके नीचे रहकर न अपने ही किसी भी कामके रहे और न

दूसरोंके ही किसी भी मसरफके।……अफरीकाकी पुरानी पद्धतिके अनुसार तमाम धन-सम्पत्ति समस्त जातिकी धन-सम्पत्ति समझी जाती थी और उस धन-सम्पत्तिको पैदा करनेके लिए जातिके सब लोग मिल-जुलकर प्रयत्न करते थे। स्वभावतः उस पुरानी पद्धतिमें जातिके प्रत्येक व्यक्तिको अपनी जिन्दगी-भरके लिए रहनेको घर, खाने और पहरनेको काफी भोजन और वस्त्र तथा जिन्दगीकी बाकी सब जरूरियात पूरी तरह मिल जाती थी; और उसकी मृत्युके बाद यही सब आराम उसके बच्चोंको भी मिलता रहता था। उस पद्धतिमें आजकलकी, यूरोप,की तरह गरीबोंको जीविका पहुंचानेके लिए कोई पुण्यार्थ 'मुफलिसखाने' वा'कारखाने'नहीं थे और न इस तरहकी चीजोंकी कोई जरूरत पड़ती थी।" ——

अत्यधिक शासन

वैलेसकी पुस्तक—"Malay Archipelago" पृष्ठ ३३६ (१८६४ की आवृत्ति)।

"ये रंग-बिरंगे, जाहिल, खूनके प्यासे और चोर लोग (जिनमें पैपुआ-निवासी, जावाके रहनेवाले और चीनी इत्यादि सब जातियां शामिल हैं) यहांपर* मिल-जुलकर रहते हैं और यहां-पर किसी तरहकी गवर्नमेण्टकी छायातक नहीं है; न कोई पुलीस है, न अदालतें हैं और न कोई वकील। किन्तु फिर भी ये लोग न एक दूसरेका गला काटते हैं, न रात दिन एक दूसरे-को लूटते हैं और न इनके यहां उस तरहकी अव्यवस्था वा अरा-जकता ही कभी दिखाई देती है जिसके ऐसी परिस्थितिमें पैदा होजानेका गुमान होसकता था। यह बात अत्यन्त विचित्र है! इसे देखकर शासनके उस पहाड़केसे बोझके विषयमें मनुष्यके चित्तमें अजीब अजीब खयालात पैदा होने लगते हैं जिस बोझके नीचे यूरोपके लोग इस समय दबे हुए हैं; और यह खयाल होने

* एशिया महाद्वीपके पूर्व-दक्षिण और आस्ट्रेलियाके उत्तरके टापुओंमें।

लगता है कि कहीं हम अत्यधिक शासन वा अत्यधिक गवर्नमेण्टके रोगमें तो ग्रस्त नहीं हैं। विचार कीजिये, कि सैकड़ों नये कानून पार्लियामेण्टसे हर साल इसलिए पास होते रहते हैं कि हम, इङ्गलैण्डके बाशिन्दे, एक दूसरेके गले न काटें या अपने पड़ोसियोंके साथ कोई ऐसा सलूक न कर बैठें जैसा हम चाहते हों कि वे हमारे साथ न करें। सोचिये, कि हजारों वकीलों और बैरिस्टरोंकी तमाम उमरें इसी काममें खर्च होती हैं कि वे हमें यह बताते रहें कि उन सैकड़ों कानूनोंके माइने क्या क्या हैं। यह सब सोचनेपर यह नतीजा निकलने लगता है कि यदि डौब्बो* में कानूनकी कमी है तो इङ्गलैण्डमें जरूरतसे ज्यादह कानून हैं।"

बिना गवर्नमेण्टका समाज

मार्लेकी पुस्तक—"Roussean Vol II P. 227, note (Eversley edition, 1910.)

"जैफरसन, जो सन् १७८४ से सन् १७८९ तक अमरीकाकी ओरसे फ्रांसमें एलचीकी तरह रहा और जिसपर बहुतसे ऐसे खयालात असर कर गये थे जो उस समय फ्रान्समें फैले हुए थे, इस तरहके शब्दोंमें लिखता है जो रूस्सोसे लिए हुए मालूम होते हैं। वह लिखता है—"मुझे पूरा विश्वास है कि जो जो मनुष्य-समाज वा मनुष्य-जातियां अमरीकाके पुराने बाशिन्दोंके समान बिना किसी तरहकी गवर्नमेण्टके रहती हैं, वे उन मनुष्योंकी निस्बत, जो यूरोपियन गवर्नमेण्टोंके अधीन रहते हैं, समष्टि रूपसे बदर्जेहा ज्यादह सुखी हैं। बिना किसी तरहकी गवर्नमेण्टके रहनेवाली जातियोंमें जन-सामान्यकी राय कानूनका काम करती है और उतने ही जोरोंके साथ लोगोंके सदाचारको ठीक रखती है जितने जोरोंसे कि कानूनोंने कभी कहींपर भी

* आस्ट्रेलियाके उत्तरमें न्यू गायना नामक टापूके निकट आरु टापुओंमें एक छोटासा पुराना नगर—अ०।

सदाचारको ठीक रखा हो। गवर्नमेण्टोंवाली तमाम कौमोंमें गवर्नमेण्ट वा शासनके बहाने कौमको दो श्रेणियोंमें फाड़ दिया गया है, एक भेड़िये और दूसरी भेड़। मैं अत्युक्ति नहीं कर रहा हूं। यह यूरोपका सच्चा सच्चा चित्र है,।" (टकर की 'Life of Jefferson' Vol 1 P. 255)

बिना गवर्नमेण्टके सलामती

डब्ल्यु० बी० हैरिसकी पुस्तक—"Tafilet," P. 353, (Blackwood, 1895)

"अफरीकाकी काली 'मूर' जातिके लोगोंमें एक कहावत है कि हिफाजत और सलामती सिफ उन प्रदेशोंमें ही पाई जा-सकती हैं जहां कि कोई गवर्नमेण्ट नहीं है—अर्थात् जहांपर कि गवर्नमेण्ट केवल उनकी अपनी जातीय पंचोंकी (Tribal) गवर्नमेण्ट है। निस्सन्देह यह कहावत बिल्कुल सच्ची है।"

"सभ्यता" द्वारा पतन

डरबन-निवासी सी० एच० बुलकी पुस्तक—"The Spiritualism of the Zalu." से।

"३२ वर्ष हुए मैं कुछ दिनों नैटालके एक ऐसे जिलेमें रहा था जिसमें वहांके असली बाशिन्दोंकी घनी आबादी थी। इन लोगोंमें उस समयतक उनके पुराने जातीय रस्म और रिवाज कायम थे। तथापि वे उस समय ईमानदार, बहादुर और जहीन लोग थे और सदाचार अर्थात् पाप-पुण्यके विषयमें उनके निहायत पक्के खयालात थे। तीस वर्षके बाद इंगलैण्डके लिये रवाना होनेसे ठीक पूर्व मैं एक बार फिर उस जिलेमें गया। और उन लोगोंमें जो तब्दीली इस बीच होगई थी, उनकी आदतों, उनके चरित्र और उनकी शारीरिक अवस्थामें, उसे देख-कर मैं चकित रह गया। तीस वर्ष पहले यद्यपि उनके तन केवल इस तरहकी चीजों वा वस्त्रोंसे ढके होते थे जो वे अपनी सीधी-

सादी कारीगरीके जरिये अनघड़ प्राकृतिक पदार्थोंसे बना लेते थे तथापि उन वस्त्रोंके नीचे उनके सुडौल और बलवान जिस्म समस्त जातिकी एक विशेषता थी। किन्तु उस समय उनकी चाल-ढालमें भी एक प्रकारकी शान वा गौरव था जो अपने सुडौल जिस्मों और शारीरिक बलके ज्ञानसे उत्पन्न होता था। किन्तु, अब उस पुरानी शान और उस आत्म-गौरवके स्थानपर चारों ओर दुराचार-सूचक निकृष्ट दरिद्रता और शरीरोंपर या तो फटे हुए चीथड़े या बेतुके चटक-मटकके कपड़े दिखाई देते थे। चारों ओर नये ईसाई मतके अनेक सम्प्रदायोंके छोटे छोटे लोहेके अथवा धज्जोकी दीवारोंके गिरजोंने आस पासकी भूमिके सौन्दर्यका सत्यानाश कर डाला था। जबकि इन सम्प्रदायोंके पादरी जिस धर्मका प्रचार करते थे, उसके झिरने परदोंकी ओटमें शराबखोरी, बेईमानी और बदचलनी चारों ओर ही फूलती-फलती दिखाई देती थीं। ३० वर्षके अन्दर तब्दीली कामिल हो चुकी थी और अत्यन्त शोकजनक थी। देशके उन असली पुराने बाशिन्दोंको भी अपने इस पतनका ज्ञान था और पुराने तरीकोंके मिट जानेका हार्दिक दुःख था।"

गुलामी

वेट्जकी पुस्तक—" Anthropologie der Naturvolker", Vol II, P. 281 (Leipzig, 1860) से।

"पता चलता है कि 'सभ्य' जातियोंकी अपेक्षा 'असभ्य' अथवा कम सभ्य जातियोंमें गुलाम लोग कहीं ज्यादह खुशीकी जिन्दगी बसर करते हैं। निस्सन्देह शासकवर्गकी 'सभ्यता' जैसे जैसे बढ़ती जाती है वैसे वैसे ही उसके गुलामोंकी हालत अधिकाधिक खराब होती चली जाती है। पहलेपहल यह कथन अजीब और अविश्वसनीय मालूम होता है किन्तु नीचे लिखी बात उसकी सचाईको असंदिग्ध कर देती हैं। और वास्तवमें

इसे समझना कुछ भी कठिन नहीं है। सबसे मुख्य कारण इस भेदका यह है कि 'केवल भौतिक सभ्यता' के बढ़नेके साथ साथ 'समय' और 'मेहनत', दोनोंकी कदर बढ़ती जाती है और स्वभावतः इन दोनोंका उपयोग करनेमें जबरदस्तीकी मात्रा और न्याय और अन्यायके अविवेककी मात्रा भी साथ ही साथ बढ़ती चली जाती है। इसके बरअक्स पुरानी 'असभ्य' जातियोंमें आम तौरपर 'समय' और 'मेहनत' दोनोंकी इतनी ज्यादह कदर नहीं की जाती।"

पश्चिमी 'सभ्यता' का छल

काउण्ट लिओ टाल्सटायके "एक चीनी सज्जनके नाम एक पत्र" से उद्धृत (Saturday Review, December 1, 1906 में प्रकाशित।)

"पश्चिम यानी यूरोपकी इन तमाम कौमोंके अन्दर एक ओर गरीब बिरझाए हुए मजदूरीपेशा लोग और दूसरी ओर गवर्नमेण्ट तथा धनाढ्य लोग, इन दोनों श्रेणियोंके बीच एक लगातार विरोध जारी है। इस विरोधको केवल जबरदस्तीसे वे लोग ज्यों-त्योंकर दबा रखते हैं जिन्हें फौजी सिपाही कहा जाता है और जो स्वयं धोखेमें पड़े हुए हैं। इस ही तरहका एक और विरोध पश्चिमकी विविध गवर्नमेण्टों यानी कौमोंके दरमियान भी बराबर जारी है जिसके कारण हर एक गवर्नमेण्टको अपनी युद्धकी सामग्री बेहद और लगातार बढ़ाते रहनेकी जरूरत पड़ती है। यह दूसरा विरोध इन कौमोंको किसी भी क्षण महान्से महान् आपत्तियोंमें डाल सकता है। यह सब हालत चाहे कितनी भी भयंकर क्यों न हो पश्चिमी कौमोंकी मुसीबतका सार वा उसका मूल कारण अभी एक और ही है। इन कौमोंकी खास मुसीबत यानी इनकी तमाम मुसीबतोंकी जड़ इस बातमें है कि ये कौमें खुद अपने लिए खाना मोहय्या करनेके नाकाबिल हैं और इनका तमाम जीवन कतई तौरपर इस बातपर अवल-

म्बित है कि ये अपने पशुबल वा अपनी चालबाजियोंके जरिये इस तरहकी दूसरी कौमोंसे अपने लिए भोजन हासिल करें जिन्होंने चीन, हिन्दोस्तान, रूस इत्यादिके समान अकलमन्दीके साथ अभीतक अपनी काश्तकारीकी जिन्दगीको बनाये रखा है।

शासन-संघटनकी नियमावलियां, विदेशी मालपरके टैक्स और तय्यार फौजें—इन सब चीजोंने मिलकर पश्चिमकी कौमोंको आज इस हालततक पहुंचा दिया—इन लोगोंने खेतीका काम छोड़ दिया यहांतक कि उसकी आदत भी इनमेंसे जाती रही, शहरों और कारखानोंमें ये लोग इस तरहकी चीजोंके तय्यार करनेमें लगे रहते हैं जिनमें ज्यादहतर गैर जरूरी हैं, और अपनी अपनी राष्ट्रीय सेनाओं-सहित ये लोग केवल तरह तरहकी हिंसा और लूट-मारके ही काबिल रह गये हैं। इनके जीवनकी तमाम इमारत इस समय धोखेबाजी और खेती करनेवाली कौमोंकी लूट-खसोटके सहारे कायम है; इनकी हालत ऊपरसे देखनेमें चाहे कितनी भी चमक-दमकवाली क्यों न दिखाई दे किन्तु वास्तवमें वे नाशके मुंहपर खड़े हुए हैं और यदि उन्होंने अपने जीवनकी इस तमाम इमारतको ऊपरसे नीचेतक बदल न डाला तो वे सबके सब गारत हुए बिना नहीं रह सकते।"

ओब्रीनकी पुस्तक—"White shadows in the South Seas." (New York 1919) से।

"सौ वर्ष हुए दक्षिणी सागर*के इन टापुओंमें मार्किसान जाति के १, ६०, ००० आदमी बसते थे। आज उनकी कुल संख्या २, १०० से भी कम है।" आगे चलकर ओब्रीन बयान करता है कि इस "असभ्य" जातिके ऊपर "सभ्य" ईसाई मजहबके प्रभाव कितने बुरे पड़े। वह लिखता है कि इन जातियोंके अपने धार्मिक विश्वास जो "अंधविश्वास" कहे जाते हैं उनमें

---

* यानी पैसिफिक महासागरका दक्षिणी भाग।

जबरदस्त जीवन संचार करनेका काम करते थे। उनके नाच-कूद, उनका गोदना, उनके मजहबी रस्म-रिवाज, उनका गाना और उनका लड़ना, इन सबके द्वारा ये लोग जीवनमें एक आनन्द अनुभव करते थे। किन्तु—"आज हवाई टापूसे लेकर ताहिती टापूतक पौलिनीशियाके तमाम पुराने बाशिन्दे मरते जारहे हैं, क्योंकि उनकी वह खेल-कूदकी स्वाभाविक आदत, जो उनके अधिकांश रस्म और रिवाजों और उनके अन्य व्यापारोंमें प्रकट होती थी, दबा डाली गई।" आज दिन वे "केवल-मात्र मशीनें" दिखाई देते हैं "जिनमें खुशीका कोई निशान नहीं" और जो "जिन्दगीसे बेजार" हैं।

हमारी "सभ्यता" की असफलता

यदि पूरी खोजके साथ हमारी अपनी सामाजिक अवस्था और उन अनेक "असभ्य" जातियोंकी सामाजिक अवस्थाकी तुलना करना हो, जिनमें ए० आर० वैलेस जाकर रहा, और यह देखना हो कि उन जातियोंकी अवस्था हमसे कितनी अधिक अच्छी है तो A. R. Wallace की पुस्तक "Malay Archipelago" (1 st ed. 1869) P.456, 7 (ed. 1894) देखो। यह विद्वान् लेखक अपनी पुस्तकके अन्तमें लिखता है:—

"मनुष्यके स्वभावमें ही एक दूसरेसे प्रेमके भाव और भलाई और बुराईमें तमीज करनेकी शक्ति, यें दोनों बातें मौजूद हैं। हमारी "सभ्यता" की असफलताका मुख्य कारण यह है कि हमने अपने अन्दरके इन भावोंको और अपनी उस विवेक-शक्तिको पूरी तरहसे और उचित ढङ्गसे जगाने और उन्नत करनेकी ओरसे लापरवाही की; और अपने यहांके कानूनोंके बनानेमें, अपनी तिजारतमें और अपने समस्त सामाजिक संघटनमें इन भावों और शक्तियोंका अधिक प्रभाव पड़ने नहीं दिया। किन्तु जबतक इन बातोंको और हमारी "सभ्यता" की इस

असफलताको लोग ज्यादह आम तौरपर समझने न लग जावेंगे, तबतक समष्टिरूपसे हम कभी भी उच्चतर श्रेणीकी 'असभ्य' जातियोंके ऊपर किसी तरहकी वास्तविक वा महत्त्वपूर्ण श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकते। यही सबब है जो मैंने 'असभ्य' मनुष्य-जातियोंकी देख-भालसे सीखा है।

अब मैं अपने पाठकोंको अलविदा कहता हूं!*

---

* ग्रन्थकर्त्ताने यह परिशिष्ट अपनी मूल पुस्तकके सबसे अन्तमें दिया है—अ०।

सभ्यता महारोग

उसका

निदान और निवारण

दूसरा भाग

पहला अध्याय

मुजरिमाका पक्ष-समर्थन, सदाचारकी परीक्षा

असली "राज-शासन" उस धार्मिक जीवनको कायम करना है जो उस खास समयमें प्रत्यक्ष और साक्षात् किया जाचुका है। क्योंकि प्रधान व्यापक यानी सार्वजनिक "संकल्प-शक्ति" और व्यक्तिकी संकल्प-शक्ति, इन दोनोंमें एकता कायम कर देना ही राज-शासन है, और यही "धर्म" है। —हीगेल*

"मुजरिम" का शब्दार्थ है वह मनुष्य जिसपर यह 'जुर्म' अर्थात् दोष लगाया गया हो—और आजकलके अर्थोंमें जिसको इस बातका दोषी करार किया जाचुका हो—कि वह "समाज" के लिये हानिकर है। किन्तु देखना यह है कि क्या कचहरीके कटघरेके अन्दर खड़ा हुआ यह बदमाश वा चोर, जिसके कोटमें पेवन्द लगे हुए हैं, सचमुच 'मनुष्य-समाज' के लिये हानिकर है? क्या वह उस दूसरे सौम्य दिखाई देनेवाले विग† पहरे हुए बूढ़ी उमरके भद्र मनुष्यसे अधिक हानिकर है जो उसको सजाका हुक्म सुनाता है? यही प्रश्न है। निस्सन्देह इस आदमीने कानूनके खिलाफ काम किया है, और कानून एक अर्थमें 'मनुष्य-समाज' की मूर्त्तिमान सार्वजनिक राय भी है, किन्तु यदि कोई भी आदमी कानून न तोड़े तो यह सार्वजनिक राय हड्डीकी तरह ठस होकर रह जावे और मनुष्य-समाजकी मृत्यु हो-जावे। असलीयत यह है कि 'समाज' की राय बराबर बदलती रहती है। तब हम किस तरह समझें कि 'समाज' की

---

* १७७०—१८३१, जर्मनीका एक मशहूर फिलोसोफर।

† जजोंकी एक विशेष टोपी।

राय कब ठीक राय है और कब गलत है? एक युगमें जिस मनुष्यको देश-निकालेका दण्ड दिया जाता है दूसरे युगमें उसे ही 'वीर' मानकर उसकी पूजा कीजाती है। रोगर बेकन*के जमानेके लोगोंने रोगर बेकनको दण्डनीय करार देकर उसकी हाथकी लिखी किताबोंको सूलीपर चढ़ा दिया था अर्थात् तख्तोंके ऊपर कीलोंसे जड़कर धूप और पानीमें, सड़नेके लिये, फेंक दिया था, रोगर बेकनकी हड्डियां आज किसी ऐसी कबरमें पड़ी हैं जिसका किसीको पतातक नहीं और जहां पहुंचकर उसका कोई नामतक नहीं लेता; तथापि आज रोगर बेकन मनुष्यके विचारोंके (अर्थात् विचार-स्वातन्त्र्यके) मार्ग-प्रदर्शकों और मार्ग साफ कर देनेवालोंमें गिना जाता है। वह (दो हजार वर्ष पूर्वका) घृणित 'ईसाई', जो उस समय इटलीकी राजधानी रोमके आसपास अपने शहीदोंकी कबरोंमें छिप छिपकर अँधेरेमें अपने वे प्रेम-भोज (एक ईसाई धार्मिक क्रिया) मनाया करता था जिनके लिये वह बदनाम था, आज उसी रोमके अन्दर सेण्ट पीटरके तख्त† और संसारके तख्तपर चढ़ा हुआ बैठा है। सूदपर रुपया देनेवाला वह यहूदी साहूकार, जिसे फ्रोण्ट-दे-बेउफ बेखौफ पीड़ाएं देसकता था आज रौथ्स चाइल्ड‡ बना

* रोगर बेकन (१२१४—१२९४), एक यूरोपियन वैज्ञानिक जिसे उसके समयके ईसाइयोंने जादूगर बताकर और लामजहब कहकर पीड़ाएं दे देकर मार डाला, किन्तु जिसके विचारोंकी आजकल बड़ी कदर कीजाती है—अ०।

† रोमके 'पोप' का तख्त। उस समयकी ओर इशारा है जबकि रोमके अन्दर ईसाई-मजहबकी मुमानिअत थी और ईसाइयोंको पकड़ पकड़कर देश-निकाले दिये जाते थे और पीड़ाएं दे देकर मारा जाता था—अ०।

‡ इङ्गलैंडका एक अत्यन्त धनाढ्य खरबपति यहूदी कुटुम्ब। इस वाक्यमें ईसाई-यूरोपके उस युगकी ओर इशारा है जबकि यूरोपभरमें

हुआ बादशाहोंका मेहमान होता है और राष्ट्रोंके बीच व्यापारिक युद्ध करवा डालता है ; और किसी पूर्व युगका घृणास्पद शाइलौक* आज अत्यन्त सम्माननीय और रेलवे कम्पनियोंके हिस्सोंका मालिक बना बैठा है। ऐसे ही एक युगमें इज्जत पानेवाला मनुष्य दूसरे युगमें 'मुजरिम' करार दिया जाता है। सिकन्दरके तमाम जाहो-जलालको आंखोंके सामने रखते हुए भी हम उसे उस निर्दयताके लिये क्षमा नहीं कर सकते जिस निर्दयताके साथ 'टाइर' नगरकी रक्षा करनेवाले हजारों ही बहादुर जवानोंको उसने समुद्र-तटके बराबर बराबर सूलोपर चढ़वा दिया था ; और यदि सुलेमान† अपनी हजार बीबियों और उपपत्नियों-सहित कल लन्दन शहरमें आजावे तो हमारे यहांके हलकेसे हलके चरित्रके लोग भी देखकर दंग रह जावें, और उसके मुकाबलेमें ब्रिघम यङ्ग‡ एक सुचरित्र घरेलू आदमी मालूम हो। आज जज कैदीको सजाका हुक्म सुनाता है, किन्तु एक समय आवेगा कि 'समाज' अपना मौका पाकर जजके लिये सजाका हुक्म सुनावेगा। उस समय 'समाज' के हाथोंमें एक नया कानून और एक नया धर्म-शास्त्र होगा, और वह समाज अपने इस समयमें कायम-मुकाम यानी जजको और

यहूदियोंको उनके मजहबके कारण दण्ड, पीड़ाएं, देश-निकाले और फांसियां दीजाती थीं—अ०।

* शेक्सपीयरके एक सुप्रसिद्ध नाटकका नायक और यहूदियोंका एक सामान्य नाम।

† १८९०—१५६६, एक विख्यात उसमानी सुलतान जो अपनी योग्यता, विद्वत्ता आदिके लिये मशहूर है।

‡ १८०१—१८७७, अमरिकाके मौरमन सम्प्रदायका एक नेता, ये लोग बहुपत्नीवादमें विश्वास रखते हैं, मृत्युके समय ब्रिघम यङ्गके १७ बीबियां थीं—अ।

उस कानूनको भी, जिसके मुताबिक वह कायम-मुकाम फैसले करता है, घृणाके साथ गूदड़खानेमें फेंक देगा।

मालूम होता है कि जिस तरह एक व्यक्ति जैसे उन्नति करता हुआ एक अवस्थासे दूसरी अवस्थाको पहुंचता जाता है वैसे वैसे ही वह अपने जीवनके नये नये आदर्श बनाता जाता है; इसी तरह 'समाज' भी ज्यों ज्यों उन्नति करता जाता है त्यों त्यों ही उसके आदर्श बनते जाते हैं। हर समय हर मनुष्यके दिमागमें एक न एक आदर्श जरूर होता है, चाहे उसे स्वयं इसका बोध हो या न हो, और उस आदर्शकी ओर बढ़नेका वह बराबर प्रयत्न करता रहता है; यही साहित्यके महत्त्वका कारण है। इसी तरह 'समाज' के दिमागमें भी हर समय एक न एक आदर्श जरूर रहता है। जिस दिशामें 'समाज' किसी समय आगेको बढ़ता होता है उस दिशाकी यदि एक गोल चक्रसे तुलना कीजावे तो ये बदलते हुए आदर्श वे बाहरकी सीधी रेखाएं होती हैं जो ठीक उस खास समय विन्दुपर चक्रको स्पर्श करती हुई निकल जाती हैं, इन रेखाओंके उन विन्दुओंपर जिन-पर वे चक्रको स्पर्श करती हैं वह असली दिशा वहीं गुम होजाती है। मतलब यह कि 'समाज' कभी भी अपने आदर्शतक नहीं पहुंचता बल्कि क्षणभरके लिये उस दिशामें जाकर फिर तुरन्त अपनी दिशा बदल लेता है और समाजका आदर्श भी साथ साथ ही बदलता रहता है।

जब कभी 'समाज' का आदर्श धन-दौलत वा मिलकीयत हासिल करता होता है, जैसाकि अधिकतर आज दिन है, तब ही चोरको 'समाज' की खास घृणा और सजाका पात्र समझा जाता है—किन्तु उस अमीर चोरको नहीं जोकि मालिक बना बैठा है और इसलिये बाइज्जत समझा जाता है, बल्कि बेचारे गरीब चोरको। यह किसी तरह साबित नहीं होता कि गरीब चोर बाइज्जत किन्तु नीच साहूकारकी निस्बत वास्तवमें ज्यादह

दुराचारी है वा समाजमें बैठनेके ज्यादह नाकाबिल है ; किन्तु यह बात बिल्कुल साफ जाहिर है कि नीच साहूकार बराबर 'समाज'के जबरदस्त बहावके साथ बहता रहा जबकि बेचारा गरीब आदमी इस बहावके खिलाफ तैरने की कोशिश करता रहा और इसीलिए पिछड़ गया। अथवा जब कभी आजकलके समान 'समाज' के सामाजिक जीवनका आधार जमीनकी शख्सी मिलकीयत होती है तो दूसरेकी जमीनपरसे शिकार चुरा लानेवाला मनुष्य उस समय सामाजिक आदर्शका शत्रु गिना जाता है। अगर आप इङ्गलैण्डके देहातके जमींदारोंके यहां जावें और खाना खानेके बादकी उनकी बातचीत सुनें,तो आपको फौरन् इस बातका यकीन होजावेगा कि शिकारका चोर ही तमाम इन्सानी और शैतानी बुराइयोंका मजमूआ है; तथापि मैं बहुतसे शिकार-चोरोंको जानता हूं और या तो मेरी किस्मतसे मुझे उनमें नमूने ही इत्तफाकसे खास तौरपर अच्छे मिले और या इस विषयमें मेरे अन्दर विचित्र पक्षपात भरा हुआ है, क्योंकि मैंने आम तौरपर उन्हें बहुत ही अच्छा आदमी पाया— किन्तु बस, यह एक दोष मैंने उनमें सबमें देखा कि वे प्रत्येक जमींदारको शैतानका दूत मानते हैं ! शायद शिकारके चोरकी बात उतनी ही ठीक है जितनी कि जमींदारकी बात, किन्तु वह इस समय ठीक नहीं है। वह एक ऐसे मानव-अधिकार पर जोर देरहा है और मनुष्यकी एक ऐसी स्वाभाविक प्रवृत्तिको प्रकट कर रहा है जो उस भूतकालके साथ सम्बन्ध रखती है, जबकि शिकार खेलनेके लिये सब जमीन सबकी एक समान सम्मिलित मिलकीयत समझी जाती थी—अथवा उसकी यह प्रवृत्ति उस भविष्यकालके साथ सम्बन्ध रखती है जबकि इस प्रकारके वा इसके समान इन्सानी हकूक फिरसे सब मनुष्योंको हासिल होजावेंगे। प्राचीन सुएवी जातिके विषयमें सीजर बयान करता है कि उनके यहां अलग अलग

आदमियोंकी कोई जमीन न थी, बल्कि सब मिलकर सारी जमीनको जोतते थे। इस बातकी काफीसे ज्यादह शहादतें हैं कि आजकलकी सभ्यताकी अवस्थामें प्रवेश करनेसे पहले तमाम शुरू जमानेकी मनुष्य-जातियां सम्मिलित जीवन व्यतीत करती थीं। अर्थात् उनकी तमाम जमीनें आदि जातिभरकी सम्मिलित सम्पत्ति समझी जाती थी। आज दिन भी पैसि-फिक महासागरके टापुओंमें रहनेवाली कुछ प्राचीन कौमें इसी तरहसे रहती हैं। उन दिनों व्यक्तिगत सम्पत्ति चोरी थी अर्थात् किसी एक शख्सके लिये किसी चीजको या किसी जमीनको अपनी अलग मिलकीयत बना बैठना जुर्म माना जाता था। जाहिर है कि उस समय जो कोई मनुष्य जमीन अथवा माल अपने लिये रख लेनेकी कोशिश करता था, अथवा जो कोई सार्वजनिक भूमिका कोई हिस्सा चारों तरफ बाढ़ लगा-कर अलग घेर लेता था और आजकलके जमींदारकी तरह किसी दूसरेको उस समयतक उस जमीनको जोतने न देता था जिस समयतक कि वह जोतनेवाला उसे टैक्स वा लगान न दे तो इस तरहका मनुष्य उस समय सबसे अधिक संगीन मुज-रिम गिना जाता था। तथापि उस प्राचीन जमानेके मुजरिम धक्के दे-दिलाकर आगे बढ़ आये और आजकलके 'समाज' में बा-इज्जत बने हुए हैं। और बिलकुल मुमकिन बल्कि अगलब है कि ठीक इसी तरहसे आजकलके मुजरिम भी जबरदस्ती आगे बढ़कर किसी अगले जमानेके बा-इज्जतदार मनुष्य बन जावेंगे।

तप, इन्द्रिय-संयम और मठोंके अन्दर दुनियासे अलग एकान्त जीवन व्यतीत करना, जो ईसाई मतके शुरूके और बीच-जमानेमें आदर्श जीवन समझा जाता था अब यदि बदमाशोंका जीवन नहीं तो कमसे कम बेवकूफोंका जीवन जरूर समझा जाता है; और गरीबी जो अनेक देशों और अनेक जमानोंमें ईमानदारीका एकमात्र वेश और बड़ी इज्जतकी चीज समझी

जाती थी आजकल एक जुर्म और लज्जाकी बात समझकर दुरि-याई जाती है। आजकलके 'समाज' में बिना घरके होना और साथ ही निर्धन होना जुर्म है। आज जिप्सियों*के समान इधर-उधर घूमनेवालोंको ढूंढ़ ढूंढ़कर उनका शिकार किया जाता है। कोई बाजाब्ता घर न होना वा जो उससे भी ज्यादह बुरी बात है, सर रखनेके लिये कोई जगह न होना, आजकल शककी बातें गिनी जाती हैं। हम अपने बाहरके मकानों और घास-फूस रखनेके दालानोंतकको इन्सानके बेटेके लिये बन्द कर रखते हैं और इसीलिये हमारे पास इन्सानका बेटा कभी नहीं आता (हज़रत ईसाकी तरफ़ इशारा है)। और फिर भी मनुष्यकी उन्नतिमें एक जमाना था और एक अवस्था थी जबकि सब ही खानाबदोशीकी हालतमें रहते थे; और किसी एक जगह घर बनाकर रहनेवाला उस समय मुजरिम करार दिया जाता था। उसकी खड़ी खेती जला दी जाती थी और उसके मवेशी खोलकर दूर हाँक दिये जाते थे। कहा जाता था—"तमाम मनुष्योंकी शिकार खेलनेकी जमीनको परिमित कर देने वा मैदानोंकी आजाद जिन्दगीको अपनी गंदी खेतीके जरिये खराब करनेका तुम्हें क्या हक है?"

विवाह-सम्बन्धके और उससे तआल्लुक रखनेवाले सदाचारके अनेक ही तरहके रिवाज इतिहासमें मिलते हैं जिनमेंसे कोई कोई काफी बदनाम हैं। ऐसा मालूम होता है कि सार्वजनिक राय इस विषयमें सब ही तरहके पहलुओं और आदर्शोंमेंसे होकर निकल चुकी है और फिर भी कभी कोई अन्त दिखाई नहीं देता। हालकी खोजसे मालूम हुआ है कि शुरू जमानेके मनुष्य-समाजोंमें जिन जिन नजदीकी रिश्तेवालोंमें

* एक पुरानी खानाबदोश कौम जो किसी समय एशियासे यूरोप गई थी और जिसके कोई कोई आदमी कहीं कहीं यूरोपमें अब भी मिलते हैं।—अ०।

आपसमें शादियां होसकती थीं अथवा जिन जिनमें शादी होना मना था उनके रूप बहुत ही भिन्न भिन्न हैं—यहांतक कि कहीं कहीं सगे भाई और बहनमें भी विवाह होसकता था, और जायज समझा जाता था। आजकल इस तरहका सम्बन्ध अमानुषिक और खिलाफ़ क़ुदरत समझा जायेगा*। एक कौममें अथवा एक जमानेमें एक स्त्रीके अनेक पतियोंका रिवाज मिलता है, दूसरे जमानेमें अथवा दूसरी कौममें एक पुरुषकी अनेक पत्नियोंका रिवाज़ पाया जाता है। मध्य अफरीकामें आज दिनतक जातिका सरदार मेहमान नवाजीके तौरपर अपनी बीबीको आपके पास भेज देता है, हिन्दुस्तानमें देशी राजा अपने बेतकल्लुफ़से बेतकल्लुफ़ मेहमानसे भी उसे दूर छिपाकर रखता है। जापानियोंमें सार्वजनिक राय अच्छेसे अच्छे कुलोंकी जवान लड़कियोंको विवाह होनेसे पहलेतक अन्य पुरुषोंके साथ सम्बन्ध रखनेमें बिल्कुल आजाद करार देती है, पैरिसमें इसके खिलाफ शादीके बाद स्त्रियोंको इस विषयमें आजाद समझा जाता है। प्राचीन यूनान और प्राचीन रोममें दो-चार चमकती हुई मिसालोंको छोड़कर मालूम होता है कि विवाह एक बहुत ही नीरस चीज होती थी, अधिकतर केवल सुविधाके लिये और घरका प्रबन्ध रखनेके लिये विवाह किया जाता था, बीबीको एक प्रकारकी नौकरानीकी तरह समझा जाता था और पति और पत्नीके सम्बन्धमें किसी तरहके आदर्शकी कोई बात ही न थी। पुरुषोंका असली वीरोचित प्रेम घरसे बाहर

* तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाई और बहनमें भी इस तरहका स्थाई और गहरा प्रेम होसकता है। बार बार नजदीकके रिश्ते-दारोंमें विवाह होनेसे औलादकी तन्दुरुस्तीका जो खतरा है उसका खास कारण यह मालूम होता है कि मा और बाप, दोनोंमें जो (पतृक) बीमा-रियां हैं वे और ज्यादह बढ़ जाती हैं। किन्तु एक ऐसे 'समाज'में, जो सभ्यता-युगकी बीमारियोंसे आजाद था, इस तरहका खतरा बहुत कम रहा होगा।

किसी दूसरी ओरको जाता था। इन आजाद औरतों (यानी वेश्याओं) मेंसे,जिन्हें 'हेताइराइ' कहा जाता था,उच्चतर श्रेणीकी वे मानी जाती थीं जो अपने प्रेमको एक आध्यात्मिक रंग प्रदान कर देती थीं, अर्थात् उसमें एक रूहानी जादू पैदा कर देती थीं। ये स्त्रियां पढ़ी-लिखी होती थीं, 'समाज' इनके अस्तित्वको आदरके साथ स्वीकार करता था, और सम्भवतः अपने सबसे अच्छे जमानेमें मुल्कके नौजवानोंके ऊपर इनका प्रभाव स्वास्थ्यजनक और उन नौजवानोंमें विवेक उत्पन्न करनेवाला होता था। हकीम सुकरात* ने वेश्या थिओदोताके साथ जिस आदर और सत्कारका व्यवहार किया और उसके प्रेमियोंके विषयमें उसे जो सलाह दी कि 'तुम्हें गुस्ताख लोगोंको अपने यहां नहीं आने देना चाहिये और जब कभी तुम्हारे प्रेमी किसी गौरवके कामको करनेमें सफलता प्राप्त करें तो तुम्हें बड़ी खुशी मनानी चाहिये'—इस सबसे हमारे कथनकी सचाई साबित होती है। यूनानी इतिहासमें ऐस्पेसियाके केवल नामसे ही पूरी तरह साबित है कि कभी कभी इन वेश्याओंका प्रभाव बहुत ही जबरदस्त पड़ता था; और यदि हकीम अफलातून (Plato) ने अपने 'संग्रह' (Symposium) में वेश्या दिओतिमाके शब्दोंको ठीक ठीक बयान किया है तो, मानव-प्रेम तथा ईश्वरीय प्रेमके विषयमें दिओतिमाका उपदेश शायद उन उच्चसे उच्च और गम्भीरसे गम्भीर उपदेशोंमेंसे है जो कभी भी संसारको दिये गये हों।

* हजरत ईसाके जन्मसे चार-पांच सौ साल पेश्तर यूनान (ग्रीस) में तीन बड़े विद्वान् और दार्शनिक हुए हैं जिनके दार्शनिक ग्रन्थोंकी आज दिनतक संसारभरमें जबरदस्त कदरकी जाती है। पहला सुकरात (Socrates), दूसरा सुकरातका शागिर्द अफलातून (Plato), तीसरा अफलातूनका शागिर्द अरस्तु (Aristotle). अरस्तु सिकन्दर आजमका गुरु था।

कुछ समय बाद जब उत्तरकी जङ्गली जातियोंने यूरोपपर हमला किया तो उनके साथ साथ स्त्री और पुरुषके सम्बन्धका एक नया आदर्श यूरोपमें आया, और पहलेकी निस्बत पत्नीको पतिके साथ अधिक बराबरीकी पदवी मिलने लगी। किन्तु फिर भी पुरुषके प्रेमका वीररस अधिकतर विवाहित जीवनसे बाहरकी ओर ही प्रवाह करता रहा, और मैं समझता हूं कि यह विरोचित प्रेम-रस उस बीचके जमानेमें दो मुख्य शकलोंमें जाहिर होता था—एक जिसे 'शिवेलरी' कहते थे अर्थात् केवल 'स्त्रीमात्र' के लिये आदर्श निष्ठा दर्शाना; और दूसरे 'मिन्सट्रेल्सी' जिसका बिल्कुल अलग ही अर्थात् व्यक्तिगत और भावनापूर्ण रंग था—जिसमें एक प्रेमी होता था और दूसरी उसकी प्रिया (जो अधिकतर दूसरेकी बीबी होती थी) और जिसमें रातकी गायन-मण्डलियां, गुप्त प्रेम इत्यादि होते थे। किन्तु 'शिवेलरी' और 'मिन्सट्रेल्सी', दोनोंमें कुछ ऐसी ऐसी नई बातें थी जिनसे पहलेका समाज यानी रोम और यूनानके जमानेका समाज अच्छी तरह परिचित न था।

अन्तको आजकलके जमानेमें एक पति और एक पत्नीका स्थाई सम्बन्ध सर्वोत्तम समझा जाने लगा—अर्थात् पुरुष और स्त्रीके दरमियान बराबरके और आजीवन स्नेहका वह सुन्दर आदर्श कायम हुआ जो इस जीवनमें संततिरूप फल प्रदान करता है और जो मृत्युके बाद भी जारी रहनेकी आशा दिलाता है। यह सम्बन्ध ही आज वीरोचित प्रेम-रस-प्रधान साहित्यका महान् विषय है और हजारों उपन्यासों तथा कविताओंका अन्तिम ध्येय है। किन्तु इस सबके होते हुए भी आजदिन ही, जबकि सदियोंके झगड़ेके बाद यह आदर्श एक बार कायम हुआ है, और खासकर उन कौमोंमें जो इस समय 'सभ्यता' की अग्रगामिनी हैं—हम इस सम्बन्धमें पूरी आजादीके असूलका अत्यन्त सफलताके साथ प्रचार होते हुए पाते हैं, और बहुत

सम्भव मालूम होता है कि भविष्यमें 'सम्मिलित सामाजिक जीवन' के कायम होनेके साथ साथ कुटुम्बका बन्धन कमजोर होजावे और विवाह-सम्बन्धी पातिव्रत अथवा पत्नीव्रतके पालनमें कुछ ढीलापन आजावे।

यदि यूनानियोंका जमाना जोकि अपने ढंगपर भी और मनुष्यकी उन्नतिके जो जो फल उसने पैदा किये उनकी दृष्टिसे भी एक बड़ा शानदार जमाना था, विवाह-सम्बन्धको इतने ऊँचे दर्जेकी चीज न मानता था तो इसकी एक दर्जेतक यह भी वजह थी कि उस जमानेकी आदर्श भावना, जिसने कि और सब भावनाओंसे ज्यादह उस समयके लोगोंके हृदयोंको प्रोत्साहित किया, साहचर्य अर्थात् पुरुष पुरुषमें मित्रताकी भावना थी जिसे वे लोग बढ़ाकर प्रेमकी अवस्थातक लेगये थे। यूनानी इतिहासके प्रारम्भमें ही हारमोदियस और अरस्तोजितौनकी दो शकलें हमें इस भावनाके नमूनोंके तौरपर खड़ी हुई दिखाई देती हैं, और इस भावनाका फल हुआ (जैसाकि हकीम अफलातून सदा प्रतिपादन करता रहा कि इस भावनाका स्वाभाविक परिणाम होना चाहिये) हारमोदियस और अरस्तोजितौन दोनोंका मिलकर देशके कल्याणके लिये अपना आत्म-समर्पण कर देना। थीबिस नगरके नामसे मशहूर 'वीर दल' (Thiban legion) अर्थात् वह "पवित्र चक्र" जिसमें कोई मनुष्य बिना अपने प्रेमीको साथ लिये दाखिल न होसकता था—और जिसके विषयमें कहा जाता है कि चिरौनियाकी लड़ाईमें कटकर खतम होजानेसे पहले बराबर जबतक वह दल रहा, अजेय रहा—इस बातको साबित करता है कि इस विशेष भावनाको और 'समाज' के अन्दर उसके स्थानको कितने खुले तौरपर स्वीकार किया जाता था। इस भावनाके उस जमानेमें सार्वजनिक होनेका सबूत और इस बातका सबूत कि यूनानियोंके दिमागपर उसने कितना अधिक गहरा असर डाला था, इस घटनासे भी मिलता

है कि प्रेमके ऊपर, रूहानी पहलू लिये हुए, उस जमानेके ग्रन्थके ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें इस तरहके प्रेमके सिवा किसी दूसरी तरहके प्रेमका कहीं जिकर ही नहीं आता, और साथ ही प्राचीन यूनानी मूर्त्ति-निर्माणके उस आलीशान संग्रहसे भी इन बातोंका सबूत मिलता है जिनसे यह साफ जाहिर है कि अधिकतर यही विशेष भावना उस मूर्त्ति-निर्माणकी तहमें काम करती थी। सच यह है कि यदि हम इस एक भावनाको अलग कर दें तो संसारके इतिहासका सबसे अद्भुत 'समाज' यानी प्राचीन यूनानी 'समाज' और उसके बड़ेसे बड़े महापुरुषोंपर न हम ठीक ठीक विचार कर सकते हैं और न उन्हें समझ सकते हैं; तथापि आजकलकी दुनिया अव्वल तो इस भावनाको भावना मंजूर ही नहीं करती और यदि मंजूर भी करती है तो अधिकतर केवल उसे निन्दनीय ठहराती है *।

और भी उदाहरण इस बातको साबित करनेके लिये दिये जासकते हैं कि एक जमानेसे दूसरे जमानेमें सदाचारके विविध प्रश्नोंपर लोगोंके विचार कितने भिन्न भिन्न प्रकारके रहे हैं— जैसे कि सूद लेनेके विषयमें, जादूके विषयमें, आत्म-हत्याके विषयमें, बालहत्याके विषयमें, इत्यादि। सब देख-भालकर हमें इस बातका अभिमान है (और मैं मानता हूं ठीक भी है) कि मोटे तौरपर मनुष्य-जातिने खासी उन्नति की है; तथापि हमें

* आजकलके लेखकोंने इस प्रेमके केवल जिस्मानी पहलूका खयाल करते हुए (और निस्सन्देह जिस तरह अन्य सब सूरतोंमें वैसे ही इस सूरतमें भी जिस्मानी पहलूको रूप देने और उसे पक्का करनेके लिये जरूरी है), उस अश्लीलताके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई है जोकि, मिसालके तौरपर मारटियल (४३-१०४ रोमका एक कवि) के दिनोंमें, इस प्रेमने गिरकर धारण कर ली थी; किन्तु उस वीरता-पूर्ण स्नेहके गम्भीर मतलबकी ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। परन्तु यहां इस समय हमारा सम्बन्ध आदर्शोंसे है, न कि उनके भ्रष्ट अथवा पतित रूपोंसे।

मालूम है कि आज दिन असभ्यसे असभ्य प्राचीन जंगली जाति-के लोग भी हमारी उस 'सभ्यता' को देखकर अवश्य कपकपा उठें जिसकी सार्वजनिक राय इस बातकी इजाज़त देती है कि अमीर लोग अपने धनमें पड़े लोटते रहें उसी समय जबकि गरीबोंको बाजाब्ता और लगातार भूखे पेट रहना पड़ता हो; और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि जिन्दा जानवरोंकी चीर-फाड़के विषयमें—जिसे आम तौरपर हमारे पढ़े-लिखे लोग जायज करार देते हैं (यद्यपि बेपढ़े लोगोंके अधिक तन्दुरुस्त भाव उसके खिलाफ हैं)—प्राचीन मिश्रके लोग अव्वल तो इस बातका विश्वास ही न करते कि कहींपर भी इस तरहका रिवाज हो सकता है और यदि विश्वास कर भी लेते तो अत्यन्त घृणितसे घृणित जुर्मोंमें उसकी गणना करते *।

किन्तु सदाचार अथवा पाप-पुण्यके विषयमें मनुष्य-समाजके विचार न केवल एक युगसे दूसरे युगमें और एक कौमसे दूसरी कौममें ही बदलते रहते हैं, बल्कि उतनी ही ध्यान देने-योग्य दूसरी बात यह है कि एक ही जमाने और एक ही समाजकी एक श्रेणीके लोगों और दूसरी श्रेणीके लोगोंके सदाचार-सम्बन्धी विचारोंमें भी असाधारण फरक पड़ जाता है। यदि जमींदार लोग शिकारकी चोरी करनेवालेको मुजरिम समझते हैं तो, जैसा हम अभी ऊपर संकेत कर चुके हैं, शिकार-की चोरी करनेवाला जमींदारको एक ऐसा स्वार्थी और बद-माश समझता है जिसने कि किसी तरह पुलीसको अपनी तरफ कर रखा है। यदि वह इज्जतदार मनुष्य, जिसने कम्पनियों वगैरहमें हिस्से लेरखे हैं और जो अपने हिस्सोंके मुनाफोंपर बैठे बैठे तहजीब और इज्जतके साथ जिन्दगी बसर करता है, मजदूरों और हौलीके जानेवालोंको बदतरीका या उच्छृङ्खल कहकर

* मिश्रकी सभ्यताकी बादकी सदियोंमें यह रिवाज जाहिरा वहां भी पड़ गया था और जायज समझा जाता था।

टाल देता है तो मजदूर लोग भी उस हिस्सोंके मालिकको नीच और चोर कहकर उससे नफरत करते हैं। और कुछ भी हो, यह कह देना आसान काम नहीं है कि इन दोनोंमेंसे कौन ठीक है। इन भेदोंको यह समझकर टाल देना बेमाइने है कि राष्ट्रके अन्दर एक श्रेणीके लोगोंने ही सदाचारका ठेका लेरखा है और दूसरी श्रेणियोंके लोग चूंकि उन गुणोंको प्राप्त नहीं कर सकते इसलिये उनका केवल ठट्ठा उड़ाते हैं; साफ जाहिर है कि बात यह नहीं है। आम तौरपर सब जानते हैं और निस्सन्देह यह एक ऐसी सचाई है जिसे कोई झूठा साबित नहीं कर सकता कि प्रत्येक श्रेणीके अन्दर—चाहे दूसरी श्रेणीके लोग उस श्रेणीवालोंको कितना ही पापी या पतित क्यों न समझते हों—एक बहुत बड़ा हिस्सा उदार, शरीफ और स्वार्थत्यागी लोगोंका होता है। नतीजा यह कि इस तरहकी किसी एक श्रेणीके लोगोंकी सार्वजनिक राय, चाहे वह दूसरी श्रेणीके लोगोंकी सार्वजनिक रायसे कितनी भी भिन्न क्यों न हो, कमसे कम ऊपरकी युक्तिके अनुसार निष्प्रमाण नहीं समझी जासकती। इस क्षण भी बहुतसे पादरी (Clergymen) ऐसे मौजूद हैं जो आदर्शरूप हैं और अपनी भेड़ोंके सच्चे निगहबान हैं, यद्यपि समाजके अन्दर एक बहुत बड़ी तादाद ऐसे लोगोंकी है, और यह तादाद बराबर बढ़ती जाती है, जोकि सब पादरियों वा पुरोहितोंको भेड़की खाल पहरे हुए एक प्रकारके भेड़िये समझते हैं और जो अपनी रायके पक्के हैं। आम तौरपर इस तरहके आदमी भी मिलते हैं जिनका कि पेशा चोरी है किन्तु जो हद दर्जेके दयावान और उदारचित्त हैं, और जो सदा अपने किसी साथीको आपत्तिमें देखकर उसकी सहायताके लिये अपनी आखिरी कौड़ीतक देदेनेको तैयार रहते हैं। इस तरहकी स्त्रियां भी आम तौरपर मिलती हैं जोकि प्रचलित सदाचारकी सीमासे बाहर हैं किन्तु जिनके अन्दर

जबरदस्त धार्मिक भाव पाये जाते हैं, और जो नास्तिकोंको वास्तवमें बुरे आदमी समझती हैं। ऐसे ऐसे धनाढ्य वा उच्च कुलोंके लोग भी मिलते हैं जिनके अन्दर वैसी ही उद्यमशीलता पाई जाती है जैसीकि पत्थर खोदनेवाले मजदूरमें। ऐसे ऐसे हुण्डियोंके मालिक और गोल कमरोंमें लोट लगानेवाले भी मिलते हैं जो उतनी ही वीरता वा उतना ही स्वार्थत्याग दिखला सकते हैं जितना कि बहुतसे खानोंमें काम करनेवाले वा लोहेका काम करनेवाले मजदूर। तथापि ऊपरकी इन तमाम अलग अलग श्रेणियोंके अपने अपने अलग अलग सदाचार-शास्त्र वा सदाचार-नियम हैं जो थोड़े वा बहुत दर्जेतक एक दूसरेसे भिन्न हैं, और फिर वही सवाल हमारे सामने आजाता है कि इन सबमेंसे कौनसा सदाचार-शास्त्र वा कौनसे नियम अथवा कौनसी विचार-प्रणाली सच्ची और स्थाई है?

एक बात हमारे जवाबमें यह कही जासकती है कि यद्यपि एक ही 'समाज' में और एक ही समयमें बहुतसी भिन्न भिन्न सदाचार-प्रणालियां मौजूद होसकती हैं तथापि इनमेंसे केवल एक ही प्रणाली वास्तवमें माननेके योग्य है—यानी वह प्रणाली जो उस समय देशके कानूनके रूपमें आगई है—और दूसरी सब प्रणालियां इसीलिये रद्द कर दीगईं क्योंकि वे माननेके योग्य न थीं। किन्तु जब हम इस 'कानून' के मामलेपर विचार करने लगते हैं तो मालूम होता है कि यह युक्ति भी ठहर नहीं सकती। हर जमानेमें 'कानून' देशकी उस श्रेणीकी विचार-प्रणालीके अनुसार बनाये जाते हैं जो उस समयके लिए बाकी सब श्रेणियोंपर हावी हो और उनपर शासन करती हो। निस्सन्देह ये कानून धीरे धीरे बढ़ते हैं और धीरे धीरे ही इनमें परिवर्तन भी होते रहते हैं; किन्तु सदा शासक-श्रेणीके लोग ही उनमें इजाफे करते हैं और वे ही सदा उनपर अमल दरामद करते हैं। आज जिस श्रेणीके लोग समाजके ऊपर हावी

हैं उनकी सदाचार-प्रणालीको थोड़ेसेमें जाहिर करनेके लिये शायद सबसे उपयुक्त शब्द हैं 'बाइज्जत होना'(Respectability) यानी 'बा-इज्जत होना' ही इन लोगोंके लिये सदाचार वा धर्मका सर्वोच्च आदर्श है। इसपर यदि यह प्रश्न किया जावे कि इस सदाचार-प्रणालीने बहुत दर्जेतक दूसरी सब श्रेणियोंकी सदाचार-प्रणालियोंको दबाकर 'कानून'को अपने पक्षमें क्योंकर कर लिया (यहांतक कि जो श्रेणियां इस प्रणालीके अनुसार नहीं चलतीं, उन्हें यह प्रणाली आम तौरपर मुजरिम या जरायमपेशा श्रेणियां करार देती है), तो केवल एक उत्तर हो सकता है— इस तरहपर, क्योंकि यह प्रणाली उन श्रेणियोंकी सदाचार-प्रणाली है जिनके हाथोंमें इस समय ताकत है। 'बाइज्जत होना' उन लोगोंका धर्मशास्त्र है जिनके पास दौलत और हुकूमत है, और चूंकि इन्हींकी कलमें और इन्हींकी जबानें भी खूब चलती हैं, इसलिये आजकलके साहित्य और समाचारपत्रोंका भी यही मयार रह गया है। यह जरूरी नहीं कि यह मयार दूसरे मयारोंसे अच्छा हो, किन्तु यह वह मयार है जो इत्तफाकसे इस समय दूसरोंपर हावी है। यह सदाचार-प्रणाली उन श्रेणियोंकी सदाचार-प्रणाली है जिनका अधिकतर आजकलके समाजमें प्रभाव है; यह प्रणाली मध्यश्रेणीके लोगों और विशेषकर व्यापारियों (Bourgeoisie) की प्रणाली है। यह सदाचार-प्रणाली यूरोपियन भूतकालकी उस 'फ्यूडल' सदाचार-प्रणालीसे भिन्न है जो वीर योद्धाओं (Knightly classes)और 'शिवेलरी' के उस समयकी सदाचार-प्रणाली थी जबकि यूरोपमें बड़े बड़े भूमिपतियोंका जमाना था; यह प्रणाली भविष्यकी उस 'लोक-सत्तात्मक' प्रणालीसे भी भिन्न है जो भ्रातृभाव और मनुष्यमात्रकी समताके असूलोंपर कायम होगी; यह प्रणाली 'व्यापार-युग'की प्रणाली है, और और प्रणालियोंसे उसका भेद जतानेवाला उसका खास चिन्ह है—'सम्पत्ति'।

आजकलके 'बा-इज्जत' होनेका अर्थ 'सम्पत्तिधारी' होना है। सम्पत्ति ही आजकलकी इज्जत है। धनी होनेसे बढ़कर इज्जतकी कोई दूसरी बात नहीं। "कानून" भी इसीका समर्थन करता है; हरएक चीज धनियोंके पक्षमें है; अदालतोंका न्याय इतना कीमती है कि गरीब लोग उसे प्राप्त नहीं कर सकते। मनुष्य-शरीरके खिलाफ कोई जुर्म करना इतना बड़ा गुनाह नहीं है जितनाकि मनुष्यकी सम्पत्तिके खिलाफ कोई जुर्म करना। आप अपनी बीबीको पीटते पीटते अधमरा भी कर दें, तो केवल तीन महीनेकी सजा मिले; लेकिन अगर आप किसीका खरगोश चुरा लें तो कई सालके लिये "भेज दिये जावें!" इसी तरह 'बेंजों' वा शेयर-बाजारोंमें हजारोंका सट्टा खेलना बड़ी 'इज्जत' की बात है, किन्तु गलियोंमें दो दो पैसोंके लिये कौड़ियां फेंकना नीच काम है और उसमें पुलीसकी दस्त-अन्दाजी जरूरी है! यह बात तो अब हर किसीकी जवानपर है कि ऊंची श्रेणीका एक धनी किन्तु पक्का बेईमान मनुष्य समाजमें बड़े आदरके साथ बैठाया जाता है परन्तु उसी समाजमें एक अधिक ईमान्दार किन्तु कोटमें पेवन्द लगे हुए भाईको हरगिज स्थान नहीं मिल सकता। वाल्ट ह्विटमैन*ने बड़े फफते हुए शब्दोंमें कहा है—"बड़े बड़े भूमिपतियों और खानदानी लोगोंके, जिनमें लार्ड लोग, रानियां और दरबारी आदिक गिने जाते हैं, अत्यन्त नारकीसे नारकी पापों और नितान्त स्वार्थमय नीचताओंको और उनके खास और आम हर तरहके गुनाहोंको बाहरी चमक-दमकसे खूब ढक दिया जाता है, क्योंकि ये लोग बड़े अच्छे अच्छे कपड़े पहरते हैं और ऊपरसे सुन्दर दिखाई देते हैं! किन्तु आम लोग अर्थात् गरीब लोग न तो उतनी शुस्ता जबान बोलते हैं, और न उतने

* १८१९—१८९२, अमरीकाका एक जबरदस्त विद्वान्, महाकवि, ग्रन्थकर्त्ता, योद्धा और तत्त्ववेत्ता—अ०।

साफ सुथरे रहते हैं, और उनके गुनाह भी सूखे हुए और नीच घरोंकी पदाइश हैं !”

इस प्रकार हमें मालूम हुआ कि जैसे आजकलके इंगलैंडमें वैसे ही आजकलकी किसी भी कौममें यद्यपि अनेक श्रेणीके लोग मौजूद हैं और उसीके अनुसार सार्वजनिक राय और सदाचारकी अलग अलग अनेक ही प्रणालियां भी हैं; तथापि इन सब प्रणालियोंमेंसे केवल एक अर्थात् शासक-श्रेणीकी प्रणाली ही जिसका मुख्य ध्येय सम्पत्ति है और सब प्रणालियों-के ऊपर जोरोंके साथ हावी है। हमारे पास यह मान लेनेके लिये भी काफी गुञ्जाइश है किसी भी कौममें जिस समयसे कि उसमें लोगोंकी साफ साफ अलग अलग श्रेणियां बन जाती हैं यही हालत होती है और यही होती रही है। जिस जमानेमें कि व्यापारका जोर है, उसमें व्यापारियों अर्थात् धनप्रेमी लोगों-की सदाचार-प्रणाली हावी रहती है; जो जमाना अधिकतर युद्धोंका जमाना होता है उसमें योद्धा-श्रेणीके लोगोंकी सदाचार प्रणाली चलती है; और जिस युगमें कि मजहबका जोर होता है उसमें पुरोहित-श्रेणीके लोगोंकी चलाई हुई प्रणाली मानी जाती है; इत्यादि। इसके अतिरिक्त उस शुरूके जमानेमें भी जब-कि अभी मनुष्य-जातियोंके अन्दर अलग अलग श्रेणियां पैदा नहीं हुई होतीं, जबकि लोग अभी प्रारम्भिक और सम्मिलित जातीय अवस्थामें ही होते हैं, उस समय भी एक कौम और दूसरी कौमके रिवाजों और उनके यहांके सार्वजनिक विचारोंमें हद दर्जेकी भिन्नता पाई जाती है।

इन सब भिन्नताओंसे (और अभी इनसे कहीं अधिक भिन्नताओंका मैंने जिकर भी नहीं किया तथापि इन सबसे) हम क्या नतीजा निकालें? एक ही तरहके कामको, न केवल अलग अलग जमानों वा दुनियाके अलग अलग हिस्सोंके अलग अलग मनुष्य-समाजोंमें ही बल्कि एक ही समयमें एक ही समाजकी

अलग अलग श्रेणियोंमें भी एकमें आदरणीय समझा जाता है और दूसरीमें उसी कामको निन्दनीय ठहराया जाता है। क्या हम इससे यह नतीजा निकालें कि कोई ऐसी स्थाई सदाचार-प्रणाली वा पाप-पुण्यकी कसौटी हो ही नहीं सकती जो प्रत्येक कालके लिये मान्य हो; अथवा क्या हम अब भी यही समझें कि इस तरहकी स्थाई प्रणाली वा कसौटी है जरूर किन्तु अभीतक उसकी खोजमें मनुष्य-समाजको सफलता प्राप्त नहीं हुई ?

मेरे खयालसे तो यह साफ जाहिर है कि कमसे कम मनुष्यके तरह तरहके कामोंको कसकर देख लेनेके लिये तो कोई स्थाई सदाचार-कसौटी वा स्थाई धर्म-शास्त्र नहीं होसकता। मालूम होता है कि खास खास कामोंको किसी समयमें इसलिये अच्छा समझा जाने लगा क्योंकि उस समयके समाजके लिये वे काम हितकर थे वा हितकर समझे जाते थे; और इसके खिलाफ खास खास तरहके कामोंको इसलिये बुरा समझा जाने लगा क्योंकि वे काम उस समयके समाजके लिये अहितकर थे अथवा अहितकर समझे जाते थे। किन्तु यह भी साफ जाहिर है कि जब इस प्रकार एक बार किसी खास कामको बुरा वा अच्छा कहा जाने लगता है तो उसके बाद मनुष्यकी सामाजिक उन्नतिके क्रममें जबकि उस खास कामसे समाजको हानि पहुंचना वा उससे समाजका हित सिद्ध होना बन्द होजाता है तो उसके बहुत दिनों बादतक भी वह 'बुरा' वा 'अच्छा' नाम उस कामके साथ बराबर लगा रहता है; यहांतक कि उस जातिके विचारवान लोग इस असंगतताको महसूस भी करने लगते हैं और उसके भी बहुत दिनों बादतक वह नाम उस कार्यके साथ जुड़ा रहता है। इस प्रकार थोड़े दिनोंमें आम लोगोंके विचारोंमें इन दो बातोंके दरमियान बड़ा गोलमाल पैदा होजाता है कि किन किन बातोंको पुरानी प्रणालीके अनुसार अच्छा वा बुरा बताया जाता है और कौन कौनसी बातें कौमके लिये वास्तवमें

उस समय अच्छी वा बुरी हैं। कौमके जो अधिक साहसी वीर इन दोनों बातोंको अलग अलग करनेका प्रयत्न करते हैं जिन्हें समाजसुधारक आदि कहा जाता है उन्हें प्रायः इस गोलमालका प्रायश्चित्त अपने कष्टोंद्वारा वा स्वयं शहीद होकर करना पड़ता है। दूसरे यह बात भी काफी साफ तौरपर जाहिर है कि ज्यों ज्यों कौमी जिन्दगीके हालात बदलते जावेंगे त्यों त्यों उस जिन्दगीके लिये हितकर और हानिकर कामोंमें भी स्वभावसे ही प्रायः अनन्त उलट-फेर होते रहेंगे। जो काम एक समयमें और एक प्रकारकी परिस्थितिमें हितकर है वही दूसरी हालतमें हानिकर होजाता है। परिणाम यह, कि किसी ऐसे स्थाई वा हर समय मानने योग्य धर्मशास्त्र वा ऐसी सदाचार-प्रणालीकी आशा नहीं की जासकती जिससे खास खास कामोंके भले वा बुरे होनेका निर्णय होसके; कमसे कम वे लोग इसकी आशा हरगिज नहीं कर सकते जो सदाचारको सामाजिक अनुभवके आधारपर कायम करते हैं; और वास्तवमें इस तरहकी कोई स्थाई सदाचार-प्रणाली कहीं है भी नहीं।

अब रहे वे लोग जो सदाचार वा पाप-पुण्यका निर्णय अपनी आत्मा यानी अपने अन्तःकरणकी आवाजपर छोड़ते हैं, निस्सन्देह ऐसे लोगोंमेंसे जिन्होंने कुछ भी इस विषयपर विचार किया है उनमें शायद ही कोई होगा जो यह कहनेको तय्यार हो कि कोई भी काम स्वयं (अर्थात् बिना परिस्थितिका विचार किये) अच्छा वा बुरा होसकता है। यद्यपि बाह्य दृष्टिसे देखनेमें कभी कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है, किन्तु जब ध्यानपूर्वक विचार किया जावे तो अधिकांश लोग आम तौरपर इस बातमें सहमत मालूम होते हैं कि किसी कामकी अच्छाई वा बुराई उस काममें नहीं होती बल्कि उस नियत वा उस उद्देश्यमें होती है जिस नियत वा जिस उद्देश्यसे वह काम किया जावे। (कहते हैं कि) मारना गुनाह नहीं है, किन्तु हिंसा वा हत्याके इरादेसे

मारना गुनाह है। किसी दूसरे मनुष्यके बटुवेमेंसे रुपये निकाल लेना स्वयं न अच्छा है न बुरा—अच्छाई वा बुराई इस बातपर निर्भर है कि रुपये निकालनेके लिये इजाजत ले लीगई थी वा नहीं अथवा इस बातपर कि उन दोनों व्यक्तियोंमें आपसका सम्बन्ध किस प्रकारका है ; इत्यादि। जाहिर है कि कोई काम ऐसा नहीं होसकता जो किसी खास स्थितिमें जायज न करार दिया जासके और यह भी उतना ही साफ जाहिर है कि कोई काममात्र ऐसा नहीं होसकता जो दूसरी तरहकी किसी खास स्थितिमें नाजायज न होजावे। इसलिये यह कहना कि मनुष्यके काम पाप और पुण्यकी दो भिन्न भिन्न और स्थाई श्रेणियोंमें बट सकते हैं भ्रमात्मक है; कामोंमें इस तरहका कोई भेद नहीं है, केवल एक ऊपरी और अनस्थाई सार्वजनिक सामाजिक राय इस तरहका एक भेद रख देती है। तब सदाचार वा पाप-पुण्यकी परखका असली क्षेत्र कामोंमें नहीं, बल्कि उन आन्तरिक भावनाओंमें है जो कामोंके पीछे रहती हैं और जो उन कामोंके लिये मनुष्यको प्रेरित वा प्रोत्साहित करती हैं; और (कहा जाता है कि) इन भावनाओं (Passious) में पुण्यात्मक भावनाएं और पापात्मक भावनाएं, दो तरहकी भावनाएं सदाके लिये एक दूसरेसे भिन्न हैं।

यहांपर आकर हमने मनुष्यके बाहरी कामोंमें किसी स्थाई सदाचार-प्रणालीकी खोज करना छोड़ दिया, और यह समझकर छोड़ दिया कि कामोंकी निस्बत मनुष्यकी भावनाओंमें इस तरहकी प्रणालीके मिलनेकी हमें अधिक सम्भावना मालूम होती है। और मेरा खयाल है कि प्रायः सब ही इसमें सहमत होंगे कि अब हम ठीक दिशामें चल पड़े किन्तु इस दिशामें भी कठिनाइयां मौजूद हैं और काम इतना आसान नहीं है। यद्यपि, मोटे तरीकेपर मनुष्यके हृदयको कुछ भावनाएं ऐसी जरूर हैं जो दूसरी भावनाओंसे उच्चतर, श्रेष्ठतर और अधिक सम्मान-

नीय मालूम होती हैं, तथापि कोई ऐसी कड़ी रेखा खींच सकना जो एक श्रेणीकी भावनाओंको दूसरी श्रेणीकी भावनाओंसे अर्थात् पुण्यात्मक भावनाओंको पापात्मक भावनाओंसे बिलकुल पृथक कर सके हमें अत्यन्त दुष्कर ही नहीं बल्कि वास्तवमें असम्भव प्रतीत होता है। आम तौरपर हम दूरअन्देशी, फय्याजी, ब्रह्मचर्य, बड़ोंका आदर और साहस इन्हें अच्छी वा पुण्यात्मक भावनाओंमें—और इनके प्रतिकूल जैसे जल्दबाजी, कञ्जूसी, बदपरहेजी, गुस्ताखी और भीरुता इन्हें बुरी वा पापात्मक भावनाओंमें शुमार करते हैं ; तथापि मैं समझता हूं हम यह नहीं कह सकते कि दूरअन्देशी जल्दबाजीसे हर समय हर हालतमें अच्छी ही है, वा ब्रह्मचर्य बदपरहेजीसे अथवा आदर गुस्ताखीसे। कभी कभी ऐसी हालतें आजाती हैं जबकि दोनों गुणोंमेंसे समाजके अन्दर कम मान पानेवाले गुणकी सबसे ज्यादह जरूरत पड़ती है; और यदि इस ओर 'अति' वर्जनीय है तो दूसरी ओर भी 'अति' वर्जनीय है। आम तौरपर कहा जाता है कि साहसको खींचकर बेवकूफी वा हठधर्मीपनकी हालततक नहीं पहुंचा देना चाहिये, ब्रह्मचर्यको बढ़ाकर उस हदतक नहीं लेजाना चाहिये जिस हदतक कि पुराने जमानेके ईसाई महन्त (Monks) उसे खींच लेगये थे; बड़ोंके आदरकी भी एक हद है। सच तो यह है कि कभी कभी कम सम्मानित भावनाओंकी भी अधिक सम्मानित भावनाओंकी 'अति' से बचने और उनकी त्रुटियोंको दूर करनेके लिये जरूरत पड़ती ही है, और जिस चरित्रमें ये कम सम्मानित भावनाएं बिल्कुल न हों वह चरित्र ही अत्यन्त फीका और नीरस है, ठीक उसी तरह जिस तरह शरीरके अंगोंमें कम सम्मानित और अधिक सम्मानित दोनों तरहके अंग अपनी अपनी जगह जरूरी हैं और कम सम्मानित अंगोंको दुराया नहीं जासकता।

इसीलिये बहुतसे लेखकोंने, पुण्यात्मक और पापात्मक

भावनाओंके दरमियान एक पक्की रेखा खींचनेके प्रयत्नको छोड़कर, साहसके साथ यह प्रतिपादन किया है कि पुण्य और पाप, दोनोंकी अपनी अपनी जगह हैं और सच्ची निजात दोनोंके बीचसे एक स्वर्णमय माध्यम-मार्ग ग्रहण करनेमें है।

[यूनानियोंने इस सम्बन्धमें जिन शब्दोंका उपयोग किया है उनसे मालूम होता है कि वे लोग सम्पूर्ण चरित्र और सर्वथा निर्दोष चरित्र उसे समझते थे जिसमें मनुष्यकी अच्छी और बुरी सब शक्तियां सुन्दरता और मुनासबतके साथ मिली हुई हों]

प्लूटार्क* अपने "Essay on Moral Virtue" में लिखता है—

"इसलिये व्यावहारिक बुद्धिका काम यही है कि कुदरतका अनुसरण करते हुए हमारी भावनाओंको न उचितसे अधिक बढ़ने दे और न उचितसे कम रह जाने दे······इस प्रकार इन भावनाओंकी तरंगोंको मर्यादाके भीतर रखते हुए बुद्धि रूहके विवेकशून्य भागमें इस तरहकी सदाचार-सम्बन्धी आदतें पैदा कर देती है जोकि अत्यधिकता और अति न्यूनता, दोनोंके बीचका एक सुन्दर माध्यम होती हैं।"

मालूम होता है कि अंगरेजी शब्द "जेण्टिलमैन"के भी अर्थ किसी समयमें इसी प्रकारके लिये जाते थे। अन्य विद्वानोंके अलावा इमरसनका† भी यही मत है कि हर एक अवगुण केवल "किसी न किसी सद्गुणकी अत्यधिकता वा उसका बिगड़कर कड़ुआ रूप" होता है, और फिर आगे लिखता है कि, "इतिहासका सबसे पहला सबक यह है कि हर बुराईमेंसे कुछ न कुछ भलाई अवश्य निकलती है।"

---

* पहली सदी ईस्वीका एक विद्वान् जो यूनानमें पैदा हुआ और अधिकतर रोममें रहा। उसकी रची अनेक 'जीवनियां' साहित्यमें मशहूर हैं।

† १८०३–१८८२, अमरीकाका एक मशहूर विद्वान्, लेखक और दार्शनिक।

ऊपरके मतके अनुसार स्वयं भावनाओंको भला वा बुरा नहीं कहा जासकता, बल्कि भलाई या बुराई इस बातपर निर्भर है कि उन भावनाओंका किस तरह उपयोग किया जाता है और साथ ही विविध भावनाओंका एक दूसरेके साथ तथा बाहरकी परिस्थितिके साथ किस तरहका परस्पर सम्बन्ध रखा जाता है। जिस तरह कि कुछ पृष्ठ पहले हमने "कामों" के क्षेत्रको छोड़कर उन "भावनाओं"के अन्दर भलाई-बुराईकी कसौटीको ढूंढ़ना चाहा था जो कामोंके पीछे रहती है और उन्हें प्रेरित करती हैं, इसी तरह अब हम भावनाओंके क्षेत्रको भी छोड़कर इस कसौटीको उस शक्तिके अन्दर खोजना चाहते हैं जो भावनाओंके भी पीछे है और जो भावनाओंको उचित स्थान देती है। इसका मतलब यह है कि ठीक उसी दिशामें हम और आगे बढ़ें, और सम्भव है कि इससे हम किसी अधिक सन्तोषजनक नतीजेतक भी पहुंच सकें। किन्तु इसमें भी अनेक कठिनाइयां हैं; सबसे मुख्य कठिनाइयां ये हैं कि एक तो मनुष्य-स्वभावके इन अन्ततम प्रदेशोंकी चर्चा करनेमें हमारे अन्दर जरूरी तौरपर कुछ न कुछ अनिश्चितता रह ही जाती है और दूसरे यह कि इन प्रदेशोंके विषयमें हमारा ज्ञान भी अभी अत्यन्त कम और कच्चा है।

इन कारणोंसे और चूंकि यह विषय पेचीदा और कठिन है, मैं अपने पाठकोंसे प्रार्थना करूंगा कि वे चन्द मिनटके लिये और उन वजूहातपर गौर करें जिनसे यह जाहिर होता है कि वास्तवमें अच्छी भावनाओंको बुरी भावनाओंसे सदाके लिये पृथक कर सकना वैसा ही असम्भव है जैसा अच्छे कामोंको बुरे कामोंसे, और इसीलिये यदि हमें पाप-पुण्यकी कोई कसौटी ढूंढ़नी ही है तो, मजबूर होकर, हमें अपने स्वभावके किसी ज्यादह गहरे प्रदेशमें उसकी खोज करनी होगी।

हकीम अफलातून अपनी पुस्तक 'फेदरूस' (Phaedrus) के

अन्दर रूहके रूपकमें यद्यपि जाहिरा उन सब भावनाओंको जो मानव-रथको चलाती हैं दो श्रेणियोंमें तकसीम करता है, एक वे भावनाएं जो ऊपरको स्वर्गकी ओर जाती हैं और दूसरी जो नीचे पृथ्वीकी ओर जाती हैं—एक को वह सफेद घोड़ा कहता है और दूसरीको काला घोड़ा—तथापि वह यह नहीं कहता कि काले घोड़ेको मार डालना चाहिये वा उसे बरखास्त कर देना चाहिये, बल्कि केवल यह बताता है कि रथीको चाहिये कि काले और सफेद दोनों घोड़ोंको लगाम लगाकर अपने काबूमें रखे। इससे अफलातूनका यह मतलब मालूम होता है कि मनुष्यके अन्दर एक ऐसी शक्ति मौजूद है जो इन सब भावनाओंके पीछे और उनके ऊपर रहती है, और केवल उसीके नियंत्रणमें मनुष्य खैरियतके साथ रह सकता है। वास्तवमें, यदि वे भावनाएं हटा लीजावें जो अधिक उग्र वा तुन्द हैं वा जिन्हें अधिक दुनयावी बतलाया जाता है, तो मनुष्यकी आत्माके रथको खींचनेवाली आधी शक्ति जाती रहे। मिसालके तौरपर 'नफरत' समय समयपर शैतानी होसकती है, किन्तु आखिरकार नफरतकी सच्ची कदर इस बातमें है कि आप किस चीजसे नफरत करते हैं, अर्थात् इस बातमें कि उस भावनासे आप किस तरहका काम लेते हैं। 'गुस्सा' यद्यपि एक समय अमानुषिक हो-सकता है, तथापि दूसरे समय वही गुस्सा गौरवान्वित हो-सकता है। 'जिद' एक गोल कमरेके अन्दर बेजा होसकती है, किन्तु लड़ाईके मैदानमें, जबकि एक महत्वके स्थानको दुश्मनके पूरे वारके सामने बचाकर रखना हो, जिदकी उपयोगिता हाल-होमें मनुष्यपर खुल चुकी है और अब वह एक गुण माना जाता है। 'काम' यद्यपि अपने पतित रूपोंमें एक प्रकारका पागलपन और खौफनाक चीज है, तथापि अन्तमें जाकर इस वासनाको भी उसके ईश्वरीय साथी 'प्रेम' से पृथक नहीं किया जासकता। यह एक मशहूर बात है कि अधिक कोमल भावनाओंके ऊपर ही

अपनेको छोड़ देनेसे काम नहीं चल सकता; एक गालपर थप्पड़ मारनेवालेके अक्षरशः दूसरा गाल सामने कर देना केवल (महात्मा टालसटाय* मुझे क्षमा करेंगे) उसे दूसरा थप्पड़ लगानेका हौसला देना है, और जब कभी मनुष्य-समाज इतना परोपकाररत होजाता है कि हर एक आदमी कोयलोंका टीन उठा लानेके लिये दौड़ने लगता है, तो हमें यकीन होजाता है कि जरूर कुछ न कुछ गड़बड़ है। हमारा चित्त अपने यहांके 'जीवन-चरित्रों' के उन सफेद लीपे-पोते वीरोंसे प्रसन्न नहीं होता जिनमें गुण अनेक होते हैं किन्तु अवगुण कोई नहीं होते। हमारे दिलमें यह बात बैठी हुई है कि जिस मनुष्यमें कोई भी दोष न हो वह, कमसे कम, एक ऐसा अस्पष्ट, और रूखा प्राणी है जिससे हमारा बिल्कुल मनोरंजन नहीं होता, वा एक ऐसी तसवीर है जिसमें न रोशनी है और न साया—और जिस प्रचलित और अधि-धार्मिक ढंगसे मानव-चरित्रके दो भाग किये जाते हैं, एकमें सब गुण और दूसरेमें सब अवगुण (मानों अवगुणोंको फेंककर गुणोंको ग्रहण किया जासकता हो), वह ढंग हमें नाकाफी भी मालूम होता है और साथ ही झूठा भी मालूम होता है।

जो कोई भी मनुष्य-स्वभावको तत्वतः समझना वा जानना चाहे उसका काम (नामधारी) पुण्यों और (नामधारी) पापोंको एक दूसरेसे पृथक करना, अथवा काले और सफेद घोड़ोंको अलग अलग करना नहीं है, किन्तु उसका काम यह पता लगाना है कि इन दोनोंमें एकका दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—उसका काम मनुष्यके सम्पूर्ण चरित्रको देखना और उस चरित्रके

* १८२८—१९११, रूसका एक जगत्प्रसिद्ध विद्वान, लेखक और सुधारक, मानव-जातिका सच्चा प्रेमी और अहिंसाके सिद्धान्तका सच्चा माननेवाला। उसकी अनेक पुस्तकें मनुष्यके विचारोंमें एक क्रान्ति पैदा कर देनेवाली हैं।

विविध पहलुओं और हिस्सोंकी एक दूसरेपर निर्भरताको समझना है—उसका फर्ज इस बातका पता लगाना है कि वह कौनसी शक्ति है जो इस सम्पूर्ण चरित्रको 'एक' बनाये रखती है, जिसकी मौजूदगीमें और जिसके नियंत्रणमें आकर मनुष्य और उसके तमाम काम "ठीक" होजाते हैं, और जिसकी गैर-मौजूदगीमें (यदि उसका बिल्कुल मौजूद न होना वास्तवमें सम्भव हो तो) मनुष्य और उसके काम दोनों "गलत" हुए बिना नहीं रह सकते।

जिन्हें हम पाप, अवगुण वा दोष कहते हैं वे अक्सर किसी दूसरे गुणकी कमी वा परिमितततामात्र होते हैं; मिसालके तौर-पर, 'जुल्म' केवल इन्सानी हमदर्दीकी कमीका नाम है, 'पक्षपात' एक प्रकारकी नेत्रहीनता वा ठीक ठीक देख सकनेकी योग्यताकी कमी है; किन्तु किसी न किसी रूपमें ठीक ये कमियां वा ये त्रुटियां ही मनुष्यके इस संसारमें जन्म लेनेके लिये जरूरी शर्तें हैं। यदि हम कोई भी काम कर सकते हैं वा जीवित रह सकते हैं तो केवल इस प्रकारकी कमियों, त्रुटियों वा परिमितताओंके भीतर ही रहकर काम कर सकते हैं वा उनके भीतर ही जीसकते हैं। नदीके प्रवाहको चलानेके लिये कोई न कोई नालियां वा नहरें होनी जरूरी हैं अन्यथा जल चारों ओर निरुद्देश्य फैलकर अपने तईं नष्ट कर लेगा—और किसीकी भी पनचक्की उससे न चल सकेगी। एक आदमीका स्वभाव ऐसा है जिससे कोई खुश नहीं होसकता और जिसे कोई खुश नहीं कर सकता—जिन जिन बातोंमें वह दूसरोंके साथ सहानुभूति दर्शा सकता है वे बहुत ही थोड़ी और महदूद हैं—तथापि मनुष्य-जीवनमें अनेक ऐसे अवसर आते हैं (और हर मनुष्यको ऐसे अवसरोंका परिचय होना चाहिये) जबकि उस मनुष्यकी ही सबसे ज्यादह कीमत होती है जो सब किसी-को अपनेसे नाराज कर लेनेकी काबलीयत भी रखता है और

उसके लिये तैयार भी है; जबकि सबको नाखुश रखनेवाला एक कालीइल* अगणित मीठे मुंहवाले 'बेलामों' से ज्यादह फायदेका होता है।

इसके अतिरिक्त कभी कभी अवगुण इत्यादि एक प्रकारका कच्चा मसाला होते हैं जिस मसालेसे दूसरे गुण बनाये जाते हैं; और जिनके बिना एक अर्थमें वे गुण अस्तित्वमें ही न आसकते। मिसालके तौरपर, 'विषय-वासना' समस्त कलाकौशल (चित्रकारी, कविता इत्यादि) और उच्चतर भावनाओंकी तहमें मौजूद है। 'भीरुता' एक ऐसा दोष है जो प्रायः शीघ्र-चेतन और बढ़ी हुई कल्पना-शक्ति रखनेवाले स्वभावमें मिलता है। अक्खड़पन, मुंहफटपन, और चातुर्यहीनता कई खास तरहके 'सुधारकों' की बनावटमें इतने जरूरी हैं कि इनके बिना वे सुधारक 'सुधारक' ही नहीं होसकते। किन्तु आप क्या पसन्द करगे? क्या आप एक ऐसा खरगोश पसन्द करेंगे जिसके गायकेसे सींग हों? अथवा क्या आप ऐसा गधा चाहते हैं जिसका स्वभाव स्पेनियल कुत्तेकासा हो? 'सुधारक' को अपने अक्खड़पन और अपनी छेड़-छाड़की आदतको अपने अन्दरसे उखाड़कर नहीं फेंक देना है, किन्तु उसे यह देखना होगा कि वह अपने इन गुणोंका ठीक ठीक और उचित उपयोग करता है वा नहीं; ऐसे ही मनुष्यका काम अपनी विषय-वासनाको बाहर निकाल फेंकना नहीं है, वरन् उसे मनुष्योचित बनाना है, इत्यादि।

सुविख्यात इतिहास-लेखक लैकी‡ अपनी पुस्तक "History of Morals" में बतलाता है कि किस प्रकार समाजके अन्दर खास खास बुराइयां अनिवार्यरूपसे चरित्रके खास खास सद्गुणोंके साथ साथ चलती हैं। वह बेधड़क कहता है

* एक सुविख्यात अंग्रेज विद्वान्, लेखक और दार्शनिक।

‡ १८३८-१९०३

कि, "यदि आयरलैण्डके किसान विषय-भोगके सम्बन्धमें कम नेकचलन होते तो वे आजकलकी निस्बत बहुत ज्यादह खुशहाल होते।" और अपने इस कथनको वह इस प्रकार सच्चा साबित करता है कि उन लोगोंके छोटी उमरके विवाह जिनके कारण ही उनकी यह नेकचलनी मुमकिन होसकती है "उस कौमकी अदूरदर्शिताके अत्यन्त ज्वलंत प्रमाण हैं, और उनके उद्योग-धंधोंकी उन्नति और उनकी समृद्धिके मार्गमें एक अत्यन्त घातक रुकावट हैं।" इसी प्रकार वह कहता है कि जुआ खेलनेकी मेजपर वह धैर्य और शान्ति मनुष्यमें प्रकट होती हैं जो "उतने निर्दोष रूपमें किसी भी दूसरे काममें मुशकिलसे दिखाई देती हैं।"—इस सचाईको उपन्यास-लेखक ब्रेटहार्टने अपनी पुस्तक "Outcasts of Poker Flat" के अन्दर मिस्टर जौन ओकहर्स्टके चरित्रमें बड़ी सुन्दरताके साथ दर्शाया है। और आगे लैकी लिखता है कि—"उद्योग-धंधोंके बढ़नेका शायद केवल एक ही रूपमें सदाचारके ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ता है और वह रूप है औद्योगिक सचाई अर्थात् उद्योग-धंधोंमें एक दूसरेके साथ सच्चे बर्तावकी आदतका पैदा होजाना," जबकि, दूसरी ओर, "ईश्वरपर विश्वास, हद दर्जेकी गरीबी और कष्टोंमें भी सन्तोषके साथ ईश्वरेच्छापर अपने तईं छोड़ देना, अत्यन्त सच्चे प्रेमका व्यवहार, और अपने भाइयोंको सहायता पहुंचानेके लिये बिलकुल सच्ची तत्परता, अपने धार्मिक विचारोंकी वह दृढ़ता जो किसी तरहके कष्टों वा रिश्वतोंसे नहीं डिग सकती, दीर्घ कालतक लगातार वीरतापूर्ण और खूब बढ़ी हुई कुरबानियां करते रहनेकी काबलीयत—ये सब गुण कुछ कौमोंके अन्दर ऐसे लोगोंमें भी पाये जासकते हैं जिन्हें झूठ बोलने और धोका देनेकी पक्की आदत है।" फिर एक जगह वह बतलाता है कि किफ़ायतशआरी और दूरअन्देशी जो कि हमारी जैसी एक उद्योग-प्रधान सभ्यतामें

"बिल्कुल सर्वोच्च श्रेणीके" कर्त्तव्य समझी जाती हैं, एक दूसरे जमानेमें (जबकि—"कलकी फिक्र मत कर" का उपदेश दिया जाता था) इसके बिल्कुल विपरीत समझी जाचुकी हैं; अन्तमें लैकी अपनी यह आम राय प्रकट करता है कि ज्यों ज्यों 'समाज' आगेको उन्नति करता जाता है त्यों त्यों ही प्रत्येक नये लाभके बदलेमें और उसके साथ साथ एक न एक हानि अवश्य होती है, और हमारी "सभ्यता" के विरुद्ध लैकी यह एक खास इल्जाम लगाता है कि यह "सभ्यता" "आत्म-त्याग, उत्साह, गुरुजनोंका मान अथवा पवित्रता (अर्थात् ब्रह्मचर्य,)", इन गुणोंकी उत्पत्तिके लिये हितकर नहीं है।

इस सबसे यही सिद्ध होता है कि नामधारी दोष और अवगुण—चाहे हम उन्हें एक प्रकारकी कमियां वा त्रुटियां समझें और चाहे उन्हें मानव-चरित्रकी रचनाके लिये कच्चा मसाला समझें, चाहे हम उन्हें केवल व्यक्तिकी दृष्टिसे देखें और चाहे समाजसे उनके सम्बन्धकी दृष्टिसे—हर हालतमें अवगुण और दोष मनुष्य-जीवनके आवश्यक अंग हैं, और इस तरहके अंग हैं जिनके बिना नामधारी सद्गुण हो ही नहीं सकते थे; और इसीलिये गुणों और अवगुणोंको इस अन्तर्हित विचारसे कि धीरे धीरे किसी समय जाकर अवगुणोंको छोड़ दिया जावेगा और गुणोंको रख लिया जावेगा, उन्हें दो अलग अलग श्रेणियोंमें विभक्त कर सकना कतई नामुमकिन है। बुराइयों और अवगुणोंके साथ इस तरहका व्यवहार न किया जावेगा—वे भी अपने अधिकारोंके लिये चिल्लाते हैं और उनके अधिकार उन्हें देने पड़ेंगे; वे हमारे अन्दर घर कर गये हैं, और हमें उनका साथ निभाना होगा। हमें मजबूर होकर इस प्रकार उनके मोती बना लेने होंगे जिस प्रकार सीपीके अन्दरका कीड़ा उसके अन्दरके रेतके जर्रेको मोती बना लेता है।

ये ही वे भयंकर ढाल और वे खड्ड हैं जो पर्वतको रूप प्रदान

करते हैं। कौन ऐसा पहाड़ चाहता है जो समुद्रमें ज्वार-भाटेके समयकी उन लहरोंकी तरह जिनके विषयमें यह मालूम नहीं होता कि यह पहाड़ है वा मैदान, बिना किसी मोड़ और बिना किसी कगरके चारों ओर बेतुका अपनी टांगें फैलाए हुए हो? और यदि आप ऐसा नरगिसका पौदा उगाना चाहते हैं जिसके फूल शुद्ध सफेद रंगके हों और जो आसपासकी वायुको अपनी सुगन्धसे भर दे, तो क्या पहले आप उसकी जड़को गंदी खादके अन्दर गहरा नहीं गाड़ देते?

इसलिये इस बातको मानते हुए, कि अच्छी भावनाओं और बुरी भावनाओंके बीच भिन्नताकी कोई स्थाई रेखा कायम नहीं होसकती, हमारे लिये अब कोई और चारा नहीं रहा सिवाय इसके कि हम अच्छी और बुरी दोनोंको अपनावें और दोनोंहीका मनुष्य-सेवामें उपयोग करें—और इस प्रकार अच्छी और बुरी दोनों तरहकी भावनाओंको उनकी इस समयकी संकीर्णता और परिमितताससे आजाद करें। क्योंकि जिस प्रकार 'कूड़ा' केवल उस चीजको कहते हैं जो अपने ठीक स्थानको छोड़कर किसी दूसरी जगहपर पड़ी हो, वैसे ही मनुष्यके अन्दर पाप वा बुराई केवल उन कार्योंमें वा उन भावनाओंमें समझी जासकती है जो कार्य वा जो भावनाएं मनुष्यके भीतरकी आत्माके काबूसे बाहर हों, और जो उस सर्वव्यापी आत्माकी सेवामें समर्पित न हों। बुराई, कामों वा भावनाओंमें नहीं होती, बल्कि इस बातमें होती है कि उन कामों और उन भावनाओंका उपयोग मनुष्योचित ढङ्गसे नहीं किया जाता। अत्यन्त शुद्धसे शुद्ध सद्गुण भी यदि वह अपने और अपने किसी दुःखमें पड़े हुए भाई वा बहनके बीचमें एक दीवारके समान होजावे, तो अधर्म और पाप होजाता है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि स्वच्छसे स्वच्छ सफेद संगमर्मरकी सुन्दरसे सुन्दर मूर्त्तिको भी मनुष्य-शरीररूपी मन्दिरके भीतर उस पवित्र सिंहासनपर स्थान

देना जो केवल आत्माके विराजनेकी जगह है, नास्तिकता और दूषण है।

यह एक दूसरा सवाल है कि 'मनुष्य-सेवा' ठीक ठीक किन किन बातोंमें है। सम्भव है कि, जैसा आगे चलकर पता चलेगा, इस विषयकी भी ठीक ठीक व्याख्या कर सकना नामुमकिन हो। किन्तु पहली बात तो यह है कि यदि उसकी बिल्कुल ठीक ठीक व्याख्या कर सकना नामुमकिन भी हो तो भी कोई वजह नहीं कि हम उसकी जहांतक होसके वहांतक ठीक व्याख्या न करें। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि यदि दिमागी तौरपर इस विषयकी व्याख्या करना अन्तमें असम्भव है तो इससे यह साबित नहीं होता कि 'मनुष्य-सेवा' का यह भाव हो मनुष्यके भीतर एक ऐसी सच्ची और जीती-जागती ताकत नहीं बन सकता जो ताकत उसके तमाम बाहरी कामोंको भीतरसे ही ठीक ठीक चलाती और प्रोत्साहित करती रहे। इन दोनों बातोंको हम एक दूसरेके बाद लेंगे। अव्वल यह कि, जैसा हम शुरूसे देखते आये हैं, 'समाज' अपने तजरबेके आधारपर बराबर मनुष्यके विविध कार्योंको हितकर और अहितकर, भले और बुरे दो विभागोंमें बाँटता रहता है; इस प्रकार ही युग युगकी वे सदाचार-प्रणालियां वा वे धर्मशास्त्र बनते रहते हैं जो धीरे धीरे वैयक्तिक मनुष्यको बाहरसे खाते खाते उसके अन्दर घुस जाते हैं और अन्तको उसका एक अंग बन जाते हैं। अर्थात् जिन नियमोंको प्रारम्भमें वह बतौर बाहरी नियमोंके मानता है वे धीरे धीरे उसके स्वभावमें ही शामिल होजाते हैं। ये धर्मशास्त्र ही एक प्रकार मुख्तलिफ जमानोंमें 'मनुष्य-सेवा' की व्याख्याके भरसक प्रयत्न कहे जासकते हैं; किन्तु जैसा हम देख चुके हैं ये सब व्याख्याएं स्वभावसे ही अत्यन्त अधूरी होती हैं; और चूंकि उस तमाम समयमें सामाजिक परिस्थिति बराबर बदलती रहती है इसलिये साफ जाहिर है

कि इन धर्मशास्त्रोंके जरियेसे सदाचार अथवा धर्मअधर्मका कोई अन्तिम और स्थाई समाधान नहीं होसकता। दूसरा तरीका जिससे मनुष्य इस विषयको हल करनेकी कोशिश करता है वह अपने भीतरकी चेतनताको बढ़ाना और उसे उन्नत करना है। यों तो निस्सन्देह ये दोनों तरीके बराबर एक दूसरेकी गलतियोंको ठीक करते रहनेके लिये जरूरी हैं, तथापि अन्तमें यह दूसरा तरीका ही सबसे अधिक महत्त्वका तरीका है। वास्तवमें जिस तरह मनुष्य बाहरसे समस्त समाजका सचमुच एक अंग है उसी तरह वह अपने भीतरकी चेतनताद्वारा इस सचाईका ज्ञान प्राप्त करता है और उसे अन्तरमें साक्षात् करता है। धीरे धीरे और अनेक युगोंमें जाकर, ज्यों ज्यों अपने भाइयोंके साथ वैयक्तिक मनुष्यकी सहानुभूति और उनके साथ उसका सम्बन्ध बढ़ता जाता है, त्यों त्यों उसके जीवनका क्षेत्र, यानी उसकी जिन्दगीका दायरा अधिकाधिक वसीअ होता जाता है, अपने भाइयोंके सुख-दुःख और अनुभव उसके अपने सुख-दुःख और अनुभव होजाते हैं; वह एक ऐसे जीवनमें प्रवेश कर जाता है जो उसके वैयक्तिक जीवनसे कहीं अधिक बड़ा, व्यापक और विशाल होता है; उस समय इस तरहकी नई नई शक्तियां मनुष्यपर अपना प्रभाव डालने लगती हैं जो उसके कर्त्तव्योंका निर्णय करती हैं, किन्तु निर्णय उन फलोंके अनुसार नहीं जो स्वयं उस व्यक्तिको उन कार्योंद्वारा प्रत्यक्षमें प्राप्त होसकते हैं बल्कि उन फलोंके अनुसार जो केवल एक दूरके रास्तेसे और दूसरोंके जरिये उस तक पहुंच सकते हैं, अन्तको मानो मनुष्यत्वका मैदान ही अर्थात् मनुष्यमात्रकी एकता और समताका क्षेत्र ही व्यक्तिके अन्दर खुल जाता है—फिर मनुष्य अपनेमें और दूसरोंमें किसी तरहका कोई भेद देख ही नहीं सकता—और उसके समस्त कार्योंकी प्रेरणा बराह रास्त उस महान स्रोतसे होने लगती है जिस स्रोतसे कि 'समाज' की

समस्त गतिका संचालन और प्रोत्साहन होता है। इस अवस्थामें आकर पाप-पुण्यका प्रश्न आप ही आप हल होजाता है। यह सब विकास मनुष्यके भीतरसे होता है; किसी बाहरी दबावके रूपमें नहीं बल्कि आत्माके भीतरसे अन्तःकरणकी प्रेरणाके रूपमें। अपने भीतरके सच्चे अनुभवद्वारा मनुष्य अपने वैयक्तिक जीवनको दर्जे-बदर्जे एक अधिकाधिक विस्तीर्ण जीवनके साथ समव्यापी और तल्लीन करता जाता है, और अन्तको समस्त मनुष्य-समाजके अन्तर्गत उस महान व्यापक जीवनके साथ अपनी सच्ची अखण्ड एकताको अनुभव करने लगता है, जिसका न कोई एक स्थाई रूप है और न जिसके लिये कोई एक स्थाई धर्मशास्त्र होसकता है; किन्तु जो वास्तवमें एकमात्र सच्चा जीवन है, जो स्वयं व्याख्याओं और परिभाषाओंसे ऊपर है, और फिर भी जोकि तमाम कार्यों और भावनाओं, तमाम शास्त्रों, प्रणालियों और रूपोंको रचता और प्रेरित करता है और अन्तको इन सब शास्त्रों, प्रणालियों आदिके अलग अलग उचित स्थानोंका निर्णय करता है।

धीरे धीरे प्रत्येक व्यक्तिके अन्दर इस परम जीवनका जागृत होना ही 'मनुष्य-समाज' की महान् और वास्तवमें एकमात्र आशा है—यही 'मनुष्य-समाज' के रचे जानेका उद्देश्य है। यह परम जीवन वैयक्तिक जीवनको दबा देनेके स्थानपर उसकी शक्तिको बेहद बढ़ा देता है, यह मनुष्यको समस्त विश्वकी ताकत अपने साथ लेकर चलनेके योग्य बना देता है, और व्यक्तिके चरित्रमें पहले जो उसकी छोटी छोटी खासियतें और उसके दोष गिने जाते थे उन्हें अब नये नये रूप प्रदान कर उसके व्यापक मनुष्यत्वके गौरवान्वित जहूर बना देता है।

अब हमें फिर एक बार एक लमहेके लिये यह देख लेना चाहिये कि इन सबका अमली तआल्लुक हमारे उपस्थित प्रश्नके साथ क्या है। हमने देख लिया कि ज्यों ही हमने धर्मशास्त्रों

और सदाचार-प्रणालियोंको छोड़ा, त्यों ही हमारे लिये सिवाय इसके कोई चारा नहीं रहा कि हम अपने तमाम गुणों और दोषोंका मनुष्यके हितके लिये उपयोग करें, और इस प्रकार उन गुणों और दोषोंका भी उद्धार करें। हमारे दोष ही वे फाटक हैं जिनमें होकर हम जीवनमें प्रवेश करते हैं। वे दरवाजे हैं जिनके जरिये हम दूसरोंके साथ तरह तरहका व्यवहार करते हैं। सोचिये, कि सीधीसादी सूरत(Homely) होनेमें कितना आनन्द है। अंगरेजी शब्द होमलीमें हा वह प्यार और वह जहां चाहें आनेजानेकी पूरी आजादी भरी हुई है जो निर्दोष सौन्दयवाले मनुष्यको मयस्सर नहीं होसकती। जिन्हें हमारी बुरी भावनाएं कहा जाता है इनके लिये भी हमें शर्मिन्दा होनेकी जरूरत नहीं है, किन्तु हमें उनका सामना करके यह देखना चाहिये कि उनसे क्या क्या हित सिद्ध होसकते हैं—क्योंकि यह बात बिल्कुल पक्की है कि कुछ न कुछ फायदा उनसे अवश्य उठाया जासकता है। मनुष्यको यह देखना चाहिये कि वह अपनी भावनाके योग्य हो उसी तरह जिस तरह कि पहाड़को अपनी चोटी अपने चारों ओरके ढालोंकी उंचाईके अनुरूप ही ऊपरको लेजानी चाहिये। मिसालके लिये क्या आप स्त्रियोंसे अधिक प्रेम अनुभव करते हैं? तो खयाल रखिये, कि आपका प्रेम ऊंचे दर्जेका और उदारतासे भरा हुआ हो। क्या आपमें महत्वाकांक्षा है? तो खयाल रखिये, कि आपकी आकांक्षा वास्तवमें "महान्" हो। क्या आप सुस्त हैं? तो अपने इस स्वभावद्वारा निरन्तर अशान्तिकी मूर्खतासे बचिये, और पहाड़ियोंके बीचकी प्रशान्त झीलके समान अपनी बुद्धिको भी ईश्वर-परायण सदा आकाशको प्रतिविम्बत करनेवाली बनाइये। क्या आप कंजूस हैं? तो उसके द्वारा सच्ची किफायत-शआरी अपने अन्दर पैदा कीजिये।

जब आप इस तरह अपने दोषोंके साथ पूरी तरहसे कोशिश

कर डालेंगे तो जितना ज्यादह पेचीदा, जितना ज्यादह तेज और जितना ज्यादह भद्दा आपका दोष होगा उतना ही अधिक सुन्दर नतीजा आप उसमेंसे पैदा कर सकेंगे। अपनी प्रशंसाकी इच्छा, यानी वाह वाहका शौक एक ऐसा दोष है जो जरा मुशकिलसे काबूमें आता है। यह दैत्य कपट (दुरंगी), झूठ और घमण्डकी दलदलोंमेंसे अपने शिकारको लेजाता है, उसके प्रबल आत्म-जीवनको चूस लेता है; और अन्तको उसे चित तथा रक्तशून्य करके छोड़ता है। किन्तु यदि एक बार इस दैत्यके ऊपर काबू हासिल कर लिया जावे, एक बार पूरी तरहसे उसके चीथड़े अलग अलग कर दिये जावें और मार मारकर उसे जिन्दगीके रास्तेपर लहूलिहान छोड़ दिया जावे (और किसी न किसी समय शायद यह सलूक आपको अपने प्रत्येक दुर्गुण तथा प्रत्येक सद्गुणके साथ करना पड़ेगा), तो फिर वह उठकर अवश्य आपके पीछे पीछे होलेगा और पहलेकी तरह खतरनाक और आसुरी होनेके बजाय अब विनीत और सेवा-परायण बना हुआ वह अपनी गर्दनमें आपके लिये एक जादूकी चाबी डाले हुए सदा जहां आप लेजायंगे आपके पीछे पीछे चलेगा।

'धोकेबाजी'की आदतको काबूमें करना कठिन है। एक लिहाजसे तो इससे अधिक बुरा दोष मनुष्यमें और कोई हो ही नहीं सकता। मालूम होता है कि यह आदत चरित्रके अंग प्रत्यंगोंकी संघटित व्यवस्थाको तोड़कर अन्तमें संपूर्ण चरित्र ही-का नाश कर डालती है। किन्तु फिर भी मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि इस दोषसे भी लाभ उठाये जासकते हैं। यदि एक एक आदमीके जीवनको अलग अलग देखा जावे तो शायद पता चलेगा कि कोई आदमी भी एक दिन विना (थोड़ी-बहुत) धोकेबाजीके नहीं जीसकता। और इस बातको भी जाने दीजिये—किन्तु क्या "एक प्रकारके उच्च भावसे अपने तईं

छिपाकर रखना" (A noble dissimulation) अत्यन्त महान्‌से महान् चरित्रोंका एक आवश्यक और स्वाभाविक गुण नहीं होता ? क्या हकीम सुकरातके विषयमें यह नहीं कहा जाता कि—"उसके विषयी स्वरूपके भीतर एक बेदाग सफेद रूह छिपी हुई थी।" (The white soul in a satyr form) जब जब मनुष्य-समाजके भीतर ईश्वरीय अवतार हुए हैं तब तब ही हजरत मूसाकी तरह क्या उन्होंने अपने चेहरेके सामने एक परदा नहीं डाले रखा ? और 'कुदरत' स्वयं क्या चीज है, सिवाय धोकेकी एक लम्बी बाजाप्ता और व्यवस्थित पद्धतिके ?

'सचाई' की आदतका असर इसके ठीक बरअक्स होता है। सचाईकी आदत मानव-चरित्रके तमाम अंग-प्रत्यंगोंको एक सूत्रमें बांधकर मनुष्यको बजाय रकीकके ठोस बना देती है; तथापि यदि बिल्कुल अक्षरशः और उसीको मुख्य मानकर इस असूलका पालन किया जावे तो यह चरित्रको उचितसे अधिक मुंजमिद और ठोस बना देता है, मनुष्यको लकड़ीकी तरह ठस कर देता है और उसकी गोलाइयों (सुशीलता इत्यादि) का नाश कर उसे सख्त कोनेदार (यानी रूखा) बना देता है। और उस मौलिक 'सत्यता' के विषयमें भी यानी आत्माकी आन्तरिक और आदर्श-परिपूर्णताकी ओर सच्चा रहनेके विषयमें भी जो शायद 'मनुष्यत्व'का एकमात्र सार है, यह याद रखना चाहिये कि उसमें भी एक हद जरूरी है। सम्भव है कि भीतरके भावोंमें मनुष्य बिल्कुल अपने आदर्शका सच्चा होसके, किन्तु बाहरसे अर्थात् व्यवहारमें कोई भी अपने आदर्शका बिल्कुल सच्चा नहीं रह सकता। यदि उसे इस दुनियामें रहना है और मनुष्य (Mortal) होकर रहना है, तो वह किसी न किसी पक्षपात, किसी न किसी दोषके सहारे और उसके कारण ही दुनियामें ठहर सकता है।

फिर इसी तरह, चूंकि व्यक्तिके जीवनमें और समाजके

जीवनमें एक समानता है, इसलिये क्या हम इस सबसे यह नतीजा नहीं निकाल सकते कि जिस तरह हर व्यक्तिको अन्तमें अपनी बुरी कहलानेवाली भावनाओंको अपना बनाकर उनके लिये अपने चरित्रके अन्दर उचित स्थान और उनका उचित उपयोग ढूंढ़ना होता है, इसी प्रकार समाजको भी अपने 'मुजरिम' कहलानेवाले लोगोंको अपनाकर समाजके अन्दर उनका उचित स्थान और उनका ठीक ठीक उपयोग ढूढ़ निकालना होगा। चित्रकार अपनी कैनवेससे अक्सों और सायोंको निकाल नहीं देता; और कोई भी बुद्धिमान नीतिज्ञ वा शासक मुजरिमोंको 'समाज' से निकाल बाहर करनेकी कोशिश न करेगा—ताकि कहीं ऐसा न हो कि 'मुजरिमों' के साथ साथ सामाजिक मशीनको चलानेवाली शक्ति भी उस मशीनसे निकलकर बाहर होजावे* ।

जो कुछ ऊपर कहा जाचुका है उससे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आम तौरपर हम किसी मनुष्यको 'मुजरिम' इसलिये नहीं कहते क्योंकि उसने धर्म वा सदाचारकी किसी नित्य-स्थाई प्रणालीका उल्लंघन किया है—क्योंकि इस तरहकी कोई प्रणाली कहीं है ही नहीं—बल्कि हम किसीको 'मुजरिम' केवल इसलिये कहते हैं क्योंकि वह अपने समयकी हावी यानी प्रचलित प्रणालीका उल्लंघन करता है, यह प्रणाली अधिकतर उस समयके 'आदर्श' पर निर्भर होती है। मालूम होता है कि प्राचीन यूनानमें सुविख्यात स्पार्टा नगरके लोगोंने अपने यहां चोरीको इसलिये जायज करार देरखा था क्योंकि वे समझते थे कि कौमके अन्दर चोरी करनेकी आदतसे एक तो लड़ने-भिड़नेकी ताकत बढ़ती रहती है और दूसरे किसीको अपनी व्यक्तिगत

* अङ्गरेजी शब्द Wicked का निकास संदिग्ध मालूम होता है। क्या मैं यह सुझा सकता हूं कि यह शब्द Wick अथवा Quick से सम्बन्ध रखता है, जिनका अर्थ 'जीवित' (Alive) है ?

धन-सम्पत्ति अधिक बढ़ा लेनेकी हिम्मत भी नहीं होती। अपनेमेंसे किसीके पास भी वैयक्तिक सम्पत्तिके अधिक बढ़ जानेको वे समाजके लिये एक बहुत बड़ी बुराई समझते थे। किन्तु आज इसके बरअक्स वैयक्तिक सम्पित्तिके बढ़ते रहनेमें ही हम अपना सबसे बड़ा हित समझते हैं और चोरको 'बुरा' खयाल करते हैं। किन्तु जब हमें यह मालूम होजाता है, जैसा आजकलके इतिहासज्ञ हमें बतलाते हैं, कि शायद आजकलका मनुष्यसमाज भूतकालको सम्मिलित सामाजिक अवस्थासे निकलकर भविष्यकी एक अधिक उच्च और अधिक उन्नत सम्मिलित सामाजिक अवस्थाकी ओर जाते हुए इस बीचके समयमें वैयक्तिक सम्पत्तिकी एक अनस्थाई हालतमेंसे गुजर रहा है, तब यह बात साफ हमारी समझमें आजाती है कि साधारण चोर अथवा शिकारका चोर, जिसका हम ऊपर जिकर कर आये हैं, वह मनुष्य है जो जोरोंके साथ हमें इस बातकी चेतावनी देरहा है कि कहीं हम एक क्षणिक और अनस्थाई आदर्शके अत्यधिक और अनन्य प्रभावमें न आजावें, और जो इस अगल-बगलतीके विरुद्ध अपनी आवाज उठा रहा है। यदि वह न होता तो हम क्या कर सकते थे? वह हमारे लिये—जैसा-कि मैं समझता हूं हिण्टनने कहीं लिखा है—एक पुनरुज्जीवित 'समाज' तक पहुंचनेका मार्ग खुला रख रहा है, और इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिये वह अनेक प्लैटफार्म-वक्ताओं और उपदेशकोंसे कहीं अधिक उपयोगी है। वही है जो 'धनकी काठी' के ऊपर उसकी हिफाजतके लिये 'चिन्ता' को सवार कराता है और इस ढंगसे वैयक्तिक सम्पत्तिके भार और उसकी चिन्ताओंको धीरे धीरे इतना असह्य बना देता है कि 'समाज' फिर किसी न किसी समय खुशीसे उसे सार्वजनिक भूमिपर फेंक देता है। 'कानून' की मशीनरी अत्यन्त विशाल है और वह अनेकानेक तरीकोंसे ही 'चोर' को कुचल डालनेकी कोशिश

करती रहती है, तथापि अबतक उसे असफलता ही होती रही, यह असफलता अर्थसूचक है और बराबर बढ़ती ही जारही है। अन्तमें निस्सन्देह चोरको जीत होगी। वह जो चाहता है सो उसे मिलेगा, किन्तु (जैसाकि मनुष्य-जीवनमें प्रायः होता आया है !) जिस ढंगसे और जिस रूपमें वह आशा करता है उस ढंगसे और उस रूपमें नहीं वरन् उससे बिल्कुल भिन्न एक दूसरे ही ढंग और दूसरे ही रूपमें मिलेगा।

और यदि हम खुद ध्यानसे चोरको समझनेकी कोशिश करें तो हम यह नहीं कह सकते कि समाजकी दूसरी श्रेणियोंके लोगोंकी निस्बत चोरोंमें कम इन्सानियत होती है। चोरोंकी बड़ी बड़ी समितियां वा गुट्ट होते हैं जिनमें आपसमें एक दूसरेकी ओर उनके भाव अत्यन्त मेल-मिलापके और सम्मिलित सम्पत्तिके असूलको लिये हुए होते हैं; इस प्रकार यदि एक ओर वे एक गुजरे हुए जमानेके अवशेष और स्मारक हैं और तो दूसरी ओर वे भविष्यके एक आजकलसे बेहतर जमानेके पेशरौ हैं। हर शहरमें उनके भाई-बन्द होते हैं, हर जगह उनके लिये स्वागतका सामान तैयार और आश्रयके स्थान सदा खुले रहते हैं, और आपसमें एक दूसरेके साथ वे अत्यन्त खर्चीले और उदार होते हैं। और यदि वे अमीरोंको अपने कुदरती दुश्मन और अपना जायज शिकार समझते हैं—और उनकी इस रायको गलत साबित करना जरा कठिन है—तो कमसे कम उनमेंसे बहुतोंमें 'रौबिन हुड' कैसे परोपकारात्मक भाव भरे होते हैं और गरीबोंके वे सच्चे मददगार होते हैं।

मैं समझता हूं कि मुझे लैकीके उन मशहूर फिकरोंको उद्धृत करनेकी जरूरत नहीं है जिनमें वह दिखलाता है कि किस प्रकार वेश्या सदियोंके कष्टों और बदनामीको सहन करती हुई 'समाज' के शाप और उसकी नफरतको इसलिये बरदाश्त करती रही है ताकि उसकी अधिक खुशकिस्मत बहन अपने

पवित्र विवाहकी प्राप्तिपर खुशी मना सके। एक अर्थमें स्वतन्त्र स्त्री (यानी वेश्या) के ऊपर जो लांछन लगाया जाता है बराह रास्त उस लांछनद्वारा ही 'एक पति और एक पत्नीके सम्बन्ध' का आदर्श कायम हुआ है। किन्तु यदि, जैसा बहुतसे लोगोंका खयाल है, पुरुष और स्त्रीके सम्बन्धमें एक खास दर्जेकी आजादी, न केवल दी ही जासकती है, बल्कि अन्तको और खास नियमोंके अन्दर देना मुनासिब भी है, तो यह बात साफ होजाती है कि वेश्या वह नारी है जो जबरदस्त कठिनाइयोंका मुकाबला करते हुए और (व्यक्तिगत दृष्टिसे) अपने सच्चे पतनको बरदाश्त करते हुए भी एक ऐसी प्राचीन मर्यादाको चिपटी रही है जो स्वयं अच्छी मर्यादा है किन्तु जो, यदि वेश्या न होती तो, अनन्य विवाहके शानदार आदर्शकी ओर हमारी निष्ठाके कारण नष्ट होगई होती। इतिहासमें एक जमाना था जबकि वेश्याओंका जीवन (यदि इस स्थानपर इस शब्दका उपयोग ठीक हो तो) गौरवयुक्त जीवन समझा जाता था, जबकि मन्दिरोंकी सेवाके लिये उन्हें नियुक्त किया जाता था और देवता तथा मनुष्य, दोनों उनकी इज्जत करते थे; उदाहरणके लिये यूनानियोंमें 'हायरोदुलोई' कहलानेवाली स्त्रियां और वे स्त्रियां जिन्हें इंजीलमें 'कोदेशौथ' और 'कोदेशीम' कहा गया है, इत्यादि। उसके बाद वह भी जमाना रहा जबकि उनसे नफरत कीगई और उन्हें बदनाम किया गया। भविष्यमें एक जमाना आवेगा जबकि आजकलके तिजारती व्यापारके शापसे वास्तवमें आजाद होकर फिर एक बार पवित्र और बाइज्जत समझी जाकर वेश्याएं बतौर आजाद साथियोंके फिरसे मनुष्य-समाजद्वारा अपनायी जावेंगी और समाजकी शेष श्रेणियोंके साथ साथ अपना उचित स्थान प्राप्त करेंगी।

और यही हाल इस तरहकी अन्य श्रेणियोंका होगा। प्राचीन इतिहासकी ओर नजर डालनेपर हमें पता चलता है कि किसी

न किसी जमानेमें मनुष्यकी प्रायः प्रत्येक प्रवृत्तिका आदर किया जाचुका है और उसके लिये फलने-फूलनेका खुला मैदान छोड़ दिया गया है; इस प्रकार ही मनुष्य अपनी हर प्रवृत्तिके सौन्दर्य और उसकी कदरको पहचान सका। किन्तु धीरे धीरे जब कोई खास प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ने लगती है तो इस डरसे कि कहीं अधिक बढ़कर वह बाकी प्रवृत्तियोंको अपने अधीन कर उनपर अत्याचार न करने लगे (और निस्सन्देह अधिक बढ़नेपर एक न एक समय वह ऐसा जरूर करने लगेगी), उसे उसके तख्तसे नीचे उतार दिया जाता है; इसीलिये जिस प्रवृत्तिको एक जमानेमें बढ़नेके लिये खुला मैदान दिया गया था उसे ही किसी बादके जमानेमें नफरतके काबिल और त्याज्य ठहराया जाता है। अन्तको मनुष्य-जातिके हितमें उस प्रवृत्तिके सच्चे और ठीक ठीक उपयोगका पता लगाकर शेष सब प्रवृत्तियोंके साथ साथ उसे उचित स्थान प्रदान किया जाता है। प्रारम्भिक 'मनुष्य-समाज' के इतिहास-लेखकोंके अनुसार 'सभ्यता' युगके शुरू होनेके समयतक यद्यपि उस शुरू जमानेकी मनुष्य-जातियोंकी आदतें और उनके रिवाज बड़े सरल और मोटे ढङ्गके होते थे तथापि उनकी सामाजिक व्यवस्था सच्चे अर्थोंमें लोक-सत्तात्मक होती थी। वास्तवमें उस समयतक कोई ऐसी बात हुई ही न थी जो उन्हें लोक-सत्तात्मकके सिवा कुछ और बता देती। समाजका प्रत्येक व्यक्ति बाकी तमाम व्यक्तियोंके साथ बराबर समझा जाता था और उसके साथ बराबरका ही सलूक किया जाता था; किसी व्यक्ति वा व्यक्तियोंके हाथोंमें इस तरहकी ताकत न थी कि वे दूसरोंके साथ जैसा चाहें स्वच्छन्द व्यवहार कर सकें; और जातीय जीवन, जातीय हित और जातीय आदर्श सर्वोपरि समझे जाते थे। और जब भविष्यमें उस प्राचीन समयकी निस्बत कहीं अधिक उच्च अवस्थातक पहुंचकर, एक सच्ची 'लोक-सत्ता'

कायम होगी, तब यही समता, यही बराबरी जो इतने अरसेतक दबी रही फिरसे स्थापित कीजावेगी—बराबरी न केवल मनुष्य मनुष्यमें ही, बल्कि एक अर्थमें मनुष्यके समस्त गुणों और उसकी समस्त प्रवृत्तियों और भावनाओंमें भी। किसीको दूसरोंपर अत्याचार करनेकी इजाजत न दीजावेगी, किन्तु सब किसीको सम्पूर्ण मनुष्य-जातिके सम्मिलित और परम जीवनके अधीन होकर रहना होगा। 'मनुष्य' के रथमें उस समय बजाय दो घोड़ोंके हजार घोड़े जुते होंगे, किन्तु वे सबके सब रथवानके वशमें होंगे। इस दरमियानमें हमारा यह मान लेना शायद अत्यधिक न होगा कि इस समस्त 'सभ्यता' युगमें जिन लोगोंको मुजरिम कहा जाता है वे लोग ही उस भावी सामाजिक अवस्थामें हमारे प्रवेश करनेकी सम्भावनाका द्वार हमारे लिये खुला रख रहे हैं। ये लोग ही भविष्यमें प्रकट होनेवाले जीवनके अमूल्य बीजकी हिफाजत कर रहे हैं, यद्यपि मुमकिन है कि वह सूखा छिलका जिसके अन्दर इन्होंने उस बीजको रख रखा है इस समय हमें खुरदरा और बुरा लगता हो, अन्तमें पहुंचकर ये लोग मनुष्य-समाजके वैसे ही आवश्यक और अभिन्न अंग हैं जैसेकि समाजके अधिकसे अधिक सम्माननीय और अधिकसे अधिक इज्जतदार व्यक्ति आज दिन होसकते हैं।

खुलासा इस समय सबका यह है कि "सदाचार" अथवा "धर्म"का खयाल बतौर एक स्थाई प्रणाली वा स्थाई धर्मशास्त्रके जिसके द्वारा हर कामको अच्छा या बुरा बताया जासके बिलकुल छोड़ देना चाहिये। इस तरहकी कोई स्थाई प्रणाली नहीं है। किसी एक जमाने, वा एक कौम, वा एक श्रेणी, वा एक कुटुम्बका एक धर्मशास्त्र होसकता है जिसे उसके माननेवाले प्रमाणरूप समझते हों; किन्तु केवल वे ही उसे प्रमाण समझते हैं और वह भी केवल एक थोड़ेसे समयके लिये। हजरत मूसाकी 'दश आज्ञाएं'' मुमकिन है कि उस समयकी

इसराईल कौमके लिये पाप-पुण्यको परखनेका एक मोटा और आसान तरीका रही हों; किन्तु हमारे लिये उनमें इतने अपवाद और इतनी तरहके अर्थ निकलते हैं कि वे आज्ञाएं व्यावहारिक दृष्टिसे हमारे लिये बिल्कुल व्यर्थ हैं। दशमेंसे एक आज्ञा है — "तू चोरी न करेगा।" बिल्कुल ठीक; किन्तु, जैसा हम इस अध्यायके शुरूमें देख आये हैं, इस बातका निर्णय कौन करेगा कि "चोरी" किस बातमें है? यह एक सवाल ही इतना पेचीदा है कि कोई इसका जवाब नहीं देसकता। और ज्यों ही कि हमने एक भूखे गृहविहीन मनुष्यको कहीं रोटी "चुराते" हुए पकड़ लिया, और उसे दण्ड देनेके लिये हम तैयार होगये, त्यों ही! लाइकरगस* उसकी कमर ठोकने लगता है, और इस युगका दार्शनिक भी उसे आकर बतलाता है कि 'तुम ही एक पुनरुज्जीवित समाजके लिये मार्ग खुला रख रहे हो!' यदि वह गृहविहीन मनुष्य साथ ही दार्शनिक भी होता तब भी शायद वह वही काम करता किन्तु उस सूरतमें वह केवल अपने लाभके लिये नहीं बल्कि समाजके लाभके लिये ऐसा करता, तब वह मनुष्य-जातिके कल्याण और निस्तारके लिये स्वयं जुर्म करता।

अब हमारे लिये सिवाय 'मनुष्य-समाज' और उसके हितके कुछ बाकी नहीं रहा। जबकि कोई हर हालतमें मान्य सदाचार-प्रणाली नहीं है तो हमें मजबूर होकर स्वीकार करना होगा कि कोई ऐसा तरीका नहीं है जिससे हम अपने तईं ठीक और अपने किसी पड़ोसीको गलत साबित कर सकें। वास्तवमें, यह सोचनेसे ही कि हम ठीक हैं वा नहीं, गलती यानी भ्रमका अंश बीचमें आजाता है, क्योंकि इसका मतलब ही कमसे कम

* हजरत ईसाके जन्मसे लगभग ८५० वर्ष पूर्वका स्पार्टा (यूनान) का एक विद्वान् शासक जिसकी रची हुई धर्मसंहिता ७०० वर्षतक उस देशमें जारी रही—अ०।

विचारमें अपने तईं दूसरोंसे पृथक करना है; और यदि कभी भी ऐसा हुआ कि हम असलीयतमें "ठीक" हों, तो वह कोई ऐसा समय होगा जबकि हमारा ध्यान ही इस ओर न जा-सकेगा—जबकि हम दूसरोंके साथ अपनी पृथकताको भूल चुके होंगे और मनुष्यमात्रकी समताके विशाल क्षेत्रमें प्रवेश कर चुके होंगे। समताका अर्थ यह कि उस क्षेत्रमें पहुंचकर मनुष्य-को सब बुराइयां अपने बुरेपनसे मुक्त होजाती हैं और सबको उचित स्थान मिल जाता है। तमाम धर्मशास्त्रों और पैगम्बरोंके उपदेशोंका निचोड़ यही है कि—'अपने पड़ौसीके साथ वैसा ही प्रेम करो जैसा तुम अपने साथ करते हो; इस बातको अपने भीतर साक्षात् करना कि हम और वे सब "बराबर" हैं, उनका जीवन हमारा जीवन है और हमारा जीवन उनका जीवन है—चाहे हम कितने भी थोड़े अंशमें इस बातको अनुभव करें—तथापि इस बातका अनुभव करना ही एक नये जीवनमें प्रवेश करना है जिसमें दोनों पहलू शामिल हैं, जो पाप-पुण्यके भेदोंसे बिल्कुल ऊपर है और जहां पहुंचकर फिर ये भेद मनुष्यको दिक नहीं करते। जिनमें एक दूसरेसे सच्चा प्रेम होता है उनके बीच फिर न कोई फरायज होते हैं और न कोई हक रह जाते हैं। ऐसे ही उस सच्चे 'मनुष्य-जीवन' में, जिसमें मनुष्यमात्रके साथ अपनी एकताको अनुभव कर लिया गया हो, केवल एक स्वाभाविक परस्पर सेवाका भाव रह जाता है जो जिस समय जिस कार्यको अपने लिये सर्वोत्तम समझता है उसीमें अपने तईं प्रकट करता है। किसी बातकी मुमानियत नहीं होती, क्योंकि कोई बात ऐसी नहीं जिससे कुछ न कुछ हित सिद्ध न होसके। सच्ची "समता" का असूल एक अत्यन्त सर्वसंगत असूल है, वह सब मौकोंपर और सब स्थानोंमें उपयुक्त होसकता है, उसमें चरित्रके समस्त पहलुओंको स्थान मिल सकता है, वह बिना किसीको छोड़े उन सब पहलुओंको जायज करार देता है

और सबका ही उद्धार करता है; और इस असूलके मुताबिक जिन्दगी बसर करना पूरी और सच्ची आजादी है। तथापि यह एक असूल नहीं है; बल्कि जैसा हम कह आये हैं एक नई जिन्दगी है, जो व्यक्तिगत जीवन यानी शख्सी जिन्दगीसे कहीं बढ़कर और कहीं ऊपर है, जो मनुष्यके भीतरसे इस व्यक्तिगत जीवनद्वारा ही काम करती हुई रूहको पापोंसे और इस दुःखकी दुनियासे कहीं ऊपर बिल्कुल एक दूसरे ही लोकमें उठाकर लेजाती है।

अपने लिये काम करना और अपने पड़ोसीके लिये काम करना, इन दोनोंमें भेद करनेकी कोशिश ही तमाम "सदाचार-प्रणालियों" की जड़ है। जबतक मनुष्य अपने और समाजके बीचमें एक मौलिक विरोध या पृथक्ता अनुभव करता रहता है और जबतक कि वह अपने जीवनको दूसरोंके जीवनसे एक अलग चीज समझकर उसे अलग कायम रखनेकी कोशिश करता है तबतक बराबर यह सवाल उठता रहेगा कि क्या वह अपने लिये काम करे अथवा उन दूसरोंके लिये। इसीसे अनेक पृथकता-सूचक शब्दोंकी उत्पत्ति होती है, जैसे पाप और पुण्यके भेद, कर्त्तव्य, स्वार्थपरायणता, आत्मत्याग, परोपकार इत्यादि। किन्तु जब मनुष्यको इस बातका पता लग जाता है कि अन्तको जाकर उसमें और समाजमें किसी तरहकी भिन्नता है ही नहीं; जब वह देख लेता है कि जितनी भी वासनाएं उसके अन्दर उत्पन्न होती हैं वा होसकती हैं उनकी तृप्तिमें केवल देश और कालका विचार रखकर वह उस तृप्तिको सामाजिक बना सकता है यानी उसे अपने भाइयोंके लिये हितकर बना सकता है; और दूसरी ओर समाज जो कुछ भी उससे चाहता है, उसकी मांगको पूरा करनेके हर कार्यमें अवश्य और अनिवार्य तौरपर उसके अपने स्वभावके किसी न किसी अंशकी तृप्ति होगी, उसके हृदयकी कोई न कोई इच्छा पूरी

होगी—तब जब मनुष्य इन बातोंको देख लेता है तब फिर तमाम भेद एकदम लोप होजाते हैं; फिर उन भेदोंमें कोई सार नहीं रह जाता। एक बहुत बड़ी और वसीअ नयी जिन्दगी मनुष्यपर उतर आती है जिसमें दोनों पहलू शामिल होते हैं और जो एक ऐसे कानूनके मुताबिक मनुष्यके कार्योंकी भीतरसे प्रेरणा करती है जो न कहीं लिखा है और न जिसकी कोई इस हालतमें कल्पना कर सकता है। ऐसे कार्योंको दुनिया कभी "स्वार्थमय" कहेगी और कभी "निस्स्वार्थ", किन्तु वे न स्वार्थमय होंगे और न निस्स्वार्थ अथवा—यदि आप पसन्द करें तो वे एक ही साथ स्वार्थमय भी होंगे और निस्स्वार्थ भी; और उन कामोंका करनेवाला इस बातकी परवा ही नहीं करेगा कि दुनिया उसे किस नामसे पुकारती है। सच्ची "समता" के असूलमें संसारकी समस्त सदाचार-प्रणालियां शामिल हैं, सच्ची 'समता' वास्तवमें वह ध्येय है जिसतक ये तमाम प्रणालियां पहुंचनेका प्रयत्न करती हैं किन्तु पहुंच नहीं सकतीं।

इस आखिरी मयारकी कसौटीपर अपने तईं कसकर निस्सन्देह अब हम एक प्रकारसे कह सकते हैं कि हम सब मुजरिम हैं, क्योंकि हममेंसे कोई भी उसतक नहीं पहुंचता। हम सब ही मुजरिम हैं और खूब पिटनेके मुस्तहक हैं; हम यह भी कह सकते हैं कि हममेंसे कुछ दूसरोंसे ज्यादह बड़े मुजरिम हैं। केवल बात यह है कि इस असली अपराध अथवा 'जुर्म' की परखके लिये व्यावहारिक 'धर्मशास्त्र' तथा 'कानूनी ताजीरात' कोई काम नहीं देसकतीं। मुमकिन है कि मैं आपकी निस्बत कहीं ज्यादह बुरा, ज्यादह खुद-शुमार ("पगला" वा जालिम) होऊं, किन्तु यह बात केवल मेरे किसी कानूनको तोड़ने और मेरे जेलमें धांध दिये जानेसे साबित नहीं होती। मुमकिन है कि 'धर्म' (Right) और 'अधर्म' (Wrong) ये दो शब्द जिस भेदको जाहिर करते हैं वह एक हकीकी और

दायमी भेद हो और गालिबन् है भी, किन्तु हम इस हालतमें कोई ऐसी व्याख्या नहीं कर सकते जिससे कभी भी इस भेदका स्वरूप जाना जासके। किन्तु यद्यपि ये सब शास्त्र और कानून अपूर्ण हैं और सदा रहे हैं तथापि इनसे भूतकालमें एक फायदा मुमकिन है यह हुआ हो कि इन्होंने ही धीरे धीरे मनुष्यको उभाड़कर उसके अन्दर इस बातका बोध पैदा किया हो कि उसमें और 'समाज' में किसी प्रकारका विरोध है और इस प्रकार मुमकिन है कि इन शास्त्रों और कानूनोंने ही व्यक्ति तथा समाजके बीच सच्चे मिलाप और सच्ची एकताके लिये रास्ता तैयार कर दिया हो। जैसाकि पाल* कहता है—"मुझे गुनाहका कुछ इल्म न था, किन्तु धर्मशास्त्रसे उसका इल्म हुआ।" और यदि सामाजिक रस्म-रिवाज और सामाजिक नियमोंरूपी इस निर्दयी गदाने सदियोंतक हमें ठोका-पीटा न होता तो हम न तो अपने पड़ौसियोंके ऊपर अपने कार्योंके असर-को इतनी जल्दी और इतनी बारीकीसे महसूस करने लगते जितनाकि हम आजकल करने लगे हैं और न एक ऐसी भावी सामाजिक जिन्दगीके लिये, जो कानूनों और शास्त्रोंसे बढ़कर होगी, इतने अधिक तैयार होते जितने कि आजदिन हैं।

निस्सन्देह अन्तको व्यक्ति और समाज दोनोंके सच्चे मिलाप-के लिये, अर्थात् अपनेको पृथक पृथक समझनेवाली परिमित मानव-'आत्मा' और समस्त समाजकी व्यापक 'आत्मा' इन दोनोंके बीच सच्ची एकता कायम होनेके लिये समस्त वास-नाओंका वशमें आजाना, उनका सच्ची आत्माके अधीन होजाना जरूरी है। और यह एक अत्यन्त महत्वकी बात है। जिस एक वर्त्तमान अवस्थासे निकलकर दूसरी भावी अवस्थाकी ओर जानेका हमने इस अध्यायमें जिकर किया है वह कोई आसान बात नहीं है, वह सदाचार-नियमोंसे बाहर होकर

* हजरत ईसाके मुख्यतम शागिर्दोंमेंसे एक।

इन्सानी जज़बात वा भावनाओंके किसी जंगलमें घुस जाना नहीं है किन्तु वह एक अत्यन्त कठिन और लम्बी चढ़ाई हैं। इसमें कमसे कम कुछ दिनोंके लिये दृढ़ संकल्पके साथ आत्म-संयमकी जरूरत होगी और अन्तमें अपनी भावनाओंके ऊपर पूरी तरह हावी होना होगा। इसका मतलब है एक एक करके हृदयकी तमाम भावनाओंपर पूरा काबू हासिल करना, और अन्तको उन्हें केवल इसीलिये अपनाना और रहनेकी इजाजत देना क्योंकि वे पूरी तरह काबूमें आगई हैं। ये भावनाएं मानो वे पर लगे हुए घोड़े हैं जिनका काम मनुष्यके रथको खींचना है। इन घोड़ोंको सिधाना और काबूमें करना ही स्वभावतः मानव-विकासकी लम्बी और कष्टकर गति है। पुराने धर्मशास्त्र और सदाचार-प्रणालियां भी इसी गतिका एक हिस्सा हैं, किन्तु यह देखकर कि कभी कभी एक बदमाश घोड़ेपर सवारी कसनेकी निस्बत उसे गोलीसे उड़ा देना ज्यादह आसान होता है, इन तमाम शास्त्रोंकी यह सलाह है कि इन भावनाओंमेंसे कुछको मार डालना चाहिये। किन्तु हम मुर्दा लाशोंके मालिक नहीं बनना चाहते, हम जीवित शक्तियोंके स्वामी बनना चाहते हैं;और जितने अधिक घोड़े हम अपने रथमें जोत सकें उतनी ही इस सृष्टिके ऊपरसे हमारी यह मात्रा अधिक शानदार होगी, शर्त केवल यह है कि लगामें स्वयं फीबस (सूर्य देवताका यूनानी नाम) के हाथोंमें हों न कि उनके अयोग्य पुत्र फेतौनके *।

और इस प्रकार समाजकी व्यापक आत्माके साथ एक होकर व्यक्तिगत मनुष्य बजाय कुचले जानेके पहलेकी निस्बत कहीं अधिक विशाल और कहीं अधिक महान् होजाता है।

* यूनानकी पौराणिक कथाओंके अनुसार सूर्यके पुत्र फेतौनने अपने पिताके रथके घोड़ोंको हांकना चाहा किन्तु घोड़े काबूसे बाहर होकर उसे उड़ाकर लेगये।

अपने केवल व्यक्तिगत हानि-लाभको छोड़ देनेमें उसे जो त्याग स्वीकार करना पड़ा है(यदि उसे त्याग कहना जरूरी हो तो)उस त्यागका बदला फौरन उसे उस, कहीं अधिक, सजीव जीवनके रूपमें मिल जाता है जिसमें अब वह प्रवेश करता है। क्योंकि अब उसके भीतरकी प्रत्येक शक्तिसे फायदा उठाया जासकता है। अब पहलेके मुकाबलेमें एक प्रकार स्वयं अपनेसे बाहर खड़े होकर उसके कदम पहलेसे कहीं अधिक पक्के होजाते हैं, क्योंकि अब उसके एक बायां और एक दायां दोनों पैर होते हैं, और अब जब वह कोई काम करता है तो एक डरे हुए मनुष्यके समान आधे चित्तसे नहीं करता, बल्कि मानो 'मनुष्य-जाति' के समस्त प्रभावको अपने साथ लेकर काम करता है। अपने इस परिमित व्यक्तित्व अर्थात् अपनी तंग और महदूद शख्सीयतको त्यागकर ही वह पहलेपहल एक हकीकी और सजीव व्यक्ति बनता है;और जब वह दूसरोंके जीवनको अपना जीवन स्वीकार कर लेता है तब ही अपने भीतर वह एक इस तरहके जीवनको अनुभव करने लगता है जिसकी न कोई सीमा है और न जिसका कोई अन्त है। यह बात बिल्कुल सच और स्पष्ट मालूम होती है कि प्रत्येक मनुष्यकी आत्मा एक अत्यन्त तुच्छ और संकीर्ण अस्तित्वसे लेकर अत्यन्त गौरवान्वित और सर्वव्यापी रूपतक उत्तरोत्तर चढ़ती हुई अनन्त रूप धारण कर सकती है। इस सीढ़ीके एक सिरेपर रोग और मृत्यु हैं और दूसरे सिरेपर अमर जीवन है।

उदाहरणके लिये जब जबान, जो जिस्मका एक अंग है, अपने अस्तित्वको केवल अपने ही लिये और एक बिल्कुल पृथक अस्तित्व समझने लगती है तब वह गलती करती है, वह भ्रममें पड़ जाती है और अपने तुच्छसे तुच्छ महदूद जीवनमें उतर आती है। नतीजा क्या होता है? यह समझकर कि उसका अपना अस्तित्व शरीरके दूसरे अङ्गोंके अस्तित्वसे बिल्कुल अलग है, वह

ऐसे ऐसे भोजन छांटती है जो केवल उसके अत्यन्त परिमित 'आपे' को सन्तुष्ट कर सकें, वह केवल अपने चटोरपनको तृप्त करनेकी कोशिश करती है, और इस प्रकारके व्यवहार तथा इस प्रकारके जीवनद्वारा बहुत जल्दी उसी अपने जायकेका नाश कर डालती है जिसे वह तृप्त करने चली थी; वह बेजा भोजनसे तमाम शरीरमें विष फैला देती है और अन्तमें रोग और मृत्यु लेआती है। किन्तु यदि वही जबान 'स्वस्थ' हो तो उसका व्यवहार कैसा होगा? वह न तो अपने जायकेके खिलाफ जाती है, और न अपने आपको नष्ट करती है। वह शरीर अथवा दूसरे अंगोंके हितके लिये अपनी प्रवृत्तियोंको कुरबान कर देनेका भी जिकर नहीं करती; किन्तु वह केवल इस प्रकार व्यवहार करने लगती है कि गोया उनका हित उसका हित है और उसका हित उनका हित है। क्योंकि जबान वास्तवमें शरीरका एक पट्ठा है और जो चीज उसे पुष्ट करती है वही शरीरके सब दूसरे पट्ठोंको भी पुष्ट करती है, जबानके ऊपरकी झिल्ली केवल मेदेहीकी झिल्ली है जो बढ़कर वहांतक आई हुई है, और इसीलिये जबान जान जाती है कि मेदा किस चीजको पसन्द करेगा; और जबान नसें और खून है, इसीलिये जबान तमाम शरीरकी नसों और तमाम शरीरके खूनके लिये काम कर सकती है, इत्यादि। इसलिये जबान केवल स्थानीय जायके वा स्वादके जीवनसे निकलकर एक अधिक विशाल जीवनमें प्रवेश कर सकती है, और उस जीवनमें प्रवेश करके फिर उसे अक्सर स्वादिष्टसे स्वादिष्ट मिठाइयोंकी निस्बत, जो केवल उसके तुच्छ आपेके लिये हैं, उस एक गिलास जलके पीनेमें कहीं ज्यादह आनन्द प्राप्त होगा जिसकी कि सारे जिस्मको आवश्यकता है।

ठीक इसी प्रकार जो मनुष्य पूरी 'तन्दुरुस्त' हालतमें है, वह केवल अपने लिये काम नहीं करता, वास्तवमें कर ही नहीं सकता। और न वह "अपने पड़ौसियोंकी सेवा करने" इत्यादिके

विषयमें बढ़ बढ़कर बातें बनाता है। वह केवल वैसे ही उनके लिये काम करता है जैसे अपने लिये, क्योंकि वे उसीके जीवनके टुकड़े और अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं—क्योंकि वे उसकी हड्डियोंकी हड्डियां और उसके मांसका मांस हैं। ऐसा करनेमें ही मनुष्य एक अधिक विस्तृत जीवनमें प्रवेश करता है, अधिक पूर्ण आनन्दको अनुभव करता है, और पेशतरकी निस्वत कहीं अधिक सच्चे अर्थोंमें 'मनुष्य' बन जाता है। प्रत्येक मनुष्यके अन्दर तत्वरूपसे अथवा बीजरूपसे शेष समस्त मनुष्य-जाति मौजूद हैं। ये तत्त्व मनुष्यके स्वभावके अन्दर पीछे दबे पड़े रहते हैं; किन्तु उनका अस्तित्व सदा बना रहता है। सामनेकी ओर मनुष्यकी अपनी वैयक्तिक शक्ति फैली हुई दिखाई देती है—यानी उसका व्यक्तिगत वाह्य स्वरूप, उसके मनसूबे, उसकी तजवीजें, और उसके अपने उद्देश्य, किन्तु पीछे हरएक मनुष्यके अन्दर 'लोक-जीवन'(Demos-life) अर्थात् 'लोकव्यापी आत्मा अपने कहीं अधिक महान् उद्देश्योंको लिये हुए सोती रहती है। किसी न किसी समय जाकर प्रत्येक मनुष्यके अन्दर इस अधिक विशाल जीवनका अनुभव अवश्य जागृत होगा।

वह सच्ची 'लोकसत्ता', जिसमें मनुष्यके भीतरका यह अधिक विशाल और व्यापक जीवन समाजपर शासन करेगा, जिसमें किसी बाहरी गवर्नमेंटकी कोई जरूरत ही नहीं रहेगी, और जिसमें सब तरहके चरित्रों और सब तरहके गुणोंको अपनाया जावेगा और उन्हें आजादी प्रदान कीजावेगी, स्वयं मनुष्य-स्वभावकी रचनाके अन्दर व्यक्त किये जानेकी इन्तजार कर रही है। यही 'विकास' का गुप्त किन्तु आवश्यक परिणाम है। "सभ्यता" से पूर्वके युगमें "पाप"-"पुण्य" के ये पेचीदा सवाल वास्तवमें थे ही नहीं, केवल इसलिये; क्योंकि उस जमानेमें हर व्यक्तिका जीवन जातीय जीवनके साथ मिला हुआ था और हर व्यक्ति (बिना जाने ही) अपनी जातिके अधिक विशाल

जीवनके साथ साथ ही चलता था। और "सभ्यता" के बादके जमानेमें जबकि सच्ची 'लोकसत्ता' कायम होजावेगी उस समय भी ये सवाल न रहेंगे, क्योंकि उस समय मनुष्य फिर अपने तईं विशाल मनुष्य-जातिका केवल एक अङ्ग समझने लगेगा और पूरी जानकारीके साथ अपने अस्तित्वके इन अधिक विस्तृत क्षेत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाली शक्तियोंको स्वयं अपने अन्तरसे तमाम कार्योंकी प्रेरणा करने देगा। धर्मशास्त्र और आगे बढ़नेकी कोशिश, उस पाप-पुण्यके सवाल "सभ्यता"से सम्बन्ध रखते हैं। वे उस कशमकश, उन कष्टों और सच्चे जीवनसे उस अनस्थाई पृथकताका केवल एक हिस्सा हैं जिन सबका मिलकर नाम ही 'सभ्यता' है।

दूसरा अध्याय

नया धर्म ❀
अर्थात्
पाप-पुण्यकी नई कसौटी

'विकासवाद' के विचार ज्यों ज्यों मनुष्यके दिमागमें घुसते जाते हैं, उनका एक असर यह होता है कि उनके कारण वे पुरानी रेखाएं, जो भिन्न भिन्न पदार्थोंको बाजाब्ता अलग अलग श्रेणियोंमें विभक्त करती थीं, अब धीरे धीरे मिटती जाती हैं।

❀ यह अध्याय पहलेपहल एक लेखकके रूपमें सितम्बर सन् १९०७ की 'एल्वेनी रिव्यु' नामक पत्रिकामें "Morality under Socialism" अर्थात् 'साम्यवादके दिनोंमें सदाचार' के शीर्षकसे छपा था। सन् १९२१ में थोड़ेसे परिवर्त्तनके साथ पहली बार यह इस पुस्तकमें शामिल किया गया।

जानवरोंमें अब हम पहलेके समान उन जानवरोंको जिनके सींग और फटे हुए खुर होते हैं, बाकी सब जानवरोंसे एक अलग श्रेणीमें शुमार नहीं करते, क्योंकि अब हमें इस बातका ज्ञान होगया है कि तमाम जीव-जन्तुओंका एक ही स्रोतसे और फिर लगातार एक दूसरेसे निकास है और उनकी इस बुनियादी एकता तथा उनके नजदीकी रिश्तोंके कारण भिन्न भिन्न रूपके जानवरोंमें इस तरहके परस्पर सम्बन्धोंका ताना-बाना पूरा हुआ है कि सींगों और खुरोंकी हदबन्दी उन्हें एक दूसरेसे अलग नहीं कर सकती। और लगभग उसी तरहकी युक्तियोंसे विकासवादहीके आधारपर, आजकलका मत धीरे धीरे 'पाप' और 'पुण्य' के बीचकी स्पष्ट और कड़ी रेखाओंको भी मिटाता जाता है अर्थात् मनुष्यके कार्योंकी उस पुरानी बाजाब्ता तकसीमको मिटाता जाता है जिसके अनुसार स्वभावसे ही खास खास कार्यों को अच्छा और खास खास कार्योंको बुरा बताया जाता था।

'पूरब' के अथवा कमसे कम हिन्दोस्तानके विचार और हिन्दोस्तानके धर्मने तो बहुत अर्से पहले ही इन भेदकी रेखाओंको मिटा दिया था। वास्तवमें हिन्दोस्तानका फलसफा (अर्थात् दर्शन शास्त्र) एक प्रकारके 'विकासवाद' पर ही कायम किया गया था—वह विकासवाद था 'एक' से 'अनेक' का लगातार विकास अथवा निकास * होते रहना। इस मतके अनुसार जबकि तमाम प्राणियों और तमाम कार्यों की उत्पत्ति एक ही मूल अथवा एक ही स्रोतसे मानी जाती थी, तो न तो किसी खास श्रेणीके प्राणियोंको वा जन्तुओंको स्वभावसे ही बुरा कहा जासकता था और न किसी खास श्रेणीके कार्यों को जरूरी तौरपर पाप समझा जासकता था। मौलिक बुराई केवल एक थी और वह थी 'अविद्या'—यानी प्राणीका 'एक' (ब्रह्म) से

* लेखकका इशारा इस श्रुतिकी ओर है—'एकोहं बहु स्याम्'—अ०।

अपने निकास और उसके साथ अपने सम्बन्धको न देख सकना अथवा न जानना। निस्सन्देह इस मतके अनुसार कोई भी काम जो इस 'अविद्या' की हालतमें किया जावे चाहे बाहरकी दृष्टिसे वह कितना भी ठीक क्यों न हो वास्तवमें गलत वा अकर्म माना जाता था; और दूसरी ओर जो जीव 'एक' (ब्रह्म) के साथ अपनी एकताको जान गये थे और जिन्होंने उस एकताको पूरी तरह अनुभव कर लिया था उनके तमाम काम जरूरी तौरपर ठीक माने जाते थे।

"कर्म" और "अकर्म" अर्थात् "पाप" और "पुण्य" की ओर इस मानसिक प्रवृत्तिके उपनिषदोंमें अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं। "Pilgrims Progress" नामक पुस्तकमें मनुष्यके सामने दो मार्ग रखे गये हैं, एक "भलाई" का मार्ग और दूसरा "बुराई" का मार्ग और मनुष्यको इन दोनोंमेंसे एक अपने लिये निश्चय करना पड़ता है; किन्तु भारतीय उपनिषद् मनुष्यको अपने लिये "भलाई" और "बुराई" मेंसे एक मार्ग निश्चय करनेके लिये नहीं कहते बल्कि "भलाई" और "बुराई" इन दोनोंसे ऊपर और इन दोनोंसे कहीं बढ़कर एक तीसरा मार्ग उसके सामने पेश करते हैं। मैत्रायण-ब्राह्मण-उपनिषद्में लिखा है कि—"अपने विचारोंकी गम्भीरताद्वारा मनुष्य अच्छे और बुरे, सब कार्योंको धो-डालता है।" तैत्तिरीय उपनिषद्में लिखा है—"वह इस तरहकी चिन्ताओंमें नहीं पड़ता—मैंने वह कार्य क्यों नहीं किया जो अच्छा था ? मैंने वह कार्य क्यों किया जो बुरा था *?" वास्तवमें तमाम धर्मोंने, इसीलिये क्योंकि वे धर्म हैं, मनुष्य-जीवनकी एक ऐसी अवस्थाका जिकर किया है जो पाप और पुण्यसे ऊपर है और हर मजहबने अपने अनुयायियोंको उस अवस्था-

---

* एतं ह वाव न तपति। किमहं साधु नाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति।—२।९, ।—अ०।

तक पहुंचनेका प्रयत्न करनेकी आज्ञा दी है। अन्यथा सेण्ट पाल*के बार बार यह कहनेका और क्या मतलब है कि मनुष्यको गुनाह और कानूनके राज्यसे बाहर निकलकर परमात्माके बच्चोंकी गौरवान्वित स्वतंत्रतामें शरण लेनी चाहिये। और हर जमानेमें वे बड़े बड़े साधु महात्मा जो विकास और निकासके आदि स्रोतके निकट पहुंचे हुए थे स्वयं अपने भीतर इस अवस्थाको अनुभव करके यही बात कहते रहे हैं। १७ वीं सदीका सुप्रसिद्ध यूरोपियन अद्वैतवादी स्पाइनोजा लिखता है—"यदि हम स्वयं चीजोंको अलग अलग लें तो 'भलाई' और 'बुराई', ये दो शब्द चीजोंके किसी भी भावात्मक गुणको जाहिर नहीं करते, भलाई और बुराई सिवाय विचार करनेके दो तरीकोंके और कुछ नहीं हैं; भलाई और बुराई केवल वे खयाल हैं जो हम एक चीजका दूसरी चीजके साथ मुकाबला करके कायम कर लेते हैं। क्योंकि एक ही चीज, एक ही समयमें भली और बुरी दोनों होसकती है, अथवा दोनोंमेंसे कुछ भी नहीं।" (Spivoza's Ethic, Part IV.)

निस्सन्देह इन सारगर्भित शब्दोंमें हम इस मसलेकी जड़तक पहुंच जाते हैं। किसी पदार्थ वा किसी कार्यको किसी एक लक्ष्य वा एक खास उद्देश्यकी दृष्टिसे भला वा बुरा कहा जासकता है; किन्तु स्वयं न किसीको भला कहा जासकता है और न किसीको बुरा। शराब सामाजिक मेल-जोलके बढ़ानेके लिये भली होसकती है किन्तु जिगरके लिये बुरी होसकती है। (ईसाई और यहूदी धर्मोंके अनुसार) रविवार एक आराम करने और ईश्वर-प्रार्थना करनेका दिन मनानेके रिवाजको खास खास बातोंके लिहाजसे हितकर कहा जासकता है किन्तु दूसरी बातोंके लिहाजसे अहितकर कहा जासकता है। दूसरेकी वैयक्तिक सम्पत्तिको हाथ न लगाना और उसका बड़ी बारीकीके

* हजरत ईसाके मुख्य शागिर्दोंमेंसे एक।

साथ लिहाज रखना निस्सन्देह एक व्यवस्थित सामाजिक जीवनको सहायता पहुंचा सकता है; किन्तु चोरीकी आदत—जिसकी हकीम अफलातूनने तारीफ की है—व्यक्तियोंमें धनकी अधिक लोलुपताको रोकनेके लिये बहुत हितकर साबित हो-सकती है। यह कहना कि हर हालतमें शराब स्वभावसे ही बुरी है या अच्छी है साफ बेमाइने है। वैसे ही वैयक्तिक सम्पत्तिके लिये अथवा रविवारके मनाये जानेके लिये (हर हालतमें) एक धार्मिक आदर दिखलाना बेहूदा है। ये सब चीजें खास हालतों-में और खास मतलबके लिये अच्छी हैं, और दूसरी हालतोंमें वा दूसरे मतलबके लिये बुरी होसकती हैं। किन्तु सच यह है कि मनुष्यके चित्तमें बजाय अपने भीतरकी ओर देखनेके बाहर-हीकी ओर भटकनेकी एक पशुओंकीसी आदत मौजूद है और उस आदतके अनुसार वह उन भौतिक चीजोंको जो वास्तवमें रूहके केवल साधन होनी चाहिये थीं बाहर ही ठस कर डालता है और उन्हें ही सदाके लिये एक 'भला' या 'बुरा' रूप और 'भला' या 'बुरा' नाम प्रदान कर देता है। फिर बजाय यह सम-झनेके कि 'रविबार' मनुष्यके लिये बनाया गया था, यह माना जाने लगता है कि मनुष्य 'रविवार' के लिये बनाया गया है। तब सरकारी 'कानून', सामाजिक 'रस्म व रिवाज', मज-हबोंके बाहरी 'कर्मकाण्ड' पर जोर, और अपने 'वैयक्तिक धर्मा-त्मापन' का अभिमान—ये सब चीजें पैदा होकर सच्चे सदाचार और सच्चे धर्मका स्थान छीन लेती हैं; असभ्य तथा सभ्य कौमोंके समस्त इतिहास, जिनमें—उनके असंख्य तबर्रुक और निषेध, अंध-विश्वास और धार्मिक संस्कार, और तरह तरहके कर्मकाण्ड एवं जाति-पांतिके अलग अलग रिवाज तथा अलग अलग चिन्ह, गंडे और ताबीज, और छोटे छोटे नियम तथा औचित्य-अनौचित्यके तुच्छ विचार, यहांतक कि जो उन बातोंको न मानें वा उनपर अमल न करें उनसे जबरदस्त घृणा

और उनके लिये दण्ड तथा यातनाएं'—ये सब बातें पाई जाती हैं, केवल मनुष्यके इस अ:पतनकी मिसालें हैं।

संसारके तमाम पैगम्बर और निजात दिलानेवाले हमें इस बातका उपदेश देते आये हैं कि केवल लफ्जी नियमोंको छोड़कर हमें अपने अन्दरके 'भाव' (अर्थात् 'आत्मा')की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये—किन्तु बारी बारी सब ही मजहबोंके माननेवालोंने अपने अपने मजहबोंकी शिक्षाके केवल शब्दों और वाक्योंमें फँसकर उस जीवित शिक्षाको निर्जीव पत्थर बना डाला है! शायद हजरत ईसासे बढ़कर लफ्जी नियमोंका शत्रु दूसरा न हुआ होगा, और इसपर भी शायद कोई मजहब केवल शब्दों और कर्मकाण्डमें इतना फँसकर न रह गया होगा जितना कि आजदिन ईसाई मजहब। यहांतक कि 'विनय' (Gentle-ness)और 'प्रेम'(Love)के विषयमें हजरत ईसाके उच्च उपदेश भी—जिनके विषयमें कमसे कम यह आशा की जासकती थी कि ये तो इस नाशक गतिसे बचे रहेंगे—भ्रष्ट होकर अब केवल धर्मके बने-बनाये नुस्खे रह गये हैं, जैसे हर हालतमें 'अप्रतिकार' (Non-resistance), निःस्वार्थ 'परोपकार' (Philanthropic Altruism) इत्यादि।

निस्सन्देह यह बड़ा विचित्र मालूम होता है कि टालसटाय जैसे महापुरुषने भी इसी गतिका शिकार होकर हजरत ईसाके उच्चतम भावको पिन लगाकर केवल एक वाक्यके शब्दोंमें इस तरह चिपका दिया जैसे कोई एक तीतरीको पकड़कर एक तख्तीपर उसका नाम लिखकर उसे उसके साथ पिनसे चिपका देता है—"कभी किसीकी हिंसा न करो—कभी किसीका प्रतिकार न करो।" (Thou shalt use Violence: thou shalt not Resist.) और फिर वे ही हजरत ईसा, जिनमें स्वयं इतना काफी मनुष्य-स्वभाव वा मनुष्यत्व मौजूद था कि उन्होंने खुद रुपये-पैसेके दलालोंको दारुस्सलाम (जेरूजलम) के मन्दिरसे बाहर

निकाल दिया था ! और किसी भी समयतक किसी लफ़्ज़ी वाक्य, वा मंत्र वा नियमके शब्दोंको चिपटे रहनेका अर्थ केवल यह है कि उस तमाम समयमें हम उसी बुराईको किसी न किसी ऐसे रूपमें स्वीकार करते हैं जो उन शब्दोंके अन्दर न आता हो। मसलन् डण्डेका इस्तेमाल न करनेकी कसम खालेनेका मतलब केवल यह है कि हम आत्म-रक्षाके लिये या तो शाब्दिक हिंसा करें और या ताने-तिशनोंसे काम लें, हालांकि डण्डेकी निस्बत इन चीजोंसे ज्यादह तकलीफ होसकती है, ज्यादह गहरा जख्म लग सकता है और कभी कभी ज्यादह नुकसान भी होजाता है। और यदि किसी रूपमें भी आत्म-रक्षा न करनेहीकी बिलकुल कसम खा ली जावे तो इसका मतलब केवल यह है कि इस दुनियामें अपनी जगहको ही बिल्कुल त्यागकर उससे हाथ धोलिये जावें।

और यही हाल उस प्रायः कमजोर दिल 'परोपकार वृत्ति' का है जिसका किसी समयमें बहुत अधिक उपदेश दिया जाता था और जिसे सांसारिक आचारका एक मुख्य असूल बताया जाता था। क्योंकि यह बात प्रायः सदासे मशहूर है कि जो लोग खास तौरपर परोपकारहीमें लगे रहते हैं वे आम तौरपर इतने सूखे और मनोरंजन-शून्य होते हैं कि उनके साथ बैठनेमें तकलीफ होने लगती है, और उनकी निस्बत बहुतसे ऐसे लोग जो खुले तौरपर अपने तई स्वार्थी बताते हैं अपने आसपासके लोगोंको कहीं अधिक जीवन और मनोरंजन प्रदान करते रहते हैं। इस तरह पता चलता है कि ये परोपकार-रत लोग, 'परोपकार'के मंत्रका केवल एक शाब्दिक अनुकरण करनेकी वजहसे, 'संसारको अधिक आनन्दमय बनाने' के जिस लक्ष्यको लेकर चलते हैं उसीका सत्यानाश कर डालते हैं।

ईसाई-मतकी इन कमजोरियोंके विरुद्ध जर्मनीके फिलोसोफर नीट्शेके विचार और उसके आक्षेप खासे स्वास्थ्यजनक

हैं। नीट्शेने इस बातपर जोर दिया कि "भला" और "बुरा", इन दोनों शब्दोंका फिरसे ठीक इस्तेमाल किया जावे, अर्थात् उन्हें सापेक्ष शब्दोंके तौरपर काममें लाया जावे—कोई बात यदि "भली" है तो काहेके लिये भली है? यदि कोई चीज "बुरी" है तो किस बातके लिये बुरी है? किन्तु इस रोनी-सूरत परोपकार तथा इस अप्रतिकारके खिलाफ नीट्शेके विरोधने उसे दूसरी ओरके एक गड्ढे में लेजाकर गिरा दिया। उसने वैसा ही एक दूसरा रूखा मन्त्र गढ़कर 'पाशविक बल' की पूजाका उपदेश देना शुरू कर दिया—"जरूर 'हिंसा'का उपयोग करो, जरूर 'प्रतिकार' करो।" कमजोर दिलवालों, रोती शकलवालों, घुटने टेक टेककर चलनेवालों और बगुला-भगतों इत्यादिकी ओर नीट्शेका हिकारत दिखलाना अत्यन्त आनन्ददायक और मजेदार है और, जैसा मैं कह चुका हूं, बतौर पुराने उपदेशोंकी एक जिद् वा प्रतिक्रियाके स्वास्थ्यजनक भी है; किन्तु नीट्शेके अपने विचारोंसे यह साफ साफ मालूम नहीं होता कि जिस 'बल'की नीट्शे इतनी शान दिखलाता है वह किस गरजके लिये है, अथवा वह 'बल' मनुष्यको किस ओर लेजानेवाला है। इन 'सुन्दर दरिन्दों' और 'हँसते हुए शेरों'से जिनका नीट्शे जिकर करता है, 'शक्ति वा सत्ता प्राप्त करनेका संकल्प' (Will to Power) जाहिर होसकता है; किन्तु मालूम होता है कि स्वयं नीट्शे इस बातको महसूस करता था कि केवल 'सत्ता' हीसे काम नहीं चल सकता, इसीलिये आगे चलकर नीट्शेने आदर्शके तौरपर उस बालक-स्वभाव 'अतीत-मनुष्य'(Beyond-man) का पता लगाया वा उसे ईजाद किया जो बिना किसी तरहकी दलीलके दृढ़ताके साथ हर बातका प्रतिपादन करता है और स्वयं रचना करता है, और जिसके सामने संस्थाएं और रस्म-रिवाज मानो खुद बखुद पिघल जाते हैं *। नीट्शेकी यह

* याद रखना चाहिये कि नीट्शे रूहकी तीन अवस्थाएं मानता है

कल्पना निस्सन्देह उसकी असाधारण बुद्धिको साबित करती है; किन्तु फिर भी यह बात मश्कूक ही रह जाती है कि इन 'अतीत-मनुष्यों'का एक दूसरेके साथ कैसा सम्बन्ध होगा, और यदि उन सबके जीवनका निकास एक ही स्रोतसे नहीं है तो क्या उनके अलग अलग कार्य बिल्कुल एक दूसरेके कार्योंका खण्डन कर उनका नाश न कर डालेंगे?

सच यह है कि नीट्शे कभी भी वास्तवमें चेतनताकी उस भीतरी अवस्थातक नहीं पहुंचा जिसमें पहुंचकर मनुष्य 'प्रकृति' के साथ तथा मनुष्यमात्रके साथ अपनी गहरी और व्यापक एकताको साक्षात् करता है और उसे अनुभव करता है। नीट्शेका यह अनुभव कभी नहीं होने पाया। जाहिर है उसने इस बातको समझ लिया था कि समस्त नामधारी भलाइयों और नामधारी बुराइयोंसे कहीं ऊपर एक दूसरा जीवन और एक दूसरे जीवनकी प्रेरणा भी हैं। किन्तु कुछ इसलिये क्योंकि यह विषय ही स्वभावसे कठिन है, और कुछ इसलिये क्योंकि 'पूर्वीय' अर्थात् भारतीय दृष्टि नीट्शेकी मानसिक प्रकृतिसे मेल न खासकती थी, किसी वजहसे हो जिस समाधानकी असलीयतमें नीट्शेको जरूरत थी वह उसे कभी हासिल न होसका, इसीलिये उसकी आदर्श मनुष्यकी व्याख्या—जिसे वह अतीत-मनुष्य (Superman) कहता है—धुंधली, संदिग्ध और अस्पष्ट है, जिसके उसका अनुयायी और समालोचक भिन्न भिन्न तरहसे अर्थ लगाते हैं।

सवाल यह पैदा होता है कि, हमें अब किस चीजकी जरूरत है? आज दिन इस विषयमें हमारी हालत थोड़ी-बहुत खतरनाक है। पुराने 'धर्मशास्त्र' अब मृत-प्राय हैं, हजरत मूसाको

(१) ऊंट (२) शेर, और (३) बालक। उसका 'अतीत-मनुष्य' वास्तवमें तीसरी अवस्थासे मिलता हुआ है, जो उसके अनुसार सबसे ऊंची अवस्था है।

'दश आज्ञाओं'को अब बहुत ही कम लोग मानते हैं और वह भी अत्यन्त परिमित अर्थों में। वह ईसाई मजहब जिससे अमली जिन्दगी और व्यवहारके लिये कोई सच्ची प्रेरणा मिल सकती थी अब मर चुका; केवल सामाजिक रस्म-रिवाज और औचित्य-अनौचित्यके फर्जी नियम बाकी हैं, जो एक निर्बल तरीकेपर हमें दिक करते रहते हैं और खाहमखाह हर काममें रुकावट डालते रहते हैं। ऐसी हालतमें हम क्या करें? क्या हम पुराने शास्त्रोंको ही, जिनपरसे हमारा विश्वास अधिकतर उठ गया, केवल इसलिये पुश्ते बांध बांधकर खड़ा रखें क्योंकि कोई न कोई शास्त्र वा प्रणाली चाहिये ही? —अथवा क्या हम उन्हें अब छोड़ दें?

निस्सन्देह यदि हम इस बातका निर्णय कर चुके हैं कि "मनुष्य"-जीवनका अन्तिम उद्देश्य क्या है तब हम कह सकते हैं कि जो काम उस उद्देश्यके लिये अच्छा है वह निश्चय अच्छा है और जो उस उद्देश्यके लिये बुरा है वह निश्चय "बुरा" है। जैसा मैं ऊपर कह चुका हूं, हिन्दोस्तानका दर्शनशास्त्र, इस बातका निर्णय करके कि "मनुष्य"का अन्तिम उद्देश्य 'ब्रह्म'के साथ मिलकर एक होजाना है, उन सब कामोंको बुरा बतलाता है, जो चाहे कितने भी धार्मिक वा पवित्र क्यों न हों; किन्तु जो मनुष्य अपनेको ब्रह्म से अलग मानकर करता है, और उन सब कामोंको अच्छा बतलाता है जो 'विद्या'की हालतमें अर्थात् ज्ञानसहित योगकी हालतमें किये जाते हैं। किन्तु यद्यपि इस तरहपर 'विद्या' की हालतको भलाईकी हालत और 'अविद्या'की हालतको निश्चय करके 'बुराई'की हालत मान लिया गया और स्वीकार कर लिया गया तथापि 'विद्या' और 'अविद्या' की हालतें भी ऐसी हालतें नहीं हैं जिनके विषयमें हम कोई बाहरी नियम बता सकें वा जिनकी शब्दोंद्वारा अलग अलग व्याख्या कर सकें। मिस्टर औरेजने नीट्शेके ऊपर एक छोटीसी पुस्तक

लिखी है; थोड़े ही दिन हुए मिस्टर गिलबर्ट चैस्टर्टनने २६ दिसम्बर सन् १६०६ के 'डेली न्यूज' समाचारपत्रमें उस पुस्तककी समालोचना करते हुए लिखा था कि "भलाई और बुराईसे ऊपर" इत्यादिकी यह सब चर्चा बेमाइने है, किसी न किसी शास्त्र वा प्रणालीका होना हमारे लिये जरूरी है, और हकीकतमें कोई भी प्रणाली, चाहे वह बुरी भी क्यों न हो, बिल्कुल किसी भी प्रणालीके न होनेसे अच्छी है। मिस्टर गिलबर्ट चैस्टर्टनका मतलब समझमें आसकता है। एक अर्थमें यह बिल्कुल सच है कि जिस प्रकार गाड़ीका साज, दोनों ओरकी बल्लियां और आंखोंके इधर-उधर चमड़ेके टुकड़े घोड़ेको ठीक रास्तेपर कायम रखते हैं और दाएं-बाएं खन्दकमें गिरनेसे बचाते हैं, वैसे ही दुनियाके अधिकांश लोगोंको ठीक रास्तेपर रखने और खन्दकमें गिरनेसे बचानेके लिये इसी तरहकी चीजोंकी जरूरत होती है, और इस तरहके आदमी हमेशा मिलते रहेंगे जो अपने भीतरकी उच्चतर शक्तियोंका उपयोग करनेके बजाय इन्हीं बाहरी नियमोंका सहारा लेते रहना सदा अधिक पसन्द करेंगे; किन्तु मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि और चाहे कुछ भी किया जावे वा न किया जावे परन्तु इस तरह आंखोंपर चमड़ेके टुकड़े बांधकर उनकी सहायतासे निजात दिलानेको तो हरगिज बढ़ने देना नहीं चाहिये; बल्कि प्रश्न यह उठता है कि इस तरहकी निजात क्या वास्तवमें निजात है? क्या इस निजातकी निस्बत गन्दक ज्यादह अच्छी न होगी?

इसके अलावा हम कर क्या सकते हैं? हम जान-बूझकर धर्मशास्त्रोंको इतना नहीं छोड़ रहे हैं जितना कि धर्मशास्त्र हमें छोड़ते जारहे हैं। धीरे धीरे नये स्वतन्त्र विचारों, पूर्वीय (भारतीय) सिद्धान्तों, डार्विनके फलसफे, और दूसरी कौमोंके रस्म व रिवाज और उनके मजहबी खयालातके हम लोगोंमें फैलनेके साथ साथ जबकि बर्नर्ड शा हजरत मूसाकी 'दश

आज्ञाओंकी निरर्थकतापर व्याख्यान देते फिरते हैं, इत्यादि, इन सब बातोंके होते हुए यह देख सकना कठिन नहीं है कि पुराने धर्मशास्त्रोंमेंसे किसीका भी फिरसे स्थापन कर सकना वा जनताकी दृष्टिसे उन्हें मान्य और आदरणीय बना सकना थोड़े ही दिनोंमें नामुमकिन होजावेगा। यदि गिलबर्ट चेस्टर्टनके कहनेके अनुसार हम कुछ समयके लिये ऐसी चीजको पुश्ते बांधकर संभाल भी सकें तो हमारा यह संभालना केवल कुछ समयके लिये ही होगा।

सवाल यह है कि क्या हमारे लिये वास्तवमें अभीतक वह समय नहीं आया जब हम समझदार मर्दों और औरतोंके समान सीधे खड़े होकर बिना नियमोंके काम चला सकें? क्या अभीतक हमें अपने ऊपर इतना भरोसा नहीं है कि हम अपनी आंखोंपरसे इन चमड़ेकी टोपियोंको उतारकर फेंक सकें? सवाल यह है कि क्या हम अपने भीतर उस ठोस और मरकजी जिन्दगीको साक्षात् नहीं कर सकते जो तमाम नियमोंके अन्तर्गत और फिर भी उन सबसे ऊपर है? सचमुच, यदि हम इतना नहीं कर सकते तो हमारी हालत काबिल रहमके है—एक ओर 'सदाचार' अथवा 'धर्म'के ऊपरी लफ्जी नियमोंपरसे हमारा विश्वास उठ गया, और दूसरी ओर 'धर्म'के अन्तर्गत-भावोंको वा उसकी रूहको हम पा नहीं सकते!

यहांपर ही वह "नया धर्म" आता है, जिसे आजकलके उन्नतिशील और विचारवान लोग कोई कम और कोई अधिक स्पष्टताके साथ समझते हैं और जाहिर भी करते रहते हैं। आजकलका "साम्यवाद"*(Socialism), वास्तवमें अपने ढंगपर पूर्वीय फलसफेके पहलूसे एक बहुत कुछ मिलता हुआ

* 'साम्यवाद' मोटे शब्दोंमें यह सिद्धान्त है कि हर जातिकी समस्त सम्पत्ति जातिके समस्त व्यक्तियोंकी सम्मिलित सम्पत्ति समझी जानी चाहिये—अ०।

पहलू अखतियार करके यह कहता है कि—'सदाचार' वा 'धर्म' का सार शास्त्रों और प्रणालियोंमें नहीं, बल्कि केवल एक 'सम्मिलित जीवन' (Common life)को साक्षात् कर लेनेमें है*; और यह भाव मनुष्य-स्वभावसे बाहर वा उसके विरुद्ध नहीं है, बल्कि यह भाव मनुष्य-स्वभावके ही साथ पैदा हुआ और उसका एक अंग है। वास्तवमें यह 'सम्मिलित जीवन'का भाव मनुष्यके अन्दर इतना अधिक स्वाभाविक है कि यदि 'पश्चिमी' (यूरोपीय) सभ्यताकी संस्थाएं और उसके उपदेश लगातार इस भावको दबाये और छिपाये रखनेमें न लगे रहते तो निस्सन्देह वह इस समयकी निस्बत मनुष्य-जातिके परस्पर व्यवहारोंमें कहीं अधिक देखनेमें आता। जितनी धार्मिक और सामाजिक कठिनाइयां इस समय संसारके सामने उपस्थित हैं, उनके दूर होनेकी केवल एक ही आशा भविष्यमें दिखाई देसकती है, और वह है मनुष्यके अन्दर "सम्मिलित जीवन"के इस स्वाभाविक भावको आजाद करना, उसे आजकलके समाजके उन कठोर नियमोंके पंजेसे छुड़ाना, जिन्होंने इस समय उसे जकड़ रखा है और उसे वाह्य सामाजिक जीवनमें स्वतन्त्रताके साथ अपनी ही आजाद शकल वा शकलें अखतियार करने देना—निस्सन्देह व्यक्तिगत 'स्नेह' और 'सहानुभूति' अर्थात् इन्सानमें अपनी अपनी जुदागाना पसन्दकी आदत इस 'सम्मिलित जीवन' के ऊपर बतौर कलमके लगकर उसके वाह्य रूपोंको और भी अनेक तरहकी भिन्नता (और सुन्दरता) प्रदान करेगी।

और मुझे विश्वास है कि जितना ज्यादह इस स्थितिपर विचार किया जावे उतना ज्यादह ही उसमें सचाई और हित

---

* यह कहनेका जरूरत नहीं कि इसका मतलब, जैसा नीट्शे बार बार और कटाक्षके तौरपर कहता है, मामूली घटिया (Common Place) जीवनको साक्षात् करना नहीं है किन्तु यह उससे एक बिल्कुल भिन्न बात है।

दोनों दिखाई देंगे। जिस तरह कि उन जानवरोंके अन्दर, जो गोल या झुण्ड बनाकर रहते हैं, ठीक वैसे ही हमारे अन्दर भी मनुष्य-मात्रकी एकताका बोध, मानो सब एक ही शरीरके विविध अंग हैं, सबके भलेका खयाल और हर किसीकी सहायतामें लगे रहनेकी स्वाभाविक इच्छा—ये सब भाव हमारे वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके एक एक रेशेमेंसे होकर मनुष्य-स्वभावके अन्दर चारों ओरको फैले हुए हैं ।

हजारों तरहसे—एक ही पूर्वजोंकी हम सब औलाद हैं, और चाहे हम गलीमेंसे गुजरते हुए दो अजनबियोंके समान एक दूसरेको पहचान सकें वा न पहचान सकें, तथापि एक ही पूर्वजोंका खून हमारी सबकी नसोंमें बहता है, एकहीसे हमारे सबके सोचनेके तरीके हैं, एकहीसी हमारे दिमागोंकी बनावट है, एकहीसे हमारे अन्दर वासनाओं, विचारों और भावोंके सिलसिले हैं. सामाजिक जीवनमें हम सब एक दूसरेके साथ जकड़े हुए हैं और हरएककी आर्थिक भलाईके लिये हर दूसरे मनुष्यकी तथा सबकी आवश्यकता पड़ती है; इन सबके अलावा एक दूसरेके साथ हमारा वैयक्तिक स्नेह और हमारे हृदयके पाश, और फिर अन्तरका वह रहस्यपूर्ण आध्यात्मिक अनुभव, जिसमें मनुष्य वैयक्तिक भेदोंके कहीं नीचे अत्यन्त गहरे जाकर अपने भीतर विश्वव्यापी अस्तित्वके महान प्रवाह-को साक्षात् करता है—ये सब चीजें और ऐसी ही अनेक और बातें हमें इस 'सम्मिलत जीवन' (Common Life) की सचाई-को स्वीकार करनेपर मजबूर करती हैं—शायद यह "सम्मिलित जीवन" ही अस्तित्वकी सबसे प्रधान और सबसे अधिक मौलिक सचाई है ।

प्रत्येक बालकको इस सरल किन्तु मौलिक सचाईकी और उससे निकलनेवाले तमाम नतीजोंकी शिक्षा देना—केवल एक जबानी सिद्धान्तके तौरपर नहीं बल्कि एक अमली आदतके

तौरपर और रोजमर्रहके आचरणको ठीक करनेवाली एक प्रेरणाके तौरपर शिक्षा देना—वास्तवमें कठिन नहीं, बल्कि आसान है। जिन बच्चोंके रोम रोममें यह सचाई पैवस्त कीजावेगी वे उसी भावको लेकर और उसी तरहकी अमली आदतोंको लेकर बढ़े होंगे और शुरूहीसे जिसे हम 'धर्म शास्त्र' वा सदाचार कहते हैं उसकी ओर इतनी जबरदस्त प्रेरणा उनके हृदयोंमें मौजूद होगी जितनी कापियोंके ऊपर लिखे हुए असूलों और आदर्श-वाक्योंसे कभी नहीं होसकती। सचाईका खयाल, माता-पिता और गुरुजनोंका आदर, दूसरोंकी मुनासिब सम्पत्तिका उनके मान और उनके आरामका लिहाज और वैसे ही अपनी जरूरतों और अपने मानका खयाल, ये सब बातें ऐसे बच्चोंमें बिल्कुल स्वाभाविक और मामूली आदतें होजावेंगी। हालमें जापानके उदाहरणने इस बातको साबित कर दिया है कि हमारा यह कहना केवल एक फर्जी कल्पना ही नहीं है। जापानके प्रत्येक बालक और बालिकाके अन्दर यह सामाजिक वा सार्वजनिक हितका भाव आजदिन इतना अधिक पैवस्त कर दिया जाता है कि अपने देशके लिये प्राण न्योछावर कर देना एक विशेष सौभाग्य समझा जाता है*। मैं कहता हूं कि यदि हम बच्चोंको उस ठोस मानव-एकताके तालीमी और अमली आकाशमें तरबीयत देसकें जिस ठोस मानव-एकताको कि वास्तवमें आजकलका 'साम्यवाद' और आम तौरपर आजकलका आर्थिक आन्दोलन चाहता है, तो मोटे तरीकेपर मानव-धर्मका

* अनेक जापानियोंने इसलिये आत्महत्या कर ली थी क्योंकि उन्हें रूस-जापान-युद्धमें शामिल होनेकी इजाजत नहीं मिल सकी थी। लैफकैडियो हर्नने अपनी पुस्तक "Life and Letters Vol. I P. 12 113. में जापानके युवकों और युवतियोंकी, सौजन्य और आत्म-सम्मानकी, आदतोंका जो वर्णन किया है, वह भी पढ़नेयोग्य है।

पालन असंदिग्ध होजावे; और आजकलकी निस्बत कहीं ज्यादह असंदिग्ध होजावे।

और जैसा मैं ऊपर इशारा कर चुका हूं, इस सामान्य बुनियादके ऊपर 'व्यक्तिगत स्नेह' और 'व्यक्तिगत सहानुभूति' एक अपनी ही (रंग-विरंगी) ऊपरकी इमारत खड़ी कर देंगे, वे इस तरह एक ऐसे समाजको रूप देंगे जो आजकलके समाजकी निस्बत, जोकि धनकी रस्सियोंके सहारे कायम है, उतना ही अधिक सुन्दर, उतना ही अधिक शक्तिशाली और उतना ही अधिक गुथा हुआ होगा जितना कि मिसालके तौरपर प्राचीन यूनानमें पैरीक्लीज*के समयके एथन्स नगरका यूनानी समाज 'लापिथे' जातिके उस समाजसे इन बातोंमें बढ़-चढ़कर था, जिन्होंने पहलेपहल घोड़ोंको सिधाना और लगाम लगाना शुरू किया था।

जिस तरह कि वह सार्वजनिक 'जीवन' जो सबमें समान, व्यापक और एक अर्थमें निर्भिन्न है एक ऐसा महान् जीवन है जिसके अस्तित्वको मानना पड़ता है; उसी तरह ये व्यक्तिगत 'प्रेम' और व्यक्तिगत 'स्नेह'भी, जो उस सामान्य जीवनमेंसे जिसे चाहे छांटते हैं, जिसे चाहे पसन्द करते हैं और उस सामान्य जीवनको रूप और रेखा प्रदान करते हैं, वैसी ही जबरदस्त चीजें हैं, वैसी ही मान्य हैं और वैसी ही पवित्र हैं, इसलिये इन दोनोंको एक साथ मिलाकर लेना होगा।

एक ओर सार्वजनिक जीवनकी एकता और समता और दूसरी ओर अलग अलग व्यक्तिगत स्नेह तथा व्यक्तिगत सहानुभूति यानी अपनी अपनी अलग अलग पसन्द, इन दोनों बातोंको मैं एक समान पवित्र कहता हूं। व्यक्तिगत स्नेहके अनेक

* हजरत ईसासे ४९५ वर्ष पूर्वसे लेकर ४२९ वर्ष पूर्वतक, वह नीतिज्ञ था जिसने यूनानके एथन्स नगरको गौरव, यश और सभ्यताके शिखरतक पहुंचाया।—अ०।

पहलुओंमें किसी मनुष्यकी ओर हलकीसे हलकी सहानुभूतिके रुझानसे लेकर उन जबरदस्त जज्बोंतक, जो हमें मजबूर कर डालते हैं, सब शामिल हैं। मैंने इन दोनों बातोंको एक समान पवित्र इसलिये कहा है क्योंकि कुछ लोगोंका मत इस ओर झुकता हुआ देखा गया है (और निस्सन्देह इस झुकावके भी कई कारण हैं) कि वे व्यक्तिगत स्नेहके इन मुख्तलिफ पहलुओंको एक प्रकारसे कुछ मश्कूक चीज समझते हैं या अधिकसे अधिक उन्हें इन्सानकी एक ऐसी मीठी कमजोरी समझते हैं जिसे उनकी रायमें अधिक बढ़ने नहीं देना चाहिये। टालसटाय अपनी एक पुस्तकमें दुष्कालके दिनोंका एक छोटेसे कुटुम्बका हाल चित्रित करता है जिनके पास हकीकतमें अपनी जरूरियातके लिये भी काफी रोटी नहीं थी। इसपर एक अजनबी बच्चा दरवाजेपर आकर भोजन मांगता है। टालसटायकी राय है कि उस समय माको यह चाहिये कि वह अपने बच्चेसे टुकड़ा लेकर उस अजनबी बच्चेको खिला दे अथवा कमसे कम दोनों बच्चोंमें उस टुकड़ेको बराबर बराबर बांट दे। किन्तु जिस नतीजेपर टालसटाय पहुंचा मुझे वह मश्कूक मालूम होता है।

इस तरहके मामलेमें "चाहिये" शब्दका चाहे कुछ भी अर्थ होता हो वा न होता हो, हम यह खूब जानते हैं कि मनुष्यके जीवनका यह नियम कभी न होगा, हम करीब करीब यह भी कह सकते हैं कि यह नियम कभी हो नहीं सकता; शायद हमारा यह कहना भी उतना ही उचित होगा कि मनुष्य-जीवनका इस तरहका नियम कभी होना "चाहिये" भी नहीं। क्योंकि यह जाहिर है कि प्रायः हर मनुष्य एक पदार्थके मुकाबलेमें दूसरे पदार्थको वा एक मनुष्यके मुकाबलेमें दूसरे मनुष्यको हमेशा अधिक पसन्द करता रहेगा और अनेक पदार्थों वा मनुष्योंमेंसे अपनी पसन्दका पदार्थ वा अपनी पसन्दका मनुष्य सदा चुनता भी रहेगा। हमारा विशेष व्यक्तियों वा विशेष सम्बन्धियोंकी

ओर स्नेह अनुभव करना, विशेष व्यक्तियोंके साथ हमारे स्वभाव आदिका मिल जाना, हमारी व्यक्तिगत सहानुभूति और हमारे हृदयकी अलग अलग भावनाएं—ये सब चीजें हमारे अन्दर फजूल ही पैदा नहीं कीगई हैं। हर इन्सान, हर वृक्ष और हर जानवरकी एक खास शकल होना तथा एक अपनी ही और औरोंसे अलग शकल होना कोई बेमतलब बात नहीं है। यदि ऐसा न होता तो दुनिया अत्यन्त रूखी और बेमजा होती, इतनी रूखी और बेमजा होती कि जिसका अनुमान भी नहीं किया जासकता। इसपर भी यह चाहना कि हर हालतमें एक मा अजनबी बच्चोंके साथ भी ठीक वैसा ही सलूक करे जैसा कि अपने बच्चोंके साथ, वा यह आशा करना कि कोई इन्सान इस समुद्र-समान विशाल मनुष्य-समुदायमेंसे किसीको भी अपना खास वा बेतकल्लुफ़ दोस्त न चुनें किन्तु सबके साथ एक समान प्रेम करे, ये दोनों बातें चाहना वैसा ही है जैसा यह चाहना कि इन सब लोगोंकी मानसिक और नैतिक प्रकृतियां बिल्कुल एकरूप, समुद्रकी झिल्ली-मछलीके समान होजावें, जिनकी न कोई अलग अलग शकलें हों और न जिनसे उन्हें वा किसी दूसरेको किसी तरहकी तृप्ति हासिल होसके।

जिस तरहसे कि "समताका असूल" (Law of Equality) एक अत्यन्त गहरा असूल है, जिसके बिना संसार ठहर नहीं सकता, अर्थात् यह असूल कि प्रत्येक प्राणीके भीतर वह अवस्था मौजूद है जिसतक पहुंचकर वह शेष प्राणीमात्रके जीवनके साथ अपने जीवनकी पूर्ण एकता और समताको अनुभव करने लगता है—उस तरह ही दूसरा असूल अर्थात् 'व्यक्तियोंकी अलग अलग तबियतोंके अलग अलग रुझान' (The Law of Individual predilection) का असूल भी उतना ही आवश्यक है और उसके बिना भी काम नहीं चल सकता। यदि सब किसीके जीवनका केवल एक ही सामान्य उद्देश्य रह

जावे और वह उद्देश्य सबका एक समान भला करना हो तो इस नींवपर एक सर्वाङ्गपूर्ण धर्मशास्त्र भले ही तैयार होसकता है, किन्तु वह धर्म काठकी तरह सख्त और रूखा होगा जिसमें किसी तरहका रंग,रूप वा किसी तरहकी रेखा न होगी। दूसरी ओर यदि इस 'समताके असूल'को छोड़कर केवल व्यक्तिगत स्नेह और प्रेमकी नींवपर ही समाजको कायम किया जावे अर्थात् सदाचारको छोड़कर केवल व्यक्तिगत प्रेरणाकी नींवपर ही तो समाज एक ऐसी नित्य बदलनेवाली और अनस्थाई चीज होजावेगी जिसका न कोई एक असूल होगा और न जिसके कमरकी हड्डी होगी।

इसलिये मेरा दावा यह है कि भावी समाजके लिये हमारी शुभ आशा इस बातपर निर्भर है कि वह समाज इन दोनों महान् असूलोंको मिलाकर चले—(१) "सम्मिलित जीवन" और उसके अन्तर्गत समस्त जीवनकी एकताको स्वीकार करना जिससे एक सामान्य धर्मको नींव कायम होजावे, और (२) "व्यक्तिगत स्नेह और उसके जहूर" को स्वीकार करना, और आजतककी निस्बत बहुत ज्यादह हदतक उसे जाहिर होनेका मौका देना जिससे कि उसके द्वारा सामाजिक मन्दिरकी ऊपरकी इमारतें और अधिक सुन्दर रंग रंगकी सूरतें अस्तित्वमें आसकें। और जितना जितना कि पहले असूलपर कायम होनेसे हमें इस समयतककी निस्बत धर्मकी एक अधिक ठोस और पक्की नींव प्राप्त होजावेगी उतना उतना ही उसके द्वारा दूसरे असूलके लिये भी देखने, पसन्द करने, चुनने और कार्य करनेके मैदान इतने वसीअ होजावेंगे जितने कि न आजतक कभी हुए और न एतबारके साथ आजमाए गये। जितना जितना कि "सम्मिलित जीवन" वा एकता (Solidarity) और 'व्यक्तिगत स्नेह' (Affection) में दोनों असूल समाजके अन्दर अधिकाधिक मजबूत होते जावेंगे, उतना उतना ही मनुष्यका 'व्यक्तित्व' भी

निस्सन्देह अधिकाधिक मजबूत होता जावेगा—व्यक्तित्व यानी शख्सीयतके अधिक मजबूत होनेका मतलब यह है कि हर व्यक्तिको वा हर प्राणीको इस बातका अधिकार होगा और उसमें इस बातकी इच्छा भी होगी कि वह अपने पृथक बाहरी स्वरूपको कायम रखे और उसे उन्नति दे, और इस प्रकार सम्मिलित जीवनकी समृद्धि और उसके आनन्दको बढ़ावे—किन्तु इसमें (आवश्यकतानुसार दूसरोंके) 'प्रतिकार' (Resistance) करनेका हक भी शामिल है, और फिर एक बार 'अप्रतिकार' के लफ्ज़ी मन्त्रको पीछे फेंकना पड़ता है।

किन्तु ये सब खयाल हमें बहुत अधिक दूर और अपने असली मजमूनसे अलग लेजारहे हैं। मैंने इन बातोंका जिकर खासकर यह दिखलानेके लिये किया है कि जबकि हम 'धर्म' (Morality) को 'समाज' का एक बुनियादी तत्व मानते हैं, हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि केवल यही एक तत्व नहीं है, और जबतक दूसरे तत्वोंके ऊपर इसकी कलम लगाकर उसको पूरा और समूचा न किया जावेगा तबतक वह मुकाबलेतन बेमतलब और बेफायदा रहेगा।

इसलिये 'नये धर्म' का तरीका होगा आदर्श वाक्यों और लफ्ज़ी असूलोंको कम करना और सिवाय बतौर मिसालोंके उनका बहुत ही कम उपयोग करना; और बच्चोंके—तथा बच्चोंके द्वारा धीरे धीरे तमाम नागरिकोंके - चारों ओर भरपूर जीवन और उमंडते हुए स्वास्थ्यकी ऐसी हालतें पैदा कर देना तथा ऐसी हालतोंमें उन्हें तरबीयत देना कि स्वभावसे ही उनकी हार्दिक सहानुभूति उनके चारों ओरके प्राणियोंतक बहने लगे, और उस स्वाभाविक सहानुभूतिद्वारा ही बड़े जोरोंके साथ वे समस्त समाजके इस महान् शरीरका अपने तईं केवल एक अंग अनुभव करने लगें—और फिर यह अनुभव उनमें केवल एक दिमागी असूल ही न रह जावे, बल्कि उनके भीतरका एक नित्य

स्थाई अनुभव और उनके अपने अस्तित्वका बुनियादी पत्थर बन जावे। इसीको तमाम शिक्षाकी बुनियाद बनाना चाहिये। हर-तरहकी आदतोंसे और मिसालोंसे बच्चोंके अन्दर यह अनुभव जागृत कर दीजिये कि दूसरोंको हानि पहुंचाना वा धोका देना अपनेको हानि पहुंचाना है, और दूसरोंकी सहायता करना एक न एक ढङ्गसे स्वयं अपने आन्तरिक जीवनको तृप्त करना और उसे अधिक पुष्ट करना है। बालकोंको इस ढङ्गसे शिक्षा दीजिये कि ज्यों ज्यों वे बड़े होते जावें त्यों त्यों इस बातको अनुभव करने लगें कि मनुष्यमात्रके अन्दर चाहे वह किसी भी जाति वा श्रेणीका क्यों न हो एक समान 'आत्मा' है और हर एकको अपने अपने विकासका पूरा अधिकार है—और कभी भी किसी इन्सानको केवल एक निर्जीव पदार्थ अथवा दूसरोंके उपयोगकी चीज नहीं समझना चाहिये। उन्हें जानवरोंको भी इसी दृष्टिसे देखनेकी शिक्षा दीजिये—उन्हें बताइये, कि जानवर भी जीव हैं जो धीरे धीरे सृष्टिकी महान् सीढ़ीके ऊपर चढ़ रहे हैं—उन जानवरोंके और हम मनुष्योंके अन्दर एक ही 'आत्मा' है और उनका और हमारा एकहीमें हित है। बालकोंको इस तरहकी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वे अपने तईं इस 'विश्व-व्यापी विराट शरीर' के योग्य और आवश्यक अङ्ग मानकर अपना भी मान रखना सीखें। इस प्रकार एक सच्चे 'धर्म'की स्थापना होगी—एक ऐसे धर्मकी स्थापना होगी जो आजकलके धर्मोंकी निस्बत कहीं अधिक गहरा, दूसरोंके हिताहित और उनके अधिकारोंका कहीं अधिक लिहाज रखनेवाला, भिन्न भिन्न अवस्थाओंके अनुसार अपने बाह्यरूपको आसानीसे बदल लेनेकी कहीं अधिक क्षमता रखनेवाला और कहीं अधिक सच्चा धर्म होगा, यानी एक ऐसा सरल बुद्धिसंगत धर्म जो सब किसीकी समझमें आसकेगा।

क्योंकि निस्संदेह हम कह सकते हैं कि 'धर्म' का यदि बिल्कुल सीधा और इस तरहका अर्थ किया जावे जो सम्पूर्ण

मनुष्यके अङ्गों, उसकी शक्तियों, क्रियाओं आदिके साथ धर्मके सम्बन्धको थोड़ा-बहुत दर्शा सके तो कहना होगा कि 'धर्म' केवल 'जीवनकी भरपूरता' (Abundance of Life) का नाम है। अर्थात् जब मनुष्यका आन्तरिक चैतन्य इतना भरपूर और इतना सजीव होजाता है कि उसकी सहानुभूति और उसकी क्रियाएं उसकी अपनी चार दिनकी जिन्दगी और व्यक्तिगत हिताहितके किनारोंको तोड़-फोड़कर चारों ओर बहने लगती हैं, तब इस अवस्थाको पहुंचकर ही मनुष्य 'धर्म' के मैदानमें कदम रखता है। इससे पेश्तर अर्थात् जबतक कि प्राणीके उस भीतरी जीवनका बहाव, जिसके अन्दर कि वास्तवमें रचनाकी शक्ति है, केवल निज शरीरतक ही परिमित रहता है तबतक या तो वह जीवन धर्म-अधर्म-शून्य रहता है जैसाकि पशुओंके अन्दर, अथवा केवल स्वार्थरत रहता है जैसाकि ऊपरकी उस पूर्ण अवस्थातक पहुंचनेसे पहले मनुष्यके अन्दर; किन्तु जब वह जीवन व्यक्तित्वकी सीमाको पार कर जाता है, तब स्वाभाविक तौरपर वह 'सामाजिक'रूप धारण करता है,और अपने पड़ौसीकी सहायता करने और उसके हिताहितका खयाल करनेकी ओर बढ़ता है। जिसकी समस्त शक्ति पहले अपने छोटेसे आपेके भरण और पोषणमें लगी रहती थी, वह अब अपनी सहायक शक्तियोंको अपने आसपासके दूसरे आपोंकी जिन्दगियोंमें चारों ओर फैला देता है। हकीकतमें इस भरपूर जीवनका शख्सीयतके किनारे तोड़कर चारों ओर बह निकलना ही सच्ची और स्वस्थ "परोपकार-वृत्ति" है। यह वह 'धर्म' है जिसका कोई शास्त्र नहीं, वह सदाचार है जिसकी कोई नियत प्रणाली नहीं, और जो सौभाग्यवश परिमित कर देनेवाले लफ्जी नियमोंके बन्धनसे आजाद है *।

* हकीकतमें यह 'धर्म' हजरत ईसाके अनेक उपदेशोंमें आजाता है; किन्तु यह एक विचित्र बात है कि ईसाई-सम्प्रदायोंने कभी भी

और यदि फिर यह ऐतराज किया जावे कि इस तरहका 'धर्म' जो केवल एक असूल और एक भावके आधारपर ही कायम है खतरनाक है, तो हमें एक लमहेके लिये ठहरकर इस बातपर विचार करना चाहिये कि वह धर्म जो लफ्जी नियमोंके आधारपर कायम है इसकी निस्बत कितना ज्यादह खतरनाक है। यदि वह धर्म जिसका कोई लिखा हुआ शास्त्र नहीं है, एक खतरनाक चीज है तो इससे कितनी ज्यादह खतरनाक चीज वह धर्म है जिसे किसी शास्त्रके अन्दर कीलोंसे ठोककर बन्द कर दिया गया हो! क्योंकि पुराने इतिहासके पन्ने लौटनेसे प्रायः यह मालूम होता है कि इस 'स्याह' और 'सफेद' धर्मने, इस 'यह बात बुरी' और 'वह बात अच्छी' वाले धर्मने संसारमें सबसे ज्यादह दुराचार किये और कराये हैं। इस तरहका धर्म ही तमाम ऐसे ऐसे अत्यन्त शैतानी कृत्यों और जबरदस्त अत्याचारोंके लिये एक बहाना रहा है जिनका कि अनुमान कर सकना भी कठिन है। एक लफ्जी नियम 'रविवार'के लिये, एक लफ्जी नियम 'जादूगरनियों' को पकड़ पकड़कर मार डालनेके लिये*एक ईसाई 'विवाह'का रूखा नियम (असली इन्सानी सम्बन्ध बिल्कुल खयाल न करते हुए), एक निर्दय नियम 'चोरी' के सम्बन्धका लिये (चोरकी भयङ्कर नादानी और उसकी जरूरतका बिल्कुल खयाल न करते हुए)—और इन सब नियमोंका परिणाम, लाखोंका जिन्दा जलाया जाना, लाखोंको फांसी और लाखोंको तरह तरहकी पीड़ाओंका दिया जाना, जिसमें दयाके लिये कोई गुंजाइश ही नहीं! इस 'पाप'और 'पुण्य' वाले धर्मकी

संजीदगीके साथ इसे नहीं अपनाया। और पशुओंके अन्दर स्वतन्त्र जविन यानी उनके अन्दर भी आत्माके अस्तित्वके विषयमें तो, मैं समझता हूं कि 'रोमन कैथोलिक' सम्प्रदाय इसका स्पष्ट खण्डन करता है।

* एक प्राचीन यूरोपियन प्रथा जिसके अनुसार हजारों बेगुनाह औरतें पकड़ पकड़कर जिन्दा जला दी गई—अ०।

भयङ्करता केवल इतनेमें ही नहीं है कि यह अपने फर्जी अपराधियोंके साथ इस तरहका अमानुषिक व्यवहार करा डालता है; बल्कि इसकी सबसे अधिक भयङ्करता इस बातमें है कि यह अत्याचार करनेवाले और अत्याचार पीड़ित दोनोंके अन्दर दो तरहके गलत विचार जमा देता है; एक यह कि एक खास काम पाप है वा पुण्य है और दूसरा यह कि मनुष्यका कर्त्तव्य केवल अपने लिये निजात हासिल करना है—ये दोनों विचार सच्चे "धर्म" के बिल्कुल विरुद्ध हैं। किसी लड़केने एक लफ्ज़ी झूठ बोला—शायद डरकी वजहसे, शायद भूलसे वा बेपरवाहीसे उसने एक लफ्ज़ी नियमको तोड़ा और फौरन् बेत ठोंक दिये गये। यह 'धर्म' हुआ। इसके बाद वह लड़का सदा लफ्ज़ी सचाईका खयाल रखेगा, चाहे वह सचाई कितनी भी नीच और कपटयुक्त क्यों न हो, और एक पक्के दम्भीकी तरह अपनेसे सदा सन्तुष्ट रहेगा;किन्तु वह कभी भी इस बातको न समझेगा कि सच और झूठका महत्व शब्दोंमें नहीं, बल्कि उस विश्वास और उस एक दूसरेके ऐतबारमें है जिसे या तो वे शब्द कायम करते हैं और या जिसका वे नाश कर डालते हैं। अंगरेजोंमें खासकर 'ड्यूटी' (Duty अर्थात् कर्त्तव्य) शब्दकी जिस तरह अंधी उपासना की जाती है उसपर भी ठीक यही ऐतराज आयद होता है। "नरगिसके फूल जब सड़ने लगते हैं तो उनमें मामूली घाससे कहीं ज्यादा दुर्गन्ध आती है।" ऐसे ही 'ड्यूटी' (कर्त्तव्य) का वह भाव और उसका वह पालन जिसके सच्चे जोशमें आकर मनुष्य अपने आपेको भूल जाता है, यद्यपि एक अत्यन्त गौरवान्वित भाव है, तथापि जिस समय वह भाव इस तरहके फिकरोंमें जाहिर किया जाता है जो अनेक बार सुननेमें आते हैं, जैसे—"मैंने अपनी ड्यूटी पूरी कर दी, मैं बिलकुल ठीक हूं!" "मैं अपनी ड्यूटी पूरी करूंगा, तुम्हारा चाहे कुछ भी हो" तो 'ड्यूटी' जैसा गौरवान्वित भाव भी

हकीकतमें एक नफरत दिलानेवाली चीज होजाता है। क्या इस प्रकारके वाक्योंसे बढ़कर मनुष्य-समाजको अलग अलग फाड़ देनेवाली, उसके टुकड़े टुकड़े करके खुदपसन्द व्यक्तियों-की एक कूड़ीमें उसे निश्चितरूपसे बदल देनेवाली किसी दूसरी चीजका अनुमानतक किया जासकता है? जज़, उस अभागी जवान लड़कीसे, जिसने नैराश्यके कारण क्षणिक बदहोशीकी हालतमें आकर अपने नन्हे बच्चेको नदीमें गिरा दिया, कहता है—"मेरी यह दर्दनाक 'ड्यूटी' है कि तुम्हें यह सजा दूं कि जिस समयतक तुम्हारा दम न निकल जावे तुम्हारे गलेमें फांसी लगाकर तुम्हें लटका दिया जावे।" जजका असली मतलब यह है कि जबकि वह उस "कानून" की भयंकर अमानुषिकताको पूरी तरह पहचानता है जिसके अनुसार फैसले करनेकी उसने कसम खारखी है, और जबकि वह इस बातको भी पूरी तरह जानता कि उसके इस हुकुमका लड़कीकी आत्मापर कितना नाशक प्रभाव पड़ सकता है, तथापि उस "कानून" को उल्लंघन करनेके बुरे नतीजेसे यानी उसके खतरेसे अपने तईं बचानेके लिये, वह उस लड़कीको मौतकी सजा देनेके लिये राजी है और तैयार है। धर्मपरायण ईसाई 'इन्कीजीटर' * विधर्मी मनुष्यसे कहता है—"तुम्हें जिन्दा जला देना मेरी 'ड्यूटी' है।" असलमें उसका मतलब यह है कि, "मुझे डर है कि यदि मैंने तुम्हें न जलाया तो परलोकमें मैं खुद जलाया जाऊंगा।"

* 'इन्कीजीशन' यूरोपियन ईसाई धर्माचार्योंकी वह धार्मिक अदालत होती थी जिसके द्वारा १३ वीं सदीसे लेकर १८ वीं सदीतक बल्कि कहीं कहीं १९ वीं सदीतक लाखों ही मनुष्य यूरोप वा विविध देशोंमें केवल गैरईसाई होनेके अपराधमें वा ईसाई मतके खास खास सिद्धान्तोंको न माननेके अपराधमें जिन्दा जला दिये गये, यह अदालत रोममें अभीतक मौजूद है—अ०।

इस तरहके 'धर्म' का जितनी जल्दी खात्मा कर दिया जासके उतना ही अच्छा है—अर्थात् उस धर्मका जोकि सार्व-जनिक लाभ और सार्वजनिक हितकी ओटमें केवल शख्सी तरक्की और शख्सी फायदेकी ही चिन्तामें लगा हुआ है चाहे वह तरक्की और वह फायदा इस दुनियामें हो और चाहे दूसरी दुनियामें हो, और जो वास्तवमें मनुष्य-जातिकी अखण्डता और प्रेमको बढ़नेवाला नहीं बल्कि उसका नाश करनेवाला है। यही धर्म और यही सदाचार है जिसके अनुसार हमलोग अपने घरके नौकरोंको बन्धी हुई तनखाहें देकर बिलकुल सन्तुष्ट होकर बैठ जाते हैं और आशा करते हैं कि उसके बदलेमें वे लोग अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे, किन्तु उनकी इन्सानी जरूरतों और उनके असली हितका कुछ भी खयाल नहीं करते; जिसके अनुसार हम अपने यहांके मजदूरोंको केवल एक प्रकारकी मशीनें समझते हैं, जिनमेंसे हमें अपने लिये मुनाफे पीस पीसकर निकाल लेने हैं; और यदि वे इस तरहके सलूकका मुकाबला करने लगते हैं तो हम गम्भीरताके साथ भौं ऊपरको चढ़ाकर उनके ऐसा करने-पर आश्चर्य प्रकट करते हैं; जिसके अनुसार एक मुजरिम केवल वह शख्स है जिसने कोई लफ्ज़ी नियम तोड़ा है और जिसे बदलेमें एक लफ्ज़ी कानूनके मुताबिक ही जरूर सजा मिलनी चाहिये; और जिसके अनुसार सुअर एक ऐसा जानवर है जिसे आप मुनासिब चारा देते हैं और जिसके बन्द होनेके लिये एक हाता मुहय्या करते हैं और इसके बदलेमें जिसे खाजानेका आपको हक है; यही धर्म और यही सदाचार है जो आजकलके समस्त मनुष्य-समाजके नीचे नीचे उसकी जड़ोंमेंसे एक जहरीले चश्मेके सामान बह रहा है और चारों ओरको रिस रहा है और जिसने मानव-स्नेहके समस्त स्रोतोंको जहरीला कर दिया है। यह प्रचलित सदाचार, जो रियाकारी, खुदपसन्दी और खुद-गरजीसे भरा हुआ, हद दर्जेका अनात्मवादी, और अपने ध्येयकी

दृष्टिसे वास्तवमें अन्धा और बदहोश है, निस्सन्देह मनुष्य-समाजके लिये एक बहुत ही गहरे खतरेकी चीज है। कविका कहना है—

तू चोरी न करेगा—व्यर्थका उपदेश है, जबकि धोखा देनेसे इस कदर धनका लाभ है।

शास्त्रके भीतर रहो, लफ्ज़ी नियमोंके अनुसार रहो; सदा लफ्ज़ी सचाई बोलो (चाहे उससे किसीको भी नुकसान क्यों न पहुंचे); विवाह और पुरुष-स्त्रीके सम्बन्धके प्रचलित नियमोंका पालन करो (चाहे दिलोंसे खून बह रहे हों और उनका सर्वनाश होरहा हो); लोगोंकी वैयक्तिक सम्पत्तिका पूरा लिहाज रखो, इत्यादि ; और तसल्ली रखो, कि तुम समाजके एक स्तम्भ समझे जाओगे। किन्तु इस सबके करते हुए भी बहुत सम्भव है कि तुम उसी समाजको बराबर भीतरसे खोखला और अत्यन्त पतित करते जारहे हो। तुम्हारी दृष्टि केवल ऊपर की सतहपर पड़ती है, जबकि भीतरकी गहरी बीमारीकी ओरसे तुमने जान-बूझकर आखें फेर ली हैं।

निस्सन्देह "नया धर्म"—जो हमें अपने भीतर नजर डालकर देखनेके लिये कहता है, जिसका मतलब है दूसरोंकी जरूरतोंको लगभग वैसे ही स्वाभाविक ढंगसे अनुभव करना और उनकी ओर ध्यान देना, जैसाकि अपनी शख्सी जरूरतोंकी ओर, जो हमें बताता है कि किसी भी चीजको बजात खुद हरगिज अच्छा वा बुरा नहीं समझना चाहिये, और प्राणीमात्रको, जिनमें हम खुद भी शामिल हैं, एक समान महत्व रखनेवाली आत्माएं समझना चाहिये और किसीको भी दूसरोंकी वैयक्तिक उन्नति वा लाभ वा दूसरोंकी यश-वृद्धिका केवल साधन कदापि नहीं समझना चाहिये;—यह "नया धर्म" जबकि निस्सन्देह अधिक कुदरती है, एक अर्थमें अधिक कठिन भी है; क्योंकि उसमें दैनिक आचार-व्यवहारका कोई गढ़ा-गढ़ाया आदर्श वा नियम

मनुष्यके सामने नहीं रख दिया जाता। किन्तु निस्सन्देह इस नये धर्मके ग्रहण किये जानेका समय आगया है। यही वह धर्म है जो भावी मनुष्य-समाजके उन असंख्य रूपों और अगणित संस्थाओंके अन्तर्गत होगा जो आजकलकी संस्थाओंकी निस्बत कहीं अधिक स्वतन्त्र और कहीं अधिक भिन्न भिन्न रूपोंकी होंगी, और इस पुरानी प्रणालीकी गन्दगीसे बचनेका यही एकमात्र उपाय है।

अब हम खास खास बातोंके उदाहरण लेकर देखते हैं। हम सब इस बातको महसूस करते हैं कि 'सचाई'—जबानकी सचाई और कार्यकी सचाई—अत्यन्त जरूरी है, अत्यन्त मौलिक है। 'सचाई' ही वह बुनियाद है जिसके आधारपर हम दूसरोंको ठीक ठीक समझ सकते हैं जिसका कि मैं ऊपर जिकर कर आया हूं। 'सचाई' ही अपने तईं दूसरोंपर प्रकट करने और दूसरोंको स्वयं पहचाननेकी बुनियाद है। कोई भी मनुष्य, जिसके अन्दर एक सच्चे समिलित जीवनका अनुभव कूट कूटकर भरा हुआ होगा, जरूरी तौरपर 'सचाई'का बहुत जबरदस्त लिहाज रखेगा। वह दूसरोंके 'जीवन', उनके 'माल', उनके यश और उनके स्नेहों ,आदिका भी पूरा पूरा लिहाज रखेगा, और ठीक उतना ही लिहाज वह इसी तरहकी अपनी चीजों और अपने गुणोंका रखेगा। वह बतौर एक लफ्जी नियमके यह न कह सकेगा कि मैं कभी भी किसी दूसरेको धोका न दूंगा (अर्थात् झूठ न बोलूंगा),मैं कभी भी किसी दूसरे मनुष्यकी वा पशुकी जान न लूंगा (हत्या न करूंगा),इत्यादि। क्योंकि वह जानता है कि कभी कभी ऐसे मौके आजाते हैं जबकि वही 'व्यापक जीवन' जो दूसरोंके अन्दर है उसके अपने अन्दर जागृत होकर, अथवा उसकी अपनी ही कोई जबरदस्त और अटल जरूरत, इन दोनोंमेंसे कोई भी चीज उसे ऐसे काम करनेकी आज्ञा दे या उनके करनेपर मजबूर करे; तथापि वह

अपनी रोजमर्रहकी जिन्दगीमें इन नियमोंके अन्तर्गत सिद्धान्तोंका सच्चा पालन करेगा, और शायद इन नियमोंके शब्द जितना चाहते हैं उससे भी कहीं बढ़कर और कहीं अधिक पूरी तरहसे पालन करेगा।

यही बात ब्रह्मचर्य जैसे अन्य मामलोंके विषयमें ठीक है। अनेक लोग 'लेडी-गौडिवा नुमायशों' और जीवित (नंगी) मूर्त्तियोंके खिलाफ जोरोंसे अपनी आवाजें उठाते हैं—साफ वजह यह है कि लोगोंको डर है, ये चीजें काम-वासनाको जगाती हैं। इसमें सन्देह नहीं इन चीजोंका इस तरहका असर होसकता है। किन्तु हम पूछते हैं कि लोग काम-वासनाके जागनेसे इतना क्यों डरते हैं, जबकि आखिरकार मनुष्य-जीवनरूपी रथकी चलानेवाली ये ही महान् शक्तियां हैं ? इस डरनेका कारण भी साफ है। लोग इसलिये डरते हैं; क्योंकि वे समझते हैं कि उनके अन्दरकी वे दूसरी शक्तियां, जिनका काम इन वासनाओंकी रहबरी कर उन्हें ठीक रास्तेपर और एक हितकर और उपयोगी दिशामें लेजाना है, अत्यन्त कमजोर हैं। और लोगोंका यह समझना ठीक भी है। हमारे आजकलके समाजके अन्दर वासनाओं और भावनाओंको ठीक रास्ता बतानेवाली और उन्हें काबूमें रखनेवाली शक्तियां कमजोर हैं, और इसलिये कमजोर हैं क्योंकि इन शक्तियोंका सारा अस्तित्व इस समय आचार-व्यवहारके कुछ थोड़ेसे ऐसे प्रचलित लफ्जी नियमोंतक परिमित है जो शीघ्रताके साथ भीतरसे खोखले होते जारहे हैं। आजकल हमारी वासनाओंकी हालत एक ऐसे बायलरके अन्दरकी बढ़ती हुई भाफके सामने है जिस बायलरको पहलेहीसे जंगने खा-रखा है। इलाज वासनाओंको काट डालना वा निर्बलोंकी तरह उनसे डरते रहना नहीं है, किन्तु असली इलाज 'सामान्य धर्म' और विवेकके एक ऐसे नये, मजबूत और तन्दुरुस्त एञ्जिनका

पता लगाना है जिसके अन्दर वे वासनाएं काम करती रहें। यही हमें भविष्यमें करनेकी कोशिश करनी चाहिये।

यह धर्म, सम्मिलित सामाजिक जीवनका यह प्राकृतिक और मार्मिक धर्म, जिसका एक प्रकारसे सामाजिक शरीरके अंग-प्रत्यंगों और उनकी अलग अलग क्रियाओंके ठीक ठीक चलते रहनेसे अत्यन्त गहरा सम्बध है, जिस धर्मका मतलब यह है कि समाजका हर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियोंकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए तेजीके साथ अग्रसर होता रहे और जो धर्म सामाजिक शरीरके लिये लगभग वही अर्थ रखता है जो कि इस भौतिक शरीरके लिये 'तन्दुरुस्ती' रखती है—यह धर्म ही भविष्यके मनुष्य-समाजोंके अन्तर्गत होगा और इसी धर्मकी नीवँपर वे समाज कायम होंगे। आजकल बचपनसे लेकर हजारों स्वाभाविक प्रवृत्तियां, हजारों इच्छाएं और हजारों तरहकी काबलीयतें हमारे अन्दर दफनाई हुई पड़ी रहती हैं; हमने इसलिये उन्हें छिपा रखा है और इसीलिये हम लगातार उनकी उपेक्षा करते रहे हैं क्योंकि हम उन्हें बुरा अथवा अयोग्य समझते थे; किन्तु असलीयतमें उन्हें केवल अपनानेकी जरूरत थी; अपनाये जानेपर ही उन्हें स्वस्थ बननेका मौका मिलता; अपनानेका असली मतलब यह है कि एक दूसरेके मुकाबलेमें और उनसे विरुद्ध जानेवाली या उनकी कमीको पूरा करनेवाली अन्य प्रवृत्तियों आदिके मुकाबलेमें उनके तारतम्यको ठीक करके 'सम्पूर्ण मनुष्य-चरित्र' के अन्दर उन्हें अलग अलग उचित स्थान दिया जाता; अब 'नये धर्म' का काम मनुष्यकी इन हजारों प्रवृत्तियों, इच्छाओं और काबलीयतोंको इन बन्धनोंसे मुक्त करना होगा। जैसा मैं ऊपर कह चुका हूं, मनुष्यके भीतरकी समस्त भावनाओं आदिको स्वीकार करने, सबको अपनाने और सबको ही बन्धन-मुक्त करनेवाले इस नये 'धर्म' पर न केवल अनेक पहलुओंवाले नये व्यक्तित्वके अधिक प्रबल प्रकाशकी

कलम लगाना ही सम्भव होगा बल्कि उसपर उस वैयक्तिक स्नेहके अधिक उच्च, अधिक विभिन्न विविध और अधिक सुन्दर जीवनकी कलम लगाना भी सम्भव होगा जोकि दुर्भाग्यवश इस समय जख्मी और अधमरा पड़ा हुआ है। मैं समझता हूं कि इस नये 'धर्म' के स्थापित होनेके साथ साथ वह समाज मैदानमें आवेगा जो व्यक्तिगत स्नेह और प्रेमको आजाद कर देगा जिन्हें इस समयतक जबरदस्ती और जान-बूझकर नाकारा करके रखा गया है, क्योंकि उनके आजाद छूटनेसे हमारे आज-कलके लफ्ज़ी नियमोंवाले धर्मकी धज्जियां उड़ जातीं। मैं समझता हूं कि इस नये 'धर्म' के साथ साथ जो समाज अस्तित्वमें आवेगा उसका मुख्य उद्देश्य आजकलके समान 'रोटी' के लिये कशमकश करना न होगा (क्योंकि धन पैदा करनेकी हमारी शक्तियां इतनी बेहद बढ़ गई हैं कि इसका कोई प्रश्न ही उस समय न उठ सकेगा), वरन् उस समाजका मुख्य उद्देश्य मानव-"हृदय" को तृप्त करना होगा—इस प्रकार निस्सन्देह नई और अनसुनी कठिनाइयां और नये तथा अनसुने कष्ट हमारे सामने आ उपस्थित होंगे, तथापि मनुष्य-जीवन ऐसे सुन्दर पदार्थोंसे भर जावेगा कि लोभ, लालच और नीच बना देनेवाली धनलोलुपता आदि प्रवृत्तियां जिनके नीचे इस समय संसार बेदर्दीके साथ दबा हुआ है. 'भूत' कालके एक ऐसे डरावने स्वप्नके समान रह जावेंगी जिनसे प्रभातका उजाला हमें आकर निजात देदेता है।

तीसरा अध्याय

रिवाज

"जो बात रिवाजके खिलाफ है वह अकलके भी खिलाफ मान लीजाती है; अगरचे परमात्मा ही जानता है कि इस तरह मान लेना अधिकतर हालतोंमें कितना अकलके खिलाफ होता है।"

—मौण्टेन* ।

हर इन्सान तरह तरहके रिवाजोंके मानो एक खोलके अन्दर पैदा होता है और जिन्दगीभर उनमें ठीक इस तरह लिपटा रहता है जिस तरह एक दुधमुंहा बालक अपने पोतड़ोंमें लिपटा रहता है। सबसे पहले जिस घरानेमें किसी बालकका जन्म होता है उस घरानेके मजहबी तथा अन्य रिवाज उसे बिल्कुल अटल और नित्य-स्वरूप मालूम होते हैं। बालक निस्सन्देह यही समझता है कि समस्त संसार अनादि कालसे उन्हीं तरीकों-पर चलता आया है जो तरीके उसके अपने नन्हेसे जीवनके चारों ओर देखनेमें आते हैं। वह इन नियमोंके उल्लंघनको (कमसे कम उनमेंसे कुछके उल्लंघनको) बेदेखे-भाले अन्धेरेमें कूद पड़नेके समान समझता है, जिससे न जाने क्या क्या बेजानी आपत्तियां आन खड़ी हों।

तथापि बालककी मानसिक आंख अभी पूरी तरह खुली भी नहीं होतीं कि वह यह देखकर चकित रह जाता है कि जब उसके घरकी भोजनशालामें हमेशा पहले सलूना परोसा जाता है और पीछे मीठी चीज, मकानके नीचेकी मंजिलमें और पासके झोंपड़ेमें न जाने क्यों मीठी चीज पहले परोसी जाती है और

---

* १५३३—१५९२, फ्रान्सका एक सुप्रसिद्ध विद्वान् और लेखक।

सलूना बादमें; ऐसे ही, जबकि बालकका बाप मौसम बहारमें नीचे बीजके आलू लगाता है और उनके ऊपर खाद डालता है, पासका पड़ौसी सदा खाद नीचे रखता है और आलू ऊपर बोता है। इन सब बातोंको देखकर अपने घरके जीवनकी निर्भ्रान्तता और चीजोंकी सचाईके विषयमें बालकका समस्त विश्वास उलट-पलट होजाता है। फिर वह सोचता है कि निस्सन्देह भोजन करनेका अथवा आलू बोनेका कोईसा एक तरीका ठीक और दूसरा गलत जरूर होगा, और निस्सन्देह यदि कोई भी उन असली तरीकोंको जानता है तो "पिता" वा "माता" जरूर जानते होंगे। हमारे बड़े लोग हमेशासे यही कहते चले आये हैं (और हकीकतमें बात भी अकलकी मालूम होती है) कि दुनिया इतने दिनोंसे चली आरही है और हर काम इतनी अच्छी तरहसे देख-भाल लिया गया है कि जीवनकी व्यवस्था करनेके जो अच्छे से अच्छे तरीके होसकते थे वे बहुत दिन हुए निश्चित होचुके हैं—जैसे, खानेके तरीके, पहरने-के तरीके, घरके काम-काजके तरीके, मिलने-जुलनेके तरीके, इत्यादि। किन्तु यदि यही है तो सीधीसे सीधी और साफसे साफ बातोंमें इतनी भिन्नता क्यों दिखाई देती है ?

और फिर धीरे धीरे और और बातोंपरसे भी मनुष्यका विश्वास हटता जाता है। वे पवित्र रिवाज जिनमें हम पले थे और जिनके विषयमें उस समय हम यह समझते थे कि सब जगह ऐसे ही रिवाज होंगे, अब मालूम होता है कि वे केवल एक छोटीसी तंग जाति वा एक छोटीसी श्रेणीके लोगोंके ही रिवाज हैं; या यह पता चलता है कि वे एक अत्यन्त महदूद जगहके ही रिवाज हैं, और ज्यों ही हम सफरके लिये बाहर निकलते हैं त्यों ही उन रिवाजोंको पीछे छोड़ना पड़ता है; अथवा यह कि वे एक छोटेसे धार्मिक सम्प्रदायके मन्तव्योंसे ही सम्बन्ध रखते हैं; अथवा वे इतिहासमें केवल एक खास जमानेकी पैदा-

यश हैं किसी दूसरे जमानेकी नहीं। और फिर यह सवाल ज़बरदस्ती हमारे सामने आता है कि क्या वास्तवमें भिन्न भिन्न रिवाजोंके बीच कोई कुदरती हदबन्दियां नहीं हैं? क्या मनुष्यका जीवन कहीं भी अक्ल और जरूरतके आधारपर कायम नहीं है, बल्कि केवल जहां जैसा इतफाकन रिवाज पड़ गया वहां वैसा ही होने लगा? भोजनसे ज्यादह महत्वकी और क्या चीज होसकती है? किन्तु शायद इन्सानकी किसी भी बातमें इतने तरह तरहके रिवाज नहीं मिलते जितने कि भोजनके विषयमें, और इस भिन्नताका कोई कारण भी समझमें नहीं आसकता। स्काटलैण्डके पहाड़ी जिलोंके रहनेवाले जईके आटे (Oatmeal) की रोटी खाकर खूब तन्दुरुस्त रहते हैं, किन्तु इङ्गलैण्डके शैफील्ड नगरमें लोहेका काम करनेवाला मजदूर चाहे भूखा मर जायगा लेकिन जईकी रोटी न खायेगा। मोटा घोंघा (एक तरहका कीड़ा) जिसकी किसी समय रोम नगरके आसपासके कस्बोंमें भोजनके लिये बड़ी भारी कदर कीजाती थी; अब इङ्गलैण्डके ग्लौसेस्टरशायर जिलेमें बागोंके अन्दर फिरता है और कोई उसे छूतातक नहीं। खरगोश और जगह खाये जाते हैं और जर्मनीमें सख्त मना हैं। मेंढकोंको खानेका इङ्गलैण्डमें कोई नाम भी नहीं लेसकता। जर्मनीमें एक तरहके गोभीके अचार (Sauer-krout) का रिवाज है जिससे फ्रान्समें बड़ी नफरत कीजाती है। बहुतसी कौमों और जातियोंको इस बातका पूरा यकीन है कि यदि उन्हें मांस खानेको न मिले तो वे मर जावें, दूसरी कौमें हैं जो यह समझती हैं कि किसी न किसी तरहकी शराब उनके लिये जरूरी है, जबकि कुछ ऐसी कौमें भी हैं जो इन दोनों चीजोंको हराम समझती हैं। इंगलैंडके हर जिलेके गांवोंमें भोजनके विषयमें अलग अलग स्थानीय रिवाज पड़े हुए हैं, किसान लोग किसी भी नई तरहके खानेको बहुत बड़े सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं, और बहुत ही

मुश्किलसे उन्हें कभी किसी दूसरी तरहके खानेको अपने यहां अख्तियार कर लेनेपर राजी किया जासकता है। अगरचे यह बहुत अच्छी तरहसे साबित होचुका है कि ब्रिटेनमें पैदा होनेवाली अनेक तरहकी फञ्जी (गुच्छी, सांपकी छतरी वा कुकरमूताकी किस्मकी पैदावार) खानेके लिये बहुत ही उपयोगी है तथापि रिवाजका जोर इतना जबरदस्त है कि उन सबमेंसे केवल एक मशरूम फञ्जी ही खुले तौरपर खानेके काममें लाई जाती है, जबकि यह काफी विचित्र बात है कि, कहा जाता है, दूसरे कई देशोंमें और कई तरहकी फञ्जियां खाई जाती हैं, किन्तु मशरूम ही नहीं खाई जाती! अन्तमें कीड़ों (Insects) से हम लोगोंको इतनी गहरी नफरत है कि मैं तो ऐसा अनुभव करता हूं (और शायद मेरे कोमल-हृदय पाठक भी ऐसा ही अनुभव करते होंगे) कि कीड़े खाकर जीनेकी निस्बत मैं मर जाना ज्यादह पसन्द करूंगा। तथापि यह बात मशहूर है कि कई बाइज्जत कौमें (जैसे चीनी) कीड़े खाती हैं, और हालहीमें एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसमें इस तरहके बढ़िया भोजनोंका मुफस्सिल हाल दिया हुआ है जिन्हें आम तौरपर आदतकी वजहसे हम नजरअन्दाज कर देते हैं—जैसे झाञ्झा (केटर पिलर), भौंरा (बीटल) इत्यादि कीड़ोंके लजीज लुकमें! और निस्सन्देह जब हम सोचने लगते हैं तो मालूम होता है कि सिवाय तआस्सुब वा पक्षपातके और कोई वजह नहीं होसकती कि हम पानीके कीड़े पेरी विङ्किल (एक तरहकी छिलकेदार मछली) को तो खाजावें और जमीनके घोंघाको छोड़ दें अथवा चलतेफिरते प्रौन (Prawn एक तरहका कीड़ा) को तो इस कामके लिये कदर करें और खुशीसे फुदकते हुए टिड्डेका खाना मना समझें।

यह जवाब देना बेफायदा है कि इन स्थानीय तथा अन्य रिवाजोंकी भिन्नताका मूल कारण अलग अलग स्थानों वा अलग

अलग जमानेकी अलग आवश्यकताएं हैं। यह बात नहीं है। अधिकतर ये सब केवल रिवाज पड़ गये हैं,मुमकिन है कि शुरूमें इन रिवाजोंकी बुनियाद किसी आवश्यकताके कारण पड़ी हो, किन्तु अब वे केवल आदतके कारण और मनुष्यकी स्वाभाविक काहिलीके कारण जारी हैं। शायद इसकी सबसे अच्छी मिसालें मनुष्य-समाजसे नीचे उतरकर पशुओंमें मिल सकती हैं। यदि मनुष्योंमें रिवाजका जोर है तो पशुओंमें उनका इससे कहीं ज्यादह जोर है। भेड़ घास खाकर रहती है और बिल्ली चूहे खाकर तथा और तरह तरहका गोश्त खाकर रहती है। और आम तौरपर यह समझा जाता है कि भेड़के लिये घास और बिल्लीके लिये गोश्त ही उनका सबसे अधिक "स्वाभाविक" आहार है, इन्हींपर ये दोनों तरहके जानवर सबसे आसानीके साथ मोटे-ताजे होसकते हैं और वास्तवमें वे किसी दूसरी तरहके आहारपर अच्छी तरह न जीसकेंगे। किन्तु बात ऐसी नहीं है। बिल्लियोंको प्रायः बिलकुल गोश्त न देकर जईकी रोटी (Oat Meal) और दूधपर रखा जासकता है और उसीकी उन्हें आदत डाली जासकती है; और हमें एक भेड़का हाल मालूम है जो पोर्ट वाइन (शराब) और बकरीके गोश्तकी चाप (कबाबकी किस्म) पर बड़े मजेसे रहती रही। कुत्ते जब जंगली हालतमें रहते हैं तो उनका "स्वाभाविक" आहार गोश्त है। किन्तु कमसे कम पालतू हालतमें इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि कुत्तोंको आटेकी बनी हुई चीजोंपर रखा जावे और गोश्त बहुत ही कम या बिल्कुल ही न दिया जावे तो वे कहीं ज्यादह तन्दुरुस्त रहते हैं। और निस्सन्देह कुत्ते इतने मजेमें फल-फलेरी खाने लगते हैं कि जब एक बार उन्हें आदत पड़ जाती है तो कभी कभी बागोंकी कियारियोंमेंसे आजादीके साथ स्ट्राबरी, रसभरी, मटर वगैरह खाडालते हैं और बहुत नुकसान करने लगते हैं। इस विषयमें जंगली जानवरोंकी आदतें बहुत ही

सख्त और संकीर्ण होती हैं और कोई भी जानवर चाहे मर जावे किन्तु भोजनके विषयमें अपनी जातिके रिवाजका उल्लंघन कभी नहीं करता; जिस तरह कि सर्दियोंमें, जब जमीन बरफसे ढकी होती है, तीतर बूटियोंकी जड़ें (Ferm roos) खाकर रह जाता है किन्तु जंगली मुर्ग "जड़ें नहीं खाता" और भूखा मर जाता है। कोई भेड़िया यदि छान-बीन करनेवाले स्वभावका हो तो शायद उसे भी स्ट्राबरी और मटर ऐसी ही अच्छी खानेकी चीजें मालूम होंगी जैसी कुत्तेको, किन्तु इसमें प्रायः कोई भी शक नहीं कि यदि किसी भी मामूली भेड़ियेको एक ऐसे बागमें छोड़ दिया जावे जिसमें स्ट्राबरी और मटरकी फलियां हुई हों किन्तु जिसमें हड्डियां, जिनके खानेकी उसे आदत है बिल्कुल न हों तो वह भूका मर जावेगा। तथापि वास्तवमें इसके बरअक्स जिस किसी मनुष्यने भी कभी बहुतसे जानवर पाले हों वह जानता है कि जानवरोंको कितनी आश्चर्य-जनक और भिन्न भिन्न तरहके खाना खानेकी आदतें डलवाई जासकती हैं।

इस सबसे यही जाहिर होता है कि मनुष्यों और पशुओं, दोनोंकी जिन्दगीमें केवल रिवाज वा आदत एक कितनी जबर-दस्त ताकत है। मनुष्य जो पशुओंको अपने काबूमें कर लेता है उसका एक मुख्य रहस्य यही है कि वह उनमें इस तरहकी आदतें पैदा कर देता है कि जहां एक वार वे आदतें कायम होगईं, फिर पशुओंको कभी उन आदतोंके खिलाफ जानेकी नहीं सूझती। अब यदि जानवरोंके अन्दर रिवाजकी ताकत इस प्रकार करीब करीब अजेय है तो इसीसे यह भी अनुमान किया जासकता है कि मनुष्यके जीवनमें भी इस ताकतका कितना जबरदस्त असर होना चाहिये।

निस्सन्देह आहारके विषयमें मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है उससे मेरा यह मतलब हरगिज़ नहीं कि कुत्ते और भेड़के अलग

अलग मेदे आदिकी बनावटमें किसी तरहका फरक नहीं है, अथवा यह कि कुत्तेका शरीर भेड़के शरीरकी निस्बत एक खास तरहके खानेके लिये अधिक उपयुक्त नहीं है; किन्तु मेरा मतलब यह है कि इस तरहके मामलोंमें हमें केवल आदतके महत्वको भी कुछ कम नहीं समझना चाहिये। जानवरोंके अन्दर पहले रिवाज बदलता है, बादमें धीरे धीरे शरीरके अङ्गोंकी बनावटमें तब्दीली होती है। असली क्रम गालिबन् करीब करीब इस प्रकार था। अत्यन्त प्राचीन कालमें किसी समय कुछ जानवर शायद जरूरतसे मजबूर होकर, झुण्ड बना बनाकर जङ्गलोंमें शिकार करने लगे ; नतीजा यह हुआ कि इस आदतके अनुसार उनके शरीरोंकी बनावट भी धीरे धीरे बदलकर एक खास तरहकी होगई और उन्हें खास तरहकी ही आदतें पड़ गईं जो धीरे धीरे जानवरोंकी उस जाति वा श्रेणीके अन्दर खूब गहरी जम गईं। कुछ दूसरे जानवरोंने घास चरनेकी आदत डालकर अपनी जान बचाई। घासमें आहार बहुत कम होता है, किन्तु इस समूहके जानवरोंको इतफाकसे यही एक तरीका जीवित रहनेका मिला, और धीरे धीरे उन्हें घास खानेकी इतनी पक्की आदत पड़ गई कि अब वे किसी दूसरी तरहके आहारका अनुमान भी नहीं कर सकते; और यदि सीप मछलियां (एक प्रकारकी स्वादिष्ट मछली) भी उनके रास्तेमें डाल दी जावें तो पहलेपहल वे उन्हें भी खानेसे इनकार कर दें। एक और तीसरे समूहको वृक्षोंके ऊपर आधार दिखाई दिया; उनकी गरदनें धीरे धीरे लम्बी होगईं और ये जराफ (एक तरहका लम्बी गरदन और लम्बी टांगोंवाला अफरीकाका जानवर) होगये। किन्तु इस बातसे कि जराफ पत्ते खाता है, भेड़ घास खाती है, और भेड़िया मांस खाता है और साथ ही इस बातसे कि इन सबमें अपना अपना रिवाज इतना जबरदस्त है कि शुरूमें इनमेंसे कोई भी दूसरी किस्मका खाना खानेसे

इनकार कर देगा, केवल इन दोनों बातोंसे यह साबित नहीं होता है कि वह विशेष आहार ही जिसकी उन्हें आदत पड़ गई है उन पशुओंके लिये सर्वोत्तम अथवा उनके शरीरोंके लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। दूसरे शब्दोंमें यह मान लेना कि पशुओं-की भिन्न भिन्न जातियोंकी शारीरिक बनावट केवलमात्र बाहर-की परिस्थिति यानी आसपासके कुदरती हालात अथवा अधिकतर बाहरकी परिस्थतिके अनुसार ही रूप धारण करती है महज एक बातको फर्ज कर लेना है; क्योंकि इसका मतलब (और बातोंके अलावा) महज आदत अथवा मश्ककी ताकत-को नजर-अन्दाज कर देना है, और 'आदत' का महत्व इन जातियोंकी उन्नति और उनके विकासमें लगभग वैसा ही है जैसा डाइनेमिक्सके विज्ञानमें मोमेण्टम* का; आदत ही वह शक्ति है जो जबकि कोई पशु-जाति एक बार किसी दिशामें चल पड़ती है तो—कभी कभी बाहरकी परिस्थितिके बावजूद और उसके विरुद्ध भी—हजारों वर्षोंतक उस जातिको उसी एक दिशामें चलाये जाती है।

पशुओंसे हटकर यदि अब फिर हम मनुष्यकी ओर ध्यान दें तो मालूम होता है कि मनुष्य भी हजारों रिवाजोंके अन्दर लिपटा हुआ है; जैसे जगह जगहके रिवाज, श्रेणी श्रेणीके रिवाज, जातिके रिवाज, कुटुम्बके रिवाज, धार्मिक रिवाज, खाने-पीनेके रिवाज, कपड़े पहननेके रिवाज, घरोंके सामानसे सम्बन्ध रखनेवाले रिवाज, रहनेके मकानोंके अलग अलग ढंग, सनअतकी चीजों, दस्तकारी, सामाजिक और शहरी और कौमी जिन्दगीके अलग अलग रिवाज, इत्यादि इत्यादि; और इन सबको देखकर यह सवाल पैदा होता है कि इस तमाम भूसेके अन्दर असली

* 'मोमेण्टम' उस शुरूकी शक्तिको कहते हैं जिसके द्वारा कोई पदार्थ आगेको हरकत करता है, इसका हिसाब पदार्थके वजन और उसकी हरकतकी तेजीसे लगाया जाता है—अ०।

इन्सानी जरूरतका दाना कहांपर है? इनमेंसे हरएक तरहके रिवाजोंमेंसे कितना कितना हिस्सा असली कुदरती जरूरतकी वजहसे कायम है और कितना कितना महज काहिली और आदतकी वजहसे! अपनी अपनी खिड़कीमेंसे बाहर नजर डालते ही पहली चीज जिसपर मेरी नजर पड़ती है वह पासकी छतपरकी खपरैल है। खपरैलें कहीं कहीं S की शकलकी बनाई जाती हैं, और कही कहीं चपटी, यह क्यों? निस्सन्देह आंधी और बारिश सब जगह करीब करीब एक समान ही आती हैं। शायद बहुत जमाने पहले कभी कोई वजह रही होगी, किन्तु अब सिवाय 'रिवाज' के और कोई बात नहीं। जापानी फरशपर बैठते हैं, तुर्क गद्दोंपर बैठते हैं, हम कुर्सियोंपर क्यों बैठते हैं? यह भी एक रिवाज है और शायद यह रिवाज हमारे दूसरे रिवाजोंके साथ खपता हुआ है। जितना ज्यादह हम अपनी जिन्दगीकी तरफ ध्यान दें'गे और जितना ज्यादह हम जिन्दगीके हर महकमेमें आदतोंकी बेअन्त भिन्नतापर गौर करेंगे—यहांतक कि ऐसी हालतोंमें भी जो हर तरह देखनेमें बिल्कुल यकसां हालतें मालूम होती हैं उनमें भी तरह तरहके और अलग अलग रिवाजोंके होनेपर गौर करेंगे—उतना उतना ही यह बात हमारे ध्यानमें जमती जावेगी कि जिन जिन बातोंकी हमें स्वयं आदतें पड़ गई हैं उन उन बातोंकी भी कोई बहुत गहरी जरूरत दिखाई नहीं देती। हर एक जाति हर एक श्रेणी और हर एक तबकेके लोग, यहांतक कि हरएक इन्सान अपनी ही रहन-सहन आदिकी आदतोंको सबसे बढ़कर बतलाता है और केवल अपनी जिन्दगीके तरीकोंको ही ठीक और सच्चे तरीके कहता है; कौमें और जमाअतें अपने अपने ऐतकादों और रिवाजोंको ही ठीक प्रतिपादन करनेके लिये एक दूसरेसे जङ्ग करनेको तैयार होजाती हैं, किन्तु एक ईमानदार और जिज्ञासु मनुष्यके चित्तमें यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या हममेंसे किसीने भी

किसी खासे अंशमें 'सच्ची जिन्दगी' लाभ कर रखी है? क्या, जिस प्रकार समुद्रमें अनेक जातियां ऐसे कीड़ोंकी होती हैं जो दूसरे कीड़ोंके उतरे हुए खोलों वा अन्य कूड़े-करकटके छोटे छोटे खोलोंमें अपनी सारी जिन्दगी बिता देते हैं, वैसे ही हम भी असंख्य ऐसे कीड़ोंके समान नहीं हैं जो जिन्दगीभर अपनेसे पूर्वके मनुष्योंकी उतरी हुई खालों, कपड़ों, रिवाजों और अन्य कूड़े-करकटमें लिपटे हुए पड़े रहते हैं और जिनके अन्दर अपना निजका 'जीवन' बहुत ही कम दिखाई देता है? दिनमें कितनी बार हम कोई ऐसा काम करते हैं जिसमें कोई असलीयत और किसी तरहका अपनापन हो अर्थात जो केवल मशीनकी तरह दूसरोंकी नकल न हो? निस्सन्देह यदि हमारे मुख्तलिफ काम और हमारी आदतें असली (Authentic) यानी हमारी अपनी होतीं और सच्ची जरूरतके अनुसार पैदा हुई होतीं तो शायद इन बातोंके ऊपर एक दूसरेके साथ हम इतनी बार लड़ते न रहते जितनी बार कि हम आजकल लड़ते रहते हैं।

अब हम 'धर्म'से सम्बन्ध रखनेवाली बातोंकी ओर आते हैं। ये सब भी केवल रिवाज हैं, जो अलग अलग जातियों, अलग अलग जमानों और अलग अलग देशोंमें हद दर्जेकी मुख्तलिफ शकलें अख्तियार करते रहे हैं, ये ऐसे रिवाज हैं जिनके लिये विवेकद्वारा अथवा "चीजोंकी मुनासबत"में कोई वजह वा किसी तरहका औचित्य ढूंढ निकालना प्राय: अत्यन्त कठिन है। फी जमाना हम लोगोंमें चोरी मना समझी जाती है, तो भी हमारा आजकलका तिजारती सदाचार हजारों मुख्तलिफ शक्लोंमें चोरीको जायज करार देता है; और इज्जतदार सूदखोरको (जिसे मुश्किलसे सिवाय चोरके और कुछ कहा जासकता है) जीवनकी मेजपर ऊंचा स्थान दिया जाता है। शिकारकी खोजमें पृथ्वीपर घूमना आदिकालसे मनुष्यका कुदरती और जन्मसिद्ध अधिकार समझा जाता रहा है, किन्तु आजकलके जमानेमें

जमीन्दार-श्रेणीके लोगोंने (जिन्हें अब आकर बदमाश साम्य-वादी बुरा कहने लगे हैं !) जङ्गलमेंसे शिकारकी चोरीको भी एक जुर्म करार दिया और उसके लिये लोगोंको फांसी देना शुरू कर दिया। यदि हम विवाहके रिवाजोंको लें तो इतिहाससे पता चलता है कि अलग अलग जमानों और अलग अलग कौमोंमें अगणित ही तरहके रिवाज जायज रहे हैं। और इस विषयमें हर एक कौम बड़े जोरोंके साथ यही समझती है और समझती रही है कि उसका अपना रिवाज ही अत्यन्त पवित्र है जिसका किसी हालतमें भी उल्लंघन माफ नहीं किया जासकता। अत्यन्त कड़ीसे कड़ी सजाओं और अत्यन्त सख्तसे सख्त सार्वजनिक मतके जरिये जो व्यक्तियोंके अन्तःकरणमें गहरा जाकर चुभता था, मुख्तलिफ देशों और मुख्तलिफ कालोंके अलग अलग नियमोंका जबरदस्ती पालन कराया जाता रहा है; तथापि ये सब नियम एक दूसरेके विरुद्ध हैं। एक कौममें यदि एक पुरुषकी अनेक पत्नियां जायज हैं तो दूसरी कौममें एक स्त्रीके अनेक पति जायज हैं। एक समयमें सगे भाई और बहनका परस्पर विवाह जायज पाया जाता है और दूसरे समय-में मांके चचेरे भाई वा बहनसे भी विवाह मना है। प्राचीन यूनानके मन्दिरोंमें वेश्याका जीवन पवित्र जीवन समझा जाता था और आजकल उस जीवनको हमारे बड़े बड़े शहरोंकी गन्दी नालियोंमें पैरों तले रोंदा जाता है। एक पति और एक पत्नीका रिवाज एक देशमें इज्जतदार लोगोंका रिवाज समझा जाता है और दूसरे देशमें उसे नीच श्रेणियोंकी पहचान गिना जाता है। पूर्ण ब्रह्मचर्यको कोई लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और कोई उसे सर्वोच्च अवस्था मानते हैं। इत्यादि, इत्यादि।

इस सबसे हम क्या नतीजा निकालें ? क्या यह मुमकिन है कि एक बार कला-कौशल, रहन-सहन और सदाचार आदिके हर एक महकमेमें मनुष्य-जीवनके रिवाजोंकी इस अनन्त विभि-

न्नताको अच्छी तरह देख लेनेके बाद भी—और फिर उस विभिन्नताको जो अनेक बार ऐसी ऐसी कौमोंके दरमियान पाई जाती है जो कमसे कम उस मामलेके सम्बन्धमें हर पहलूसे देखनेमें बिल्कुल यकसां हालतोंमें रहती हैं—एक बार इस विचित्र विभिन्नताको जान लेनेके बाद भी हम कभी यह समझें कि जिन खास रिवाजोंकी हमें आदत होगई है वे उन दूसरे रिवाजोंसे, जिनकी दूसरोंको आदत है, बहुत ज्यादह अच्छे (वा दरहकीकत बहुत ज्यादह बुरे) हैं ? जैसा मैंने शुरूमें कहा था हम सब रिवाजोंके एक ऐसे खोलके अन्दर पैदा हुए हैं जो पोतड़ोंके समान हमें चारों ओरसे लपेटे रहते हैं। जब हम बढ़कर मनुष्य होने लगते हैं तब हमें मालूम होता है कि जो चीज हमारे चारों ओर लिपटी हुई है वह क्या और कैसी है। तब जाकर हमें वह एक पुराना खोल वा सूखा छिलका मालूम होता है। तब हमसे उसकी ओर देखातक नहीं जाता, बिल्कुल सड़ा हुआ, बेमेल, और एक भी युक्ति उसको रखनेके पक्षमें तब नहीं मिल सकती; तथापि बहुत सम्भव है कि इतना समझकर भी हमें उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा, ठीक वैसे ही जैसे समुद्रका कीड़ा अपनी नलीके अन्दर ही बड़ा हुआ है और नलीको नहीं छोड़ सकता। मनुष्यकी छोटीसी जान कूड़े-करकटके एक ढेरके अन्दर एक छोटोसी चिनगारीके समान है; वह अधिकसे अधिक यह कर सकता है कि या तो उस समुद्री कीड़ेकी तरह अपने रहनेके घरकी शकलको थोड़ा-बहुत अपने लिये आरामका बना ले, अथवा कोरल कीड़ेकी तरह ऐसी दिशामें आगेको बढ़े कि जिससे उसकी आगे आनेवाली नसलोंको सबसे ज्यादह आराम मिल सके। जिस श्रेणीमें हम पैदा हुए, जिस जातिमें हम पैदा हुए, जिस देशमें हम पैदा हुए, जिस जमानेमें हम पैदा हुए, उस श्रेणी, उस जाति, उस देश, और उस कालने हमारे जीवनके स्वरूपको निश्चित कर दिया है,

और बहुत सम्भव है कि उसी स्वरूपमें हमें जिन्दगीभर रहना पड़ेगा। किन्तु इस समय हमारे विचारोंमें एक नई तब्दीली पैदा होरही है। पुराने समयकी तरह अपने ही रस्म-रिवाजको निर्भ्रान्त समझकर उनकी डींग मारना अब हमने छोड़ दिया है। कमसे कम हम लोग मुकाबलेतन किसी तरह किसीसे अच्छे नहीं हैं, और शोक! अपनी अच्छीसे अच्छी हालतमें भी हम आधे जिन्दा और आधे मुर्दा हैं।

यदि यही नतीजे हैं जिनतक हम पहुंचे हैं तो क्या बच्चोंके लिये और प्रारम्भिक मनुष्य-जातियोंके लिये उस तंग रास्तको मजबूतीके साथ चिपटे रहना जो 'रिवाज' ने उनके लिये एक बार बना दिया है, बेजा है? क्या उनके अन्दर एक कुदरती गुमान इस बातका नहीं होता कि अपने रिवाजको छोड़ देना मानो एक ऐसे बेजाने समुद्रमें जिन्दगीकी किश्तीको छोड़ देनेके बराबर है जहां न उस जिन्दगीका कोई खास मतलब वा उसकी कोई खास दिशा कायम रह सकेगी और न जहां धर्मकी मर्यादा डूबनेसे बच सकेगी? रिवाज ही उनके लिये वह रेखा वा वह मार्ग है जिसके सहारे सहारे वे पलते और बड़े होते हैं; रिवाज ही कोरल चट्टान * की वह शाखा है जिसके सिरेसे अगला कीड़ा अपनी रचना शुरू करता है; रिवाज ही वृक्षकी टहनीकी वह सख्त छाल है जो नई टहनीके बढ़नेकी दिशा नियत करती है। मुमकिन है वह रिवाज बिल्कुल बिला वजह और बेअर्थका ही रिवाज हो, किन्तु इसका उन्हें क्या पता; उस रिवाजकी नित्यता और उसकी आवश्यकता मुमकिन

* समुद्रके अन्दर एक खास किस्मका कीड़ा अपने रहनेके लिये जो खास खोल बनाता है वह इतना सख्त होता है कि धीरे धीरे इन कीड़ोंके खोलों और पिंजरोंसे जुड़ते जुड़ते बड़ी बड़ी चट्टानें और टापू बन जाते हैं। इसे कोरल कीड़ा कहते हैं। मूंगा भी इसीका होता है—अ०।

है बिल्कुल भ्रमात्मक हो; किन्तु यह भ्रम तो जीवनके लिये जरूरी है, और यह बिला वजह रिवाजों और आदतोंका पड़ जाना ही एक जीवनको दूसरे जीवनसे भिन्न रूप प्रदान करता है। मनुष्य जबतक बढ़कर सच्चा 'मनुष्यत्व' लाभ न कर ले तबतक वह इन चीजोंके बग़ैर काम नहीं चला सकता।

और जब वह सच्चा मनुष्यत्व लाभ कर लेता है, तब क्या होता है? हां, तब मनुष्य मर जाता है और मृत्युके जरिये हकीकतमें जिन्दा होजाता है। समुद्रका वह कीड़ा (Caddisfly) मक्खी बनकर उस नलीको पीछे छोड़ देता है और ऊपर हवामें उड़ जाता है; अथवा कोरल कीड़ा उस चट्टानसे अपनेको अलग करके, जिससे वह अबतक चिपटा रहा था, खुले समुद्रमें तैरने लगता है। क्योंकि हम सच्चे 'मनुष्यत्व' के जीवनमें उसी समय पहली बार प्रवेश करते हैं जिस समय कि हम रिवाजकी ओरसे मर चुकते हैं; जब हम दूसरोंकी अपेक्षा अपने श्रेष्ठत्वके समस्त मिथ्या विचारोंको त्याग देते हैं, और जब हमें इस बातका विश्वास होजाता है कि हमारे अपने रिवाजों और तरीकोंके पक्षमें एक भी दलील नहीं है, ठीक उस समय दुनियामें चारों ओर हमें केवल अपने साथियोंके प्यारे चेहरे ही दिखाई देने लगते हैं; और जब हम देख लेते हैं कि हमारी अपनी जिन्दगीका तरीका कितना बिल्कुल बिला वजह और बेमाइने हैं, तब वह सारी इमारत गिर पड़ती है, जिसके आधारपर हम अपने तईं दूसरोंसे जुदा समझते थे; और बड़ी आसानीके साथ तथा तुरन्त हम स्वतन्त्रता और समताके विशाल समुद्रमें प्रवेश कर जाते हैं।

मनुष्यके लिये यह मानो एक नया मार्ग और नया जीवन होगा, जिस जीवनके लिये कि आजदिन भी लाखों ऐसे रस्म और रिवाजोंके बोझसे दबी हुई—जो रस्म और रिवाज कि अब साफ और खुले तौरपर एक दूसरेके विरुद्ध टकराने लगे

हैं—पुरानी दुनिया साफ तैयारी कर रही है। मनुष्यके बालक-पनका जमाना अब खतम होनेवाला है, सच्चे मनुष्यत्व और सच्चे जीवनका समय अब आगे आरहा है।

शायद इतिहासका यह एक नियम है कि जब मनुष्य हर किस्मके रिवाजों और तरीकोंमेंसे निकल चुकता है तब उसके लिये उन रिवाजों और तरीकोंसे आजाद होनेका एक समय आता है—जिसका मतलब यह है कि फिर वह अपनी जरूरतके अनुसार जब चाहे जिस रिवाजको काममें लासकता है, वह अब रिवाजका गुलाम बनकर नहीं रहता; उस समय मनुष्यके सारे रिवाज किसी न किसी काम आजाते हैं, किसी रिवाज-का भी निषेध नहीं किया जाता। जब कभी मनुष्य इस हालत-को पहुंच जाता है तब "धर्मशास्त्रों" और "सदाचार-प्रणालियों" का अन्त होजाता है और 'मनुष्यमात्रका हित' इन शास्त्रों और प्रणालियोंका स्थान ग्रहण करता है—अर्थात् फिर उस समय न कोई काम बुरा कहा जाता है और न कोई काम अच्छा; परन्तु हर कामका एकमात्र उद्देश्य रह जाता है मनुष्यको आजाद करना, अपने तथा दूसरोंके बीच समताका स्थापन करना, और उस नये जीवनमें प्रवेश करना जो प्रवेश करते ही आनन्दमय और पूर्ण मालूम होने लगता है, क्योंकि फिर उसमें किसी तरहका प्रयत्न वा आयास नहीं रह जाता; वरन् उस जीवनका मतलब है सदाके लिये दूसरोंके अन्दर अपने तईं देखना और पहचानना।

यद्यपि इस 'रिवाज' ने एक मनुष्यको दूसरे मनुष्यसे बहुत दूर पहुंचा दिया है, तथापि इस विकासरूपी वृक्षमें नित्य नई शाखाओंके फूटते फूटते जब अन्तको 'सम्पूर्ण मनुष्य' की उत्पत्ति होगी तब वह तुरन्त शेष सब प्राणियों (रूपों) के साथ अपने सम्बन्ध और अपनी एकताको जान जायगा। "मैं दृढ़ संकल्प-के साथ और दूसरोंके प्रति समवेदनाके साथ अपनी आत्माको

समस्त पृथ्वीके चारों ओर घुमा चुका हूं, और मुझे सब अपने बराबर ही बराबरके और अपने प्रेमी ही प्रेमी दिखाई दिये।" इतना ही नहीं, वरन् उस समय मनुष्य पशुओंके साथ भी अपनी एकताको जान जाता है। वह देख लेता है कि आदत अथवा पृथकताका केवल एक भ्रम है जो हमें अलग अलग किये हुए है; और अन्तको उस समय मनुष्य अनुभव करता है कि असलीयतमें वही मनुष्य पक्षीके रूपमें आकाशमें उड़ता है, वही मछलीके रूपमें समुद्रपर तैरता है, और वही दो टांगोंसे जमीनपर चलता है।



सभ्यता महारोग

उसका

निदान और निवारण

तीसरा भाग

पहला अध्याय

आजकलकी साइन्स और उसके गुण-दोषोंका विवेचन

जब कभी कोई मनुष्य यह सुझाने लगता है कि आजकलकी साइन्स सर्वथा सन्तोषजनक नहीं है, तो एक कठिनाई उसके सामने यह आती है कि फौरन् यह फर्ज कर लिया जाता है कि वह या तो इङ्गरसौलके शब्दोंमें "पसलीकी कहानी *" को एक गुप्त तरीकेसे सच्चा साबित करना चाहता है अथवा वह लोगोंके दिलोंमें फिरसे इस विश्वासको पक्का कर देना चाहता है कि इंजीलका एक एक शब्द वास्तवमें ईश्वरसे उतरा हुआ है। किन्तु मजहबी वाद-विवादको छोड़कर, और इस बातको मानते हुए कि साइन्सने पुराने अंधविश्वासोंके कूड़ा-करकटको साफ कर देनेमें और कुदरती घटनाओंके विषयमें अधिक स्पष्ट और अधिक तर्कसंगत विचारोंके लिये मार्ग खोल देनेमें बहुत बड़ा काम किया है, फिर भी यह मुमकिन है और अनेक लोग इस बातको महसूस करने लगे हैं कि हालमें साइन्सने हमें

---

* इंजीलमें लिखा है कि सृष्टिके आदिमें जब बाबा आदम अकेले थे तो एक दिन वे पड़े गहरी नींदमें सोरहे थे। उस समय खुदाने आकर आदमके जिस्मसे एक पसली निकाल ली और उसकी जगह और मांस भर दिया, उस पसलीकी खुदाने एक औरत बनाई जिसका नाम हव्वा (Eve) रखा गया। बादमें आदम और हव्वाकी औलादसे तमाम मनुष्य-जातिकी उत्पत्ति हुई—अ०।

सम्पूर्ण विश्वकी व्यवस्थाको समझनेमें जो कुछ भावात्मक सहायता दी है वह आशाजनक नहीं है, और साइन्सके खोज इत्यादिके तरीके भी केवल परिमित सूरतोंमें ही कारामद होसकते हैं। लगभग पचास वर्षतक तो साइन्सका बड़ी शानके साथ जोर रहा, खूब वाह वाह हुई, और बड़ी बड़ी आशाएं इस बातकी कीगईं कि बूढ़ा चालाक विश्व अन्तको साइन्सके चतुर जालमें गिरफ्तार होनेहीवाला है; किन्तु इस जोर-शोरके बाद यह मानना पड़ेगा कि इस समय साइन्स चारों ओरसे अपने तईं इस तरहके संशयों और कठिनाइयोंमें फँसा हुआ पाती है जिनसे उसके निकलनेकी अब बिल्कुल कोई आशा दिखाई नहीं देती; और पसलीकी कहानी चाहे सच हो वा न हो, कमसे कम साइन्सने उसकी जगह हमें कोई अधिक संतोष-जनक दूसरी बात नहीं बतलाई। साइन्सकी इस असफलताकी वजह भी बिल्कुल स्पष्ट है। इसकी वजह मनुष्यकी दिमागी बनावटमें मिलती है। मनुष्यके दिमागका यह एक खास दोष वा स्वभाव है कि वह मनुष्यके उस हिस्सेको, जो सोचता और दलीलें करता है, मनुष्यके कुदरती ज्ञान और उसके हृदयकी भावनाओंसे अलग करके एक स्वतंत्र और पृथक पदवी देना चाहता है; हम एक पहले अध्यायमें यह भी दर्शा चुके हैं कि यह दोष 'सभ्यता'-युगमें जरूरी भी है। साइन्सको इसलिये असफलता हुई क्योंकि उसने मनुष्य-स्वभावके दूसरे जरूरी पहलुओं-को नजरअन्दाज कर केवल दिमागी पहलूसे ही कुदरतकी खोज करनेकी कोशिश की। उसे असफलता हुई, क्योंकि उसने एक असम्भव काम करना चाहा; क्योंकि विश्व और उसके कार्यों-की कोई ऐसी व्याख्या खोज निकाल सकना जो सदाके लिये सच्ची हो और जो महज दिमागी व्याख्या हो, सर्वथा सम्भव है। इस तरहसे विश्वकी कोई व्याख्या हो ही नहीं सकती।

समष्टिरूपसे मनुष्यके हृदयके धार्मिक तथा अन्य भाव

लगातार उन्नति करते रहते हैं अथवा बदलते रहते हैं। इस लम्बे क्रममें प्रत्येक समय अपनी उस समयकी भाव-सम्बन्धी अवस्थाके अनुसार ही हम कुदरतके विषयमें भी तरह तरहके मत और विचार कायम करते रहते हैं। इस प्रकार हर समयके मत और विचार हमारी उस समयकी भीतरी अवस्थाके साथ वैसा ही सम्बन्ध रखते हैं जैसा शरीरके विविध अंग एक दूसरेके साथ। दूसरे शब्दोंमें कुदरतके विषयमें हमारे तरह तरहके और समय समयके मत और विचार केवल मानव-उन्नतिकी उस समयकी अवस्थाके अनस्थाई गिलाफ होते हैं जो हमारे भीतरी भावोंके बदलनेके साथ साथ ही बराबर बदलते रहते हैं और जो एक दर्जेतक हमारी उस खास समयकी भीतरी अवस्थाको चित्रित भी करते हैं। इसीलिये किसी भी खास समयमें कुदरतकी घटनाओंका कोई ऐसा बयान वा उनकी कोई ऐसी व्याख्या तैयार करनेकी कोशिश जो तैयार करनेवालोंकी मानसिक स्थितिका लिहाज न रखते हुए सदाके लिये ठीक और मान्य हो, कभी हरगिज सफल नहीं होसकती; आजकलकी साइन्सके सिद्धान्तों और नतीजोंमें जो गोलमाल और एक दूसरेसे विरोध पाया जाता : केवल इसी तरहकी फजूल कोशिशका नतीजा है।

निस्सन्देह जिन लोगोंने इस विषयपर विचार किया है उनमेंसे अधिकांश इस बातको स्वीकार करते हैं कि साइन्सकी कल्पनाएं और उसके 'नियम' एक बहुत ही परिमित दर्जेतक सच माने जासकते हैं*; किन्तु आम तौरपर इस बातको इतना ज्यादह नजरअन्दाज किया जाता है और खासकर हालके दिनोंमें यह खयाल कि साइन्सके बताये हुए "नियम" (Laws) ऐसे कुदरती नियम हैं जो कभी बदल नहीं सकते और असली हकीकतकी वे ऐसी व्याख्या करते हैं जो हमेशा और हर

* देखो, इस अध्यायके अन्तका नोट।

जमानेके लिये सच्ची होगी, यह खयाल हालमें इतना ज्यादह फैल गया है कि थोड़ासा और विस्तारके साथ इस विषयपर विचार करना हमारे लिये बेजा न होगा *।

साइन्सका तरीका वही है जो तमाम सांसारिक ज्ञानका तरीका है; यह तरीका है अपने सामनेके क्षेत्रको जान-बूझकर महदूद कर लेनेका तरीका वा कहना होगा असली अज्ञानका तरीका। कुदरत ऐसी वसीअ, बेअन्त और अखण्ड है कि यदि हम (अपने छोटेसे महदूद दिमागसे) कुछ भी सोच सकते हैं तो केवल इसी तरीकेसे सोच सकते हैं कि अनन्त सम्बद्ध घटनाओं-मेंसे केवल थोड़ीसी घटनाओंको लेलें और फिर (जान-बूझकर अथवा बेजाने) बाकी तमाम घटनाओंकी तरफसे आंख बन्द करके केवल उन थोड़ीसी घटनाओंके आधारपर ही अपने विचार कायम कर लें। यह तरीका है ठीक; किन्तु ऐसा करनेमें, हम जिस बातको असलीयतमें हल करने निकले थे उसे ही पहलेसे फर्ज कर लेते हैं; इसके अलावा प्रकृतिकी अनन्त घटनाओंमें इस तरहकी पृथकता मान लेना एक असत्य बातको फर्ज कर लेना है जो हमारे आगेके तमाम नतीजोंको झूठा कर देता है। हर दिमागी तहकीकातमें ये दो जबरदस्त दोष ऐसे रहते हैं जिनसे हम किसी तरह नहीं बच सकते। साइन्सके विचार मिसालके तौरपर ऐसे ही हैं जैसे कि किसी पहाड़के दृश्यका कोई एक चित्र हम अपने मनमें कायम करना चाहें; कोई एक चित्र केवल उसी समयतक ठीक होसकता है जिस समयतक कि हम एक ही स्थानसे खड़े होकर उस पहाड़को देखते रहें, किन्तु ज्यों ही हमने अपनी जगह बदली कि उसके साथ साथ दृश्य बदला और दृश्य बदलते ही चित्र भी अवश्य बदलना पड़ेगा।

* इन पंक्तियोंके लिखे जानेके बादसे लोगोंके विचारोंमें निस्सन्देह बड़ी तब्दीली हुई है। और साइन्सके "नियमों" की सचाईमें जो जबरदस्त विश्वास पहले था वह अब (१९२०) करीब करीब जाता रहा।

शायद् "जाति" (स्पीसीज*) शब्दद्वारा मैं अपना मतलब सबसे अच्छी तरह समझा सकता हूँ; और एक तरहसे यह शब्द् साइन्सके तरीकेका खास नमूना है। मिसालके तौरपर मैंने पहलेपहल एक कुत्ता देखा। कुत्ता फाक्स-हाउण्ड (एक खास जातिके कुत्ते जो लोमड़ीके शिकारमें ज्यादह काम देते हैं) जातिका है। फिर कभी मैंने एक दूसरा फाक्स-हाउण्ड देखा, फिर तीसरा और फिर चौथा। तुरन्त इन थोड़ीसी मिसालोंको लेकर "कुत्ता-जाति" के विषयमें एक कल्पना मैंने अपने चित्तमें कायम कर ली; किन्तु कुछ समय पीछे मैंने एक ग्रेहाउण्ड देखा, फिर एक टैरियर देखा और फिर एक मास्टिफ (कुत्तोंकी तीन अलग अलग जातियां) देखा, और "कुत्ता-जाति" के विषयमें मेरी पहली कल्पना नष्ट होगयी। मुझे एक नई कल्पना उसकी जगह कायम करनी पड़ी; और फिर और नयी कल्पना और इसी तरह फिर एक और नयी कल्पना, इत्यादि। अब मैं सभ्य संसारके कुत्तोंकी तमाम जातियोंपर नजर डालता हूं और अपनी कल्पनाको ठीक पाकर अपनी बुद्धिमत्तापर सन्तुष्ट होजाता हूं। किन्तु कुछ समय बाद मुझे कुछ जंगली कुत्ते दिखाई देते हैं, और मैं भेड़िये और लोमड़ी (कुत्तोंहीकी जातिके जानवरों) की प्रकृतिका अध्ययन करने लगता हूं। फिर जमीनकी तहमें खोदते खोदते कहीं कुछ ऐसे पशुओंकी पुरानी हड्डियां मिल जाती हैं जो आजकलके कुत्तोंसे भिन्न भी हैं और उनसे मिलती हुई भी, अथवा जो आजकलके कुत्तों और किसी दूसरी "जाति" के जानवरोंके बीचकी श्रृंखला मालूम होती हैं, अब कुत्ता-जातिके विषयमें मेरी कल्पना इस

* वृक्षों, पशुओं आदिकी अलग अलग जातियोंकी जो उपजातियां बनाई जाती हैं उन्हें साइन्सकी परिभाषामें "स्पीसीज" कहा जाता है। हमने "जाति" शब्दका ही इसके लिये उपयोग किया है।

तरह पिघल जाती है जिस तरह आसपासके पानीमें बरफका एक डला पिघलकर गुम होजाता है। मेरा वह "जाति"-विभाग अब कहीं रहा ही नहीं। जबतक मेरा ज्ञान बहुत परिमित था, मैं बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ उसके विषयमें चर्चा कर सकता था; वा यदि मैं अपने ज्ञान-क्षेत्रकी मनमानी हद कायम कर लेता, जैसे यदि मैं मिसालके तौरपर केवल उन जानवरोंतक अपनेको परिमित रखता जो आजकल इंगलैण्ड देशमें पाये जाते हैं, तो भी मैं उनकी अलग अलग श्रेणियां वा जातियां कायम कर सकता था; किन्तु ज्यों ही मैंने अपने ज्ञानकी सीमाको यानी अपने दृष्टि-क्षेत्रको बढ़ाया कि तुरन्त मुझे अपना सारा "जातियां" कायम करनेका काम फिर नये सिरेसे करना पड़ा। सच यह है कि जिसे मैं इस तरहका "जाति-विभाग" कहता हूं वह कोई "कुदरती" असलीयत नहीं है बल्कि केवल मेरा एक भ्रम है जो मेरे अज्ञानके कारण यानी जिन पदार्थोंको मैं देखता हूं उनमें मेरे एक दूसरेसे मनमानी पृथकता कायम कर लेनेके कारण पैदा होजाता है।

अथवा एक दूसरी मिसाल आजकलके ज्योतिष-विज्ञानसे। हम कहा करते हैं कि चाँद जिस मार्गपर घूमता है वह अण्ड-वृत्त (इलिप्स) अर्थात् अण्डेकी शकलका है। किन्तु हमारा यह कथन बिल्कुल यथार्थ नहीं है। खोज करनेपर पता चलता है कि चाँदको कुछ ऐसी ही चंचलताके कारण जो कहा जाता है कि सूर्यकी वजहसे पैदा होती है चाँदका मार्ग अण्डवृत्त की शकलसे बहुत कुछ दूसरी ही शकलका होजाता है। वास्तवमें जब ठीक ठीक हिसाब लगाया जाता है तो कहा जाता है कि केवल एक लमहेके लिये यह मार्ग एक विशेष अण्डवृत्तका एक भाग रहता है और दूसरे लमहेमें किसी दूसरे अण्डवृत्तका एक भाग होजाता है। अब हम यह कह सकते है कि चाँदका मार्ग एक ऐसी बेजाप्ता टेढ़ी रेखा है जो अण्डवृत्तसे

कुछ कुछ मिलती हुई है। यह एक नई कल्पना कायम हुई। किन्तु और अधिक खोज करनेपर पता चलता है कि जबकि चाँद जमीनके चारों तरफ घूमता है, जमीन खुद आकाशमें सूर्यके चारों ओर दौड़ी चली जारही है—जिसके कारण चाँद-का असली मार्ग किसी अंशमें भी अण्डवृत्तसे नहीं मिल सकता! अन्तको सूर्य भी अचल कहलानेवाले तारोंके चारों ओर घूमता रहता है और वे तारे भी बराबर घूमते रहते हैं। वास्तवमें 'अचल' इनमेंसे कोई भी नहीं। अब चाँदका मार्ग किस शकलका रहा? कोई नहीं जानता; हमें उसका जरासा भी अनुमान नहीं होसकता—सच यह है कि 'मार्ग' शब्दका अब कुछ अर्थ ही हम नहीं कर सकते। यह सच है कि यदि हम सूर्यके कारण पैदा होनेवाली चञ्चलताको नजरअन्दाज करने-पर राजी होजावें—जैसाकि हम अब भी ग्रहों और उपग्रहों (Planets) आदिद्वारा पैदा होनेवाली चञ्चलताको बिल्कुल नजरअन्दाज करते ही हैं—और यदि हम पृथ्वीके घूमनेको भी नजरअन्दाज कर दें, और आकाशके अन्दर इस समस्त सौर जगत् (Solar system) के संयुक्त भ्रमणको और उस केन्द्रके भ्रमणको जिसके चारों तरफ ये जोरोंके साथ घूमते हैं, इन सब-को नजर अन्दाज करनेपर यदि हम राजी होजावें तो हम यह कह सकते हैं कि चाँद अण्डवृत्तकी शकलमें घूमता है। किन्तु यह स्पष्ट है कि हमारे इस कथनका असली कुदरती घटनाके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। चान्द अण्डवृत्तकी शकलमें नहीं घूमता—केवल "पृथ्वीकी अपेक्षासे" भी नहीं—और शायद न कभी इस शकलमें घूमा और न कभी घूमेगा। यह कथन कि अमुक अमुक हालतोंमें चाँदका मार्ग अखण्डवृत्त होगा एक काम-चलाऊ राय वा एक उपयोगी कल्पना होसकता है किन्तु यह है केवल एक कल्पना ही। जाहिर है कि जिस विश्वकी एकता वा अखण्डता स्वयं साइन्सका एक अत्यन्त प्यारा सिद्धान्त है

उसकी कुछ थोड़ीसी घटनाओंको शेष समस्त घटनाओंसे पृथक करनेकी कोशिश करना केवल अपनी मूर्खता दर्शाना है जिससे कोई फायदा नहीं होसकता।

किन्तु आप कहेंगे कि यह बात गणितसे साबित की जा-सकती है कि इन इन हालतोंमें चाँदका मार्ग अण्डवृत्तकी शकल-का होगा। मेरा जवाब यह है कि जिस तरहका आजकलके अधिकांश मनुष्योंका दिमाग बना हुआ है उस तरहके दिमागको गणितका सबूत यद्यपि निस्सन्देह पक्का सबूत मालूम होता है तथापि उसमें भी ठीक वही दोष है कि वह असली कुदरती घटनाओंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। गणितके सबूतका सम्बन्ध भी इस दिमागी कल्पनाके साथ है कि दुनियामें केवल दो ही चीजें हैं एक चाँद और दूसरी जमीन जो एक दूसरेपर असर डाल रही हैं--किन्तु न कभी ऐसा हुआ और न कभी हो सकता है—और फिर इन दोनोंको एक दूसरेपर जो असर पड़ता है उसमें आकर्षणके नियम (Law of Gravitation) को फर्ज करके (जिसे वास्तवमें साबित करनेकी जरूरत है), गणित अण्डवृत्त नामके एक कल्पित मानसिक नतीजेपर पहुंच जाता है। किन्तु इस तरहकी दलीलसे यह नतीजा निकाल लेना कि 'अण्डवृत्त' नामकी वास्तवमें 'प्रकृति' में कोई चीज है, और ये बड़ी बड़ी आसमानी चीजें अण्डवृत्तकी शकलमें घूमती हैं अथवा उस शकलकी ओर उनका झुकावतक है, स्पष्ट एक अंधेरेमें इस तरहकी छलांग मारना है जिसमें कोई किसी तरहका भी औचित्य नहीं है। अन्तमें आप यह दलील देंगे कि इस तरहकी छलांग मारना इसलिये उचित है क्योंकि, यह मानकर कि चाँद और ग्रह-उपग्रह, सब अण्डवृत्तकी शकलोंमें घूमते हैं, आप वास्तवमें आगे होनेवाली बातोंकी पेशीनगोई कर सकते हैं, मिसालके तौरपर ग्रहणोंकी पेशीनगोई कर सकते हैं। इसके जवाबमें मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि टाइचो

ब्राहे (डेनमार्कका रहनेवाला सोलहवीं सदीका एक मशहूर ज्योतिषी) इस कल्पनाके आधारपर कि चाँद, सय्यारे (ग्रह) आदि प्राक्चक्रों * के ऊपरसे (Epicycles) घूमते हैं करीब करीब उतने ही ठीक ठीक ग्रहणोंकी पेशनीगोई कर दिया करता था, और आजकलके ज्योतिषज्ञ भी अपने गणितके हिसाबमें उसी प्राक्चक्रके सिद्धान्तका कई जगह उपयोग करते हैं। प्राक्चक्र एक कल्पना थी जो एक खास मतलबके लिये कर लीगई थी; ऐसे ही अण्डवृत्त भी एक कल्पना है जो उसी मतलबके लिये कर लीगई है। किसी किसी बातमें अण्डवृत्तकी कल्पना अधिक सुविधाजनक कल्पना है किन्तु है वह भी कल्पनामात्र ही।

दूसरे शब्दोंमें इस "चाँदके मार्ग"के विषयमें (जैसाकि किसी भी दूसरी कुदरती घटनाके विषयमें) हमारा ज्ञान या तो हकीकी ज्ञान होगा और या सापेक्ष ज्ञान होगा। किन्तु हकीकी मार्गको हम जान ही नहीं सकते; और सापेक्ष मार्गके विषयमें हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह कोई चीज ही नहीं (जिस तरह कि पशुओंकी अलग अलग जातियां कोई चीज नहीं)— हम 'कुदरत' के इस तरह टुकड़े नहीं कर सकते; इस तरहकी चीज 'कुदरत' में नहीं है, बल्कि केवल हमारे दिमागोंमें है— यह सब केवल एक विचार, एक कल्पना है †।

* * * *

(इस जगहपर ग्रन्थकर्त्ताने एक दूसरी साइन्स अर्थात्

---

* प्राक्चक्र उस गोल चक्रको कहते हैं जिसका केन्द्र किसी दूसरे बड़े चक्रकी परिधिपर हो—अ०।

† तथापि मुझे यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि इस तरहकी कल्पनाएं बिल्कुल जरूरी हैं, क्योंकि जो समस्याएं हमारे सामने हैं उनपर केवल इन कल्पनाओंके जरिये ही हम भला-बुरा थोड़ा-बहुत सोच सकते हैं (१९२०)।

फिजिक्स (भौतिक शास्त्र) से 'बौयलके नियम' (Boyle's. Law) नामक एक मशहूर सिद्धान्तको लेकर उसकी भ्रान्ति और असत्यताको बड़े विस्तार और योग्यताके साथ साबित किया है—अ०)

* * * *

यही 'साइन्स' का 'तरीका' है। सम्पूर्ण घटनाओंके केवल एक बहुत थोड़ेसे अंशको लेकर ही साइन्स उनपरसे अपने 'नियम' और अपनी 'व्याख्याएं' तैयार कर लेती है; और फिर जब दूसरी घटनाएं जबरदस्ती सामने आती हैं तो धीरे धीरे वह नियम या वह व्याख्या फिर गलत साबित होकर लोप होजाती है। कोनरेड गेस्नर (१६ वीं सदीका एक विद्वान् साइन्सदां) ने और शुरू दिनोंके दूसरे पशु-विज्ञान (जूऔलोजी) के विद्वानोंने सींगोंकी तादाद परसे जानवरोंको अलग अलग 'जातियों' में बांटना शुरू किया था! सम्पत्ति-विज्ञान (पोलिटिकल इकोनोमी) पहले तमाम सामाजिक कार्योंको 'चीजोंकी मांग और उनकी आमद' के एक फर्जी नियमके अनुसार अलग अलग श्रेणियोंमें तकसीम करता है। जब लोग पहले यह समझते थे कि जमीन चपटी है तो वे भारी चीजोंके जमीनपर गिरनेके सम्बन्धकी सब बातोंको "ऊपर और नीचे" इन दो शब्दोंके जरिये तै कर डालते थे। आकाशके अन्दर "ऊपर और नीचे" ये दो एक दूसरेके विपरीत दो दिशाएं समझी जाती थीं। भारी चीजें "नीचे" को आती थीं; उनका स्वभाव ही यह था। किन्तु धीरे धीरे ज्यों ज्यों नई नई घटनाओंका पता चलता गया त्यों त्यों जानवरोंको उनके सींगोंकी तादादपर श्रेणियोंमें बांटना असम्भव होगया; ऐसे ही जब यह पता चला कि जमीन गोल है तो "ऊपर और नीचे" के कुछ अर्थ ही न रहे। फिर नये नियम बनाने पड़े और नई व्याख्याएं तैयार करनी पड़ीं। जमीनकी सूरतमें—क्योंकि उस समय जमीनको ही विश्वका

केन्द्र माना जाता था—इस नये 'नियम' की कल्पना कीगई कि तमाम भारी पदार्थ स्वभावसे ही पृथ्वीके केन्द्रकी ओर आते हैं। कुछ दिनोंतक यह 'नियम' बिल्कुल ठीक और सन्तोषप्रद रहा; किन्तु फिर कुछ समय बाद मालूम हुआ कि जमीन विश्वका केन्द्र नहीं है, और कोई कोई भारी पदार्थ जैसे बृहस्पतिके उपग्रह वास्तवमें बिल्कुल भी पृथ्वीके केन्द्रकी ओर नहीं आते। अज्ञानका एक और पिंड (जिसके होते पुराना नियम कायम रह सका था) अब सामनेसे हट गया, और कुछ समय बाद एक और नया 'नियम' यानी 'सर्वव्यापी आकर्षणका नियम' (Universal gravitation) यानी यह नियम कि सब छोटे बड़े पदार्थ एक खास तरीकेसे एक दूसरेको अपनी अपनी ओर खींचते हैं) घड़ा गया, किन्तु सम्भव है कि यह नियम भी केवल हमारे अज्ञानके कारण ही सच्चा माना जारहा है; इतना ही नहीं बल्कि इसमें अब कोई सन्देह नहीं रहा कि इस नियमको सच मान लेनेमें बड़ी गहरीसे गहरी कठिनाइयां सामने आती हैं।

वास्तवमें अब हम एक बड़े महत्त्वकी बातपर आपहुंचे। कभी कभी यह कहा जाता है कि ऊपरकी तमाम दलीलोंको मानकर भी और यह मानकर भी कि साइन्सके नियम अधूरे और दोषयुक्त हैं, तथापि वे असलीयतके कुछ न कुछ निकट जरूर पहुंचते हैं यानी उनमें सचाईका अंश जरूर है, और जैसे जैसे नई नई घटनाएं हमें मालूम होती जाती हैं और उनके अनुसार पुराने नियमोंमें हम तब्दीली करते जाते हैं, वैसे वैसे ही असलीयतके हम ज्यादह व ज्यादह नजदीक पहुंचते जाते हैं, और यदि हम केवल धैर्यसे काम लें तो अन्तको अपने बयानमें हम ठीक असलीयततक पहुंच जावेंगे। किन्तु क्या यह बात ठीक है? जब हमें तमाम घटनाओंका पता चल जावेगा तो हम किस तरहके ठीक ठीक बयानतक पहुंचेंगे? यह याद रखते हुए कि

"कुदरत" एक और अखण्ड है, और यदि हम किसी एक तरहकी घटनाओंको (जैसेकि चाँदके घूमने की सुरतमें) बाकी तमाम घटनाओंसे अलग करके उनके लिये एक ठीक ठीक 'नियम' कायम करनेकी कोशिश करें तो यह पहलेहीसे तै समझना चाहिये कि जिस नतीजेतक भी हम पहुंचेगे वह असत्य हुए बिना नहीं रह सकता, क्या यह सब देखते हुए यह बात स्पष्ट नहीं है कि हमारा ध्येय सदा ही हमसे अनन्त दूरीपर रहेगा? यदि किसी खास खोजके सम्बधकी केवल दो-तीन बातोंको छोड़कर बाकी सब बातें किसीको मालूम हों तो यह कहना युक्तियुक्त समझा जासकता है कि उसका ज्ञान करीब करीब ठीक है; किन्तु जब हम यह जानते हैं कि "कुदरत" की खोज करनेमें करोड़ों घटनाओंमेंसे हमें एक प्रकारसे केवल दो-तीन ही मालूम होती हैं, तब यह जाहिर है कि किसी भी समय नई घटनाओंके मालूम होनेके कारण जो नया 'नियम' हमें बनाना पड़ेगा वह मुमकिन है हमारे तमाम पुराने हिसाबको उलट-पुलट कर दे। किसी दीवारके अधिकाधिक नजदीक पहुंचते जाने और 'ध्रुवतारे'के अधिकाधिक नजदीक पहुंचते जानेमें बड़ा अन्तर है। पहली सूरतमें आप तेजीके साथ अपने प्रयत्नोंके अन्तिम ध्येयकी ओर बढ़ रहे हैं, दूसरी सूरतमें आप केवल एक खास दिशामें चले जारहे हैं। साइन्सकी तमाम कल्पनाएं आम तौरपर ऊपरकी दूसरी श्रेणीमें आती हैं। वे केवल उस दिशाको सूचित करती हैं जिस दिशामें उस खास समयपर इन्सानका दिमाग चल रहा है, किन्तु उनसे किसी ध्येयका निशान नहीं मिलता। मौके मौकेपर ध्येयका एक आभाससा दिखाई देने लगता है जिसके पीछे, जिस तरह कि वन-मरीचिका वा मृगतृष्णिकाके पीछे लोग तेजीके साथ दौड़ने लगते हैं; किन्तु वास्तवमें कहीं कोई सीमा वा ध्येय नहीं होता, वह केवल दिक्चक्रके समान जिस स्थानपर मनुष्य उस समय खड़ा हुआ था उस स्थानसे उत्पन्न

हुआ एक भ्रम था और ज्यों ही मनुष्य उस स्थानसे हटा कि वह फिर लोप होगया।

* * * *

(इस स्थानपर ग्रन्थकर्त्ताने विस्तारके साथ न्यूटनके आकर्षण-नियम (Law of Gravitation) की भ्रान्तिको तथा उसकी गणित-सम्बन्धी असत्यताको दर्शाया है।)

* * * *

और वास्तवमें साइन्सके बड़ेसे बड़े सिद्धान्तोंकी आजकल जो बुरी हालत होरही है उससे यह दिखाई नहीं देता कि हम 'असलीयत' को जाननेके अधिकाधिक नजदीक आते जारहे हैं। फिजिक्स (भौतिक विज्ञान वा पदार्थ-विज्ञान) का अणुवाद (ऐटमिक थियरी) इस समय एक जबरदस्त गोलमालकी हालतमें पड़ा हुआ है; डारविनके विकास-वादके इस सिद्धान्तमें कि निर्बल पशु-जातियां छट छटकर नष्ट होती जाती हैं और अधिक बलवान बचती जाती हैं एक भयंकर अधूरापन साबित होचुका है; हालहीमें ज्योतिष-विज्ञानका यह मौलिक सिद्धान्त कि चाँद और सय्यारोंके मार्ग स्थिर हैं खण्डित होचुका है; भू-विज्ञान (जिऑलौजी) ठीक आजकल तरह तरहके संक्षोभों और तूफानोंमें गिरफ्तार नजर आता है; 'रोशनी' की 'अण्ड्यूलेटरी थियरी' (अर्थात् यह सिद्धान्त कि रोशनी ईथरकी तरंगोंसे पैदा होती है इत्यादि) के सामने इस समय भयंकर और निस्सन्देह अभेद्य कठिनाइयां आन उपस्थित हुई हैं; सम्पत्ति-विज्ञानके बुनियादी सिद्धान्त अर्थात् 'वैल्यु' थियरी' (हर चीजकी 'कीमत' लगानेके सिद्धान्त) का सर्वनाश होचुका और उसे त्याग भी दिया गया—इन सब बातोंसे यह हरगिज दिखाई नहीं देता कि हम ठीक ठीक असलीयतको जाननेके अधिक निकट आते जारहे हैं! कोई अभेद्य सिद्धान्त अथवा ऐसा सिद्धान्त जो करीब करीब अभेद्य भी हो, एक वैसी ही बेमाइने

बात है जैसाकि एक अभेद्य कवच। निस्सन्देह यदि कैसी भी तोपकी गोलियां आपको देदीजावें आम तौरपर आप एक ऐसा कवच बना सकते हैं जिसे वे गोलियां न भेद सकें; किन्तु चाहे कैसा भी कवच आपको देदिया जावे आप सदैव ऐसी गोलियां भी निकाल सकते हैं जो उस कवचके टुकड़े टुकड़े कर डालें।

साइन्सकी अनेक शाखाओंपर गौर करनेसे यह बात एक अजीब तरहसे समझमें आजाती है कि साइन्सका तरीका किस तरह बनावटी हदबन्दी वा असली जहालतका तरीका है। मैं ज्योतिष-विज्ञानकी कुछ मिसालें लेचुका हूं और ज्योतिष-विज्ञान (ऐस्ट्रौनौमी) तमाम भौतिक साइन्सोंमें सबसे अधिक ठीक और निर्भ्रान्त माना जाता है। क्या यह विचित्र बात मालूम नहीं होती कि ज्योतिष-विज्ञान—यानी आकाशके उन सूर्य, तारों आदिका अध्ययन जो हमसे और सब पदार्थों-की निस्बत ज्यादह दूर हैं, और जिनका देखना-भालना सबसे अधिक कठिन है—तमाम विज्ञानोंमें सबसे अधिक निर्भ्रान्त माना जावे ? किन्तु इसकी वजह भी साफ है। ज्योतिष-विज्ञान इसीलिये और सब विज्ञानोंसे अधिक निर्भ्रान्त और निर्दोष है क्योंकि उसके विषयमें हमारी जानकारी भी और सबकी अपेक्षा कम है—क्योंकि उसके सम्बन्धकी असली घटनाओंका हमें बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है। अनन्त आकाशके अन्दर वास्तवमें हम एक ऐसे छोटे से जर्रेके ऊपर खड़े हैं और कालकी जिन छोटी छोटी अवधियोंतक हमारा खयाल पहुंच सकता है वे अवधियां तारोंकी अद्भुत और विशाल दौड़ोंके मुकाबलेमें इतनी क्षणिक और अनस्थाई हैं कि हमारी हालत बहुत कुछ उस छोटे से कीड़ेके समान है जो किसी रेलवे लाइनकी सर्वे करना और उसके ऊपरसे जानेवाली गाड़ियोंकी दौड़के 'नियम' बनाना शुरू कर दे। और जिस तरह एक मनुष्य किसी बहुत बड़े

गोल चक्रका एक बहुत छोटासा भाग देखकर आसानीसे उसे सीधी रेखा समझ बैठता है, वैसे ही हम ज्योतिष-विज्ञानमें उन सस्ते नतीजों और नियमोंको लेकर आसानीसे सन्तुष्ट होजाते हैं जो ज्यादह दूरका अनुभव प्राप्त होनेपर हमें फौरन् त्याग देने पड़ेंगे। उस मनुष्यको, जिसकी हमने अभी मिसाल दी है, अपनी 'सीधी रेखा'के बराबर बराबर शायद बहुत दूरतक जाकर इस बातका पता चलेगा कि वह रेखा सीधी नहीं बल्कि भीतरको मुड़ती हुई है; उसे अपनी इस मुड़ती हुई रेखाके बराबर बराबर शायद और भी अधिक दूरतक जाकर यह मालूम होगा कि वह रेखा गोलचक्र नहीं है; और और भी अधिक दूरतक चलकर उसे पता चलेगा कि वह रेखा अण्डवृत्त (Ellipse है वा व्यावर्त्तन (Speral) है वा अनुवृत्त (Parabola) है वा इन शकलोंमेंसे कोईसी भी नहीं है; किन्तु इस बातसे कि वह किस खास शकलकी रेखा है उस मनुष्यके अन्तिम ध्येयमें जमीन आसमानका फरक पड़ जावेगा। यही हाल ज्योतिषज्ञका है; और फिर भी ज्योतिषको एक निर्भ्रान्त साइन्स माना जाता है!

इसी बातकी दूसरी मिसालके तौरपर मैं मैक्सवेलकी पुस्तक "Theory of Heat P. 31"से नीचे लिखे वाक्य उद्धृत करता हूं; जिन शब्दोंके नीचे जोर देनेके लिये लकीर है वह मेरी दी हुई है;—

"पदार्थोंके उन भौतिक गुणोंको बयान करनेमें, जिनका सम्बन्ध पदार्थोंकी गरमीके साथ है, हमने पहले ठोस चीजोंसे शुरू किया जिन्हें हम सबसे आसानीके साथ उठा सकते और रख सकते हैं, उसके बाद हम पानी जैसी रकीक चीजोंपर आये जिन्हें हम खुले बरतनोंमें रख सकते हैं, अन्तमें अब हम हवा जैसी चीजों (गैसेज) पर आये जो खुले बरतनोंमेंसे उड़ जाती हैं और जो आम तौरपर दिखाई भी नहीं देतीं। इन तीनों

हालतोंका पहलेपहल अध्ययन करनेके लिये यही सबसे अधिक स्वाभाविक क्रम है। किन्तु जब हम एक बार माद्दे की इन तीनों अलग अलग हालतों (यानी ठोस चीजों, रकीक चीजों और हवाई चीजों) के मोटे मोटे गुणोंसे परिचित होजाते हैं तब साइन्सकी दृष्टिसे इन तीनों हालतोंके अध्ययन करनेका सबसे अधिक उचित तरीका इसके ठीक बरअक्स है; यानी पहले हवा जैसी उड़नेवाली चीजें, क्योंकि उनके नियम सबसे अधिक सीधे और सरल हैं, उसके बाद आगे बढ़कर रकीक चीजें जिनके अधिक पेचीदा नियमोंका हमें हवाई चीजोंकी अपेक्षा कहीं ज्यादह अधूरा ज्ञान है, और अन्तमें वे अत्यन्त थोड़ीसी इनी-गिनी बातें जो अभीतक हमें ठोस चीजोंकी बनावटके विषयमें मालूम होसकी हैं।"

इसका मतलब यह है कि 'साइन्स' के लिये उन हवा जैसी चीजोंमें काम करना ज्यादह आसान है जिन्हें हम देख नहीं सकते और जिनके विषयमें हम बहुत कम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, और उसके मुकाबलेमें ठोस चीजोंमें काम करना मुश्किल है जिनसे हम परिचित हैं और जिन्हें हम आसानीसे धर-उठा सकते हैं! यह बड़ा विचित्र नतीजा मालूम होता है किन्तु देखनेसे मालूम होगा कि साइन्सका आम तरीका यही है— सम्भवतः सच यह है कि हवा जैसी उड़नेवाली चीजोंके नियम रकीक चीजों वा ठोस चीजोंके नियमोंसे अणुमात्र भी ज्यादह आसान वा सरल नहीं हैं, किन्तु महज इस वजहसे क्योंकि हम हवा जैसी चीजोंके विषयमें दूसरी चीजोंकी निस्बत इतनी अधिक कम जानकारी रखते हैं, उनकी बाबत नियम घड़ लेना हमारे लिये बनिस्बत ठोस चीजोंके ज्यादह आसान है और हमारी गलतियोंका पकड़ा जाना ज्यादह मुश्किल है।

अब जिस तरह कि 'ज्योतिष' को हम एक "बिल्कुल ठीक साइन्स" इसलिये बना सके क्योंकि उसके सम्बन्धकी असली

घटनाएं इतने बड़े और जबरदस्त पैमानेपर होती हैं कि हम उनका केवल एक बहुत ही छोटासा अंश देख पाते हैं—यानी महज दो-चार छोटी छोटी बातें—और इसीलिये अपने अज्ञानके कारण हम जो चाहे नियम घड़कर जोरोंसे उसका पक्ष लेने लगते हैं; ठीक उसी तरह हमारे वैज्ञानिक बोधके दूसरे सिरेपर रसायन-विज्ञान (कैमिस्टरी) और भौतिक विज्ञान (फिजिक्स) इसलिये करीब करीब ठीक साइन्सें बन गईं क्योंकि इनसे सम्बन्ध रखनेवाली असली घटनाएं इतने सूक्ष्म और बारीक पैमानेपर होती हैं कि हम तमाम छोटी तफसीलोंको नजर-अन्दाज करके केवल यहां-वहां थोड़ेसे मोटे मोटे नतीजोंको देख पाते हैं।

* * * * *

[इस जगहपर रसायन-विज्ञानसे एक उदाहरण लेकर लेखकने अपने ऊपरके कथनको साबित किया है और फिर लिखा है कि—"यही बात बिजली, रोशनी, गरमी और अन्य भौतिक साइन्सोंके विषयमें कही जासकती है; किन्तु जो बात काफी स्पष्ट है उसे और अधिक विस्तारसे साबित करनेकी जरूरत नहीं है।"—अ०]

* * * * *

किन्तु अब यदि मोटे तरीकेपर मुख्तलिफ साइन्सोंको तीन हिस्सोंमें तकसीम किया जावे, पहलेमें ज्योतिष और भू-विज्ञान जैसी साइन्सें, दूसरेमें रसायन और भौतिक विज्ञान जैसी, तो इन दोनोंके अलावा साइन्सके मशाहदेका एक तीसरा मैदान और बाकी रह जाता है; यह मैदान न तो ज्योतिष-विज्ञान (और भू-विज्ञान) के मैदानकी तरह हमसे इतना दूर और इतना ऊपर है कि हम उसके एक बहुत ही थोड़े हिस्सेको देख पाते हैं, और न रसायन-विज्ञान और भौतिक विज्ञानके मैदानकी तरह हमसे इतना अधिक नीचे और देश और कालकी इतनी सूक्ष्मसे सूक्ष्म

स्थितियोंके अन्दर है कि हम उसके केवल मोटे मोटे नतीजोंतक ही पहुंचकर रह जाते हैं; बल्कि यह तीसरा मैदान उन दोनों मैदानोंकी निस्बत मनुष्यके साथ एक ही और बराबरकी सतहपर वाके है;यह मैदान उस संसारका मैदान है जो शरीरधारी संसार कहाता है; इस मैदानकी अनेक साइन्सोंमें व्यक्तिरूपसे और समष्टि-रूपसे मनुष्यका, उसके इतिहास और उसकी उन्नतिका, पशु-जातियोंका, वृक्ष-वनस्पतियोंका, और जीवनके नियमोंका अध्ययन किया जाता है; इसमें जीवन-विज्ञान (बाइओलौजी), समाज-विज्ञान (सोशियोलौजी), इतिहास (हिस्टरी), मनस्-विज्ञान (साइकोलौजी) इत्यादिकी साइन्सें आजाती हैं। अब जाहिर है कि यह मैदान वह मैदान है जिसके विषयमें मनुष्यको सबसे ज्यादह जानकारी प्राप्त है। मैं यह नहीं कहता कि इन बातोंके विषयमें मनुष्य सबसे अधिक नियम घड़ता है, किन्तु वह इस मैदानकी घटनाओंसे और सब मैदानोंकी निस्बत ज्यादत परिचित है। यदि तारोंके घूमने और उनकी आदतोंके बारेमें या रसायनकी चीजोंके बारेमें मनुष्य एक बात देखता है—ज्योतिष-विज्ञान अथवा रसायन-विज्ञानके इन दूरके मैदानोंमें यदि वह एक मशाहदा करता है—तो उसके मुकाबलेमें वह अपने भाई मनुष्योंके चलन और उनकी आदतोंके बारेमें हजारों और लाखों बातें देखता है और जानवरों और वृक्षोंकी आदतोंके सैकड़ों और हजारों मशाहदे करता है। तब क्या यह बात विचित्र बात नहीं है कि इसी मैदानमें आकर मनुष्य सबसे अधिक संशयात्मा होजाता है और सबसे कम जोरोंके साथ अपने विचारों और अपनी कल्पनाओंका प्रतिपादन करता है; और उसे सबसे अधिक संदेह इस बातका रहता है कि इस मैदानमें कोई एक 'नियम' है भी वा नहीं? क्या यह बात हमारे इस पक्षका पूरा पूरा समर्थन नहीं करती कि "साइन्स" एक अल्पज्ञ बालककी तरह ठीक वहांपर सबसे ज्यादह निश्चित

और असंदिग्ध होती है और वहींपर सबसे ज्यादह जोर देती है जहांपर कि उसे वास्तविक ज्ञान सबसे कम होता है।

किन्तु इसके जवाबमें यह कहा जावेगा कि जानदार पदार्थोंके साथ सम्बन्ध रखनेवाली घटनाएं ज्योतिष और भौतिक विज्ञानकी घटनाओंकी निस्बत इतनी ज्यादह पेचीदा हैं कि इस पेचीदगीके कारण ही 'पक्की' साइन्स उनके विषयमें अधिक उन्नति नहीं कर पाती। यद्यपि मनुष्य तारोंकी आदतोंकी निस्बत अपने सहजातीय मनुष्योंकी आदतोंका करोड़ों गुणा ज्यादह ज्ञान रखता है, तथापि मनुष्य-जातिकी आदतोंका विषय तारोंकी आदतोंके विषयकी अपेक्षा करोड़ों गुणा ही ज्यादह पेचीदा है और इसीलिये मनुष्यका बढ़ा हुआ ज्ञान भी 'साइन्स'की इस ओर उन्नति करनेमें कारामद नहीं होसकता। इस मैदानमें साइन्सकी अनिश्चितताकी यह वजह बताई जाती है। किन्तु इसमें सार बिलकुल नहीं। यह बिलकुल एक कल्पनामात्र है कि ज्योतिष-सम्बन्धी घटनाएं सजीव संसारकी घटनाओंसे पेचीदा हैं। यदि हम एक क्षणभरके लिये भी सोचें तो हमें मालूम होजावेगा कि वास्तवमें ज्योतिष-सम्बन्धी घटनाओंकी पेचीदगीका कोई अन्त ही नहीं। चाँदहीकी चालको लीजिये; जो कुछ हमें इस समय इस विषयका थोड़ासा ज्ञान है उससे ही हम जानते हैं कि चाँदकी चालका पृथ्वीकी जगह और उसके डीलके साथ और साथ ही समुद्रके ज्वार-भाटेके साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध है, सूर्यकी जगह और सूर्यके डीलके साथ भी चाँदकी चालका सम्बन्ध है, और हर ग्रह अर्थात् हर सय्यारेकी जगह और उसके डीलके साथ भी चाँदकी चालका सम्बन्ध है, ऐसे ही तमाम दुमदार सितारोंकी अलग अलग जगह और उनके अलग अलग डीलोंके साथ भी चाँदकी चालका सम्बन्ध है और इन दुमदार सितारोंकी संख्या भी असंख्य है और उनके विषयमें हमें ज्ञान भी नदारद,

ऐसे ही उल्का यानी टूटनेवाले तारोंके मार्गोंके साथ चाँदकी चालका सम्बन्ध है, और अन्तमें एक एक तारे वा नक्षत्रकी जगह और उसके डीलका भी चाँदकी चालपर असर पड़ता है! सब जानते हैं कि थोड़ेसे थोड़े समयके लिये भी इस समस्याको हल कर सकना कतई नामुमकिन है, किन्तु इसपर जब 'काल' का प्रश्न भी बीचमें आजाता है और जब हम यह सोचते हैं कि ज्योतिषकी दृष्टिसे इस समस्याके साथ यदि हम थोड़ा-बहुत भी न्याय करना चाहें तो कमसे कम दश लाख वर्षके लिये उसे हल करना होगा, और इस बीचमें पृथ्वी, सूर्य और बाकी तमाम तारागण इत्यादि, जिनपर इस समस्याका हल निर्भर है, सब बराबर अपनी अपनी जगह बद-लते रहेंगे तो यह साफ जाहिर होजाता है कि इस समस्याकी पेचीदगीका कोई अन्त नहीं—और इसपर भी यह सब 'ज्योतिष-विज्ञान' का केवल एक अत्यन्त छोटासा अंश है। इसलिये यह बहस करना कि जानदार पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाली घट-नाओंकी अनन्त पेचीदगीकी निस्बत तारोंकी चालकी अनन्त पेचीदगी अधिक है वा कम है ऐसा ही है जैसा यह बहस करना कि बाप (ईश्वर), बेटा (ईसा) और रूह कुद्स (होली गोस्ट), (ईसाई त्रिमूर्त्ति) में कौन पहले हुआ और कौन पीछे, अथवा यह बहस करना कि रूह कुद्स खुद ब खुद पैदा हुई थी वा किसी दूसरेसे पैदा हुई थी—हम ऐसी चीजोंकी बहस कर रहे हैं जिनकी बाबत हम बिलकुल कुछ भी नहीं समझते।

"कुदरत" एक है। हम अनुमान कर सकते हैं कि वह अपने किसी एक विभागमें दूसरे विभागकी निस्बत कम अगाध, कम गूढ़ अथवा कम अद्भुत नहीं होसकती है। लेकिन चूंकि हमारा अपना जीवन खास खास हालतों और खास खास सीमाओंके अन्दर है इसलिये हम कुदरतके उस हिस्सेको ज्यादह गहराईके साथ देख सकते हैं जो एक प्रकारसे हस्तीकी

उसी सतहपर है जिस सतहपर कि हमारा अपना जीवन है। मनुष्य-जातिके अन्दर हम कुदरतको साक्षात् देखते हैं; यहांपर हमारी नजर घुस सकती है और हम देख लेते हैं कि कुदरत इतनी अगाध और अद्भुत है कि जिसकी किसी तरह हम कल्पना भी नहीं कर सकते; जो कुछ हम मनुष्य-जातिके विषयमें सीख सकते हैं वह सबसे अधिक मूल्यवान शिक्षा है जो हम कुदरतके किसी हिस्सेके विषयमें भी हासिल कर सकते हैं। और जिन मैदानोंमें 'साइन्स' बड़े आनन्दके साथ विहार करती है वहांपर कहना होगा कि हम कुदरतके कपड़ोंका केवल दामिन ही देख पाते हैं; और चाहे हम कितने भी ठीक ठीक उसे क्यों न नापें फिर भी हमें दामिनके सिवा उन मैदानोंमें और कुछ दिखाई नहीं देता।

किन्तु एक और दलील है जिसपर अक्सर बहुत जोर दिया जाता है और जिससे यह साबित करनेकी कोशिश कीजाती है कि साइन्सके 'नियम', साइन्सकी व्याख्याएं और साइन्सके बयानात प्रधान अंशमें सत्य हैं। वह दलील यह है कि इन नियमों आदिकी सहायतासे हम भावी घटनाओंकी पेशीनगोई कर सकते हैं। किन्तु इस दलीलपर हमें अधिक समय खोनेकी जरूरत नहीं है। जे० एस० मिल*ने अपनी "लाजिक" नामक पुस्तकमें दर्शाया है—और थोड़ासा भी सोचनेसे साफ समझमें आजाता है—कि किसी पेशीनगोईकी सफलता यानी सचाईसे यह साबित नहीं होता कि जिस कल्पनाके आधारपर वह पेशीनगोई की गई थी वह कल्पना भी वास्तवमें सच ही है। इससे केवल इतना साबित होता है कि उस पेशीनगोईके लिये वह कल्पना उपयोगी थी।

एक समय वह था जबकि लोग सूर्यको एक ऐसा देवता मानते थे जो प्रति दिन प्रातःकाल अपने रथमें बैठकर निकलता

* १८०६—१८७३, इंगलैण्डका एक मशहूर दार्शनिक।

था, वह भी एक समय था जबकि पृथ्वीको विश्वका केन्द्र माना जाता था और सूर्यको एक आगका गोला माना जाता था जो पृथ्वीके चारों तरफ घूमता था। उन दिनों लोग पूरे निश्चयके साथ यह पेशीनगोई कर सकते थे कि अगले दिन सवेरे सूर्य निकलेगा, बल्कि उसके निकलनेकी घड़ीतक बता सकते थे; किन्तु इससे हम यह नतीजा नहीं निकालते कि उनकी कल्पनाएं ठीक थीं। जब ऐडेम्स और लैवेरिअर (१९वीं सदीके दो यूरोपियन ज्योतिषज्ञ जिन्होंने वर्त्तमान यूरोपके लिये पहलेपहल 'नैप्ट्यून' तारेका पता लगाया) ने इस बातकी पेशीनगोई की थी कि सय्यारा नैप्ट्यून आसमानके अमुक हिस्सेमें दिखाई देगा तो उन्होंने जाने हुए सय्यारोंकी चालोंके जिन सम्बन्धोंको वे देखते थे उनसे एक बेजाने सय्यारेकी बाबत एक छोटीसी पेशीनगोई की थी; किन्तु इससे यह साबित नहीं होता कि इन चालोंके विषयमें वह सर्वव्यापी समझा जानेवाला कल्पित नियम, जो "आकर्षणका नियम" कहलाता है, ठीक है। इससे केवल यह साबित होता है कि उस छोटेसे कार्यके लिये यह नियम उपयोगी सिद्ध हुआ—निस्सन्देह ज्योतिष-विज्ञानकी वास्तविक समस्याओंके मुकाबलेमें, जिनके लिये यह नियम शायद बिल्कुल नाकाफी है, यह पेशोनगोई एक अत्यन्त छोटीसी पेशीनगोई थी।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि टाइचोब्राहे, जो एक बड़ा अच्छा ज्योतिषज्ञ था, चाँदके मार्गके विषयमें प्राक्चक्रके सिद्धान्तको ही मानता रहा। वह समझता था कि पृथ्वीके चारों तरफ चाँदका मार्ग चक्र और प्राक्चक्रका एक खास तरहका मेल है। कैप्लर*ने आकर अण्डवृत्तका विचार शुरू किया। और आगे चलकर उस स्थानके बदलते रहनेके कारण जिसपर पहुंचकर चाँद पृथ्वीके सबसे अधिक निकट आजाता है तथा अन्य

* १५७१—१६३०, जर्मनीका एक मशहूर ज्योतिषज्ञ।

कई कारणोंसे चाँदके मार्गमें जो अन्तर पैदा होजाते हैं, उनकी वजहसे अंडवृत्तके सिद्धान्तको भी छोड़ देना पड़ा और यह मानना पड़ा कि चाँदका मार्ग एक बेअन्त टेढ़ी रेखा है जो किसी खास विन्दुपर अंडवृत्तसे मिलती हुई है और जिसका पृथ्वीसे एक निश्चित औसत फासला बना रहता है किन्तु जो कभी एक ही विन्दुपर वापिस नहीं आती यानी जो किसी खास किस्मकी बन्दशकल नहीं बनाती। अन्तको मिस्टर ज्यौर्ज डार्विनकी खोजोंने निश्चित औसत फासलेकी कल्पनाका भी अन्त कर दिया और अब उसकी जगह एक ऐसी व्यावर्त्तन रेखा (Spiral) की कल्पना कायम की जो रेखा बराबर बाहरकी ओर अधिकाधिक बड़ी होती जाती है। निस्सन्देह कोई भी चार कल्पनाएं एक दूसरेसे इससे अधिक भिन्न नहीं होसकतीं जितनी कि ये चारों कल्पनाएं हैं। तथापि यदि अगले सालके लिये किसी ग्रहणकी पेशीनगोई करनी हो तो इनमेंसे चाहे जिस कल्पनाको काममें लेआइये, कुछ भी अन्तर नहीं पड़ेगा। सच यह है कि असली समस्या इतनी विशाल है कि कुछ साल आगेकी पेशीनगोई उस समस्याके एक प्रकारसे केवल थोड़ेसे बाहरी सिरेको स्पर्श करती है; किन्तु यदि इन चारोंमेंसे हरेक सूरतमें पेशीनगोईके पूरा होजानेसे यह नतीजा निकाला जावे कि वह कल्पना भी सच्ची है जिसके आधारपर पेशीनगोई की गई थी तो अन्तमें ऐसे परस्पर विरोधी नतीजे निकलेंगे कि जिनके जंजालमेंसे निकल सकना कतई नामुमकिन होगा।

इसलिये किसी पेशीनगोईकी सफलता केवल यह जाहिर करती है कि जिस कल्पना वा नियमको आधार मानकर वह पेशीनगोई की गई थी वह कल्पना वा नियम उस पेशीनगोईका काम चलानेमात्रके लिये उपयोगी सिद्ध हुआ। बतौर इस तरहकी उपयोगी कल्पनाओंके, और यदि उनका उपयोग केवल इतने थोड़े थोड़े समयके लिये किया जावे जिनके अन्दर उनकी

सत्यता और असत्यताकी परख की जासकती है, तो इस काम-के लिये साइन्सकी कल्पनाएं सचमुच बड़ी अमूल्य हैं वास्तवमें इतनी अमूल्य हैं कि उनके बिना हमारा काम ही न चल सकता था; किंतु जब इन कल्पनाओंको असली चीजें मान लिया जाता है, जबकि मिसालके तौरपर उस "आकर्षणके नियमको, जो सूर्य तारागण आदिकके बहुत ही थोड़ेसे अध्ययनसे घड़ लिया गया है, एक व्यापक सत्यता मान लिया जाता है, जब लाखों तथा करोड़ों वर्ष आगे-पीछेकी घटनाओंका उससे हिसाब लगाया जाने लगता है, और सय्यारोंके मार्ग, अथवा पृथ्वीकी आयु, अथवा सैर जगत्के स्थायित्वके विषयमें उसके आधारपर ऐसी पेशीनगोइयांकी जाती हैं जिनकी सचाईकी कोई परख नहीं हो सकती—तो हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि जो लोग इस तरहकी दलीलें करते हैं वे असलीयतसे दूर मानो असली-यतरूपी गोल चक्रको केवल स्पर्श करती हुई एक सीधी रेखाके ऊपरसे उड़े चले जारहे हैं। क्योंकि जिस तरह किसी चक्रके एक बहुत थोड़ेसे भागमें चक्रकी दिशा और उस स्थानपर स्पर्श करनेवाली सोधी रेखाकी दिशा एक ही होती है वैसे ही साइंस-की ये कल्पनाएं उस छोटेसे मैदानमें, जो हमारे मशाहदेमें आजाता है, कुदरतकी सच्चाइयोंको खासा अच्छा प्रकट कर देती हैं; किन्तु जिस तरह उस सीधी रेखापर चलते चलते हम बहुत जल्दी चक्रसे हट जाते हैं उसी तरह अपने असली मशाहदेके मैदानसे बाहर थोड़ी दूरतक भी इन कल्पनाओंका अनुसरण करके हम शीघ्र ही असलीयतसे जुदा होजाते हैं *।

* प्रायः हमारे तमाम विचारों, हमारी कल्पनाओं, और हमारे घड़े हुए "नियमों" इत्यादिके विषयमें यह कहा जासकता है कि वे उसी तरह एक नुक्तेपर "कुदरत" नामकी असलीयतको स्पर्श करते हैं जिस तरह एक सीधी रेखा एक नुक्तेपर किसी चक्रको स्पर्श करती है। उस नुक्तेपर वे विचार आदि असलीयतकी दिशाको सूचित करते हैं और

'साइन्स'के आम तरीकेके सम्बन्धमें दो-चार शब्द और। साइन्स "कुदरत"की घटनाओंको देखकर उनसे "नियम" घड़ती है, ऐसी छोटी छोटी मामूली बातोंसे जिन्हें देखा और अनुभव किया जासकता हैं साइन्स ऐसे बड़े बड़े छायारूपी असूल कायम कर लेती है जो न स्पर्श किये जासकते हैं और न देखे जासकते हैं। दूसरे शब्दोंमें अपने विचार करनेकी आसानीके लिये हम चीजोंकी कई अलग अलग श्रेणियां बना लेते हैं। यह अलग अलग श्रेणियां किस तरह बनती हैं? यह इस तरह बनती हैं कि अलग अलग पदार्थोंकी भिन्नतामें भी हमें कहीं कहीं एक तरहकी समानता दिखाई देती है। बहुतसे पदार्थोंमें मुझे कुछ गुण एक समान दिखाई देते हैं। कहना होगा कि इन एक समान गुणोंको मिलाकर मैं उनकी एक प्रकारकी डोरी बना लेता हूं जिससे मैं अपने दिमागमें उन सब पदार्थों-को इकट्ठा बांधकर रख देता हूं, ताकि मुझे उनके विषयमें सोचनेमें आसानी हो। इस डोरीका मैं एक नाम रख लेता हूं और उस गट्ठे के हर एक पदार्थको उसी नामसे पुकारने लगता हूं। जैसेकि, जो मिसाल मैं अभी देचुका हूं उसमें, बहुतसे कुत्तोंके अन्दर कुछ समान गुण देखकर मैं इस गुण-समूहका नाम "फाक्स हाउण्ड" रख लेता हूं, और उसके बाद अपने

उस नुक्तेपर ही वे सच हैं। किन्तु यदि उस नुक्तेसे हम जरासा भी इधर-उधर हट जावें तो हमें उन सब विचारों और कल्पनाओंको नये सिरेसे घड़ना होगा। सीधी रेखाओंकी संख्या अनन्त है किन्तु चक्र एक ही है। यह उपमा न केवल "साइन्स" और "कुदरत" के सम्बन्धको ही सूचित करती है, वरन् मनुष्यकी अन्य 'कलाओं' और उनकी साम-ग्रीके सम्बन्धको भी दर्शाती है। कवि अपने भावोंको प्रकट करता है, किन्तु वह स्वयं उन्हें अधिक महत्त्व नहीं देता। वह जानता है कि उसके भाव स्वयं 'सत्य' नहीं हैं, किन्तु "सचाई" को केवल स्पर्श करते हैं। उसकी पंक्तियां उस चक्रका एक खोल हैं जो उसकी असली कविता है।

दिमागके अन्दर इन सब पदार्थोंको मिलाकर रखनेके लिये "फाक्स हाउण्ड" नामका ही उपयोग करता हूं; इसके बाद उसी तरहके दूसरे पदार्थोंमें कुछ दूसरे सामान्य गुण देखकर इन दूसरे गुणोंको जाहिर करनेके लिये मैं 'ग्रे-हाउण्ड' शब्दको ईजाद करता हूं। 'फाक्स-हाउण्ड' नामकी कल्पना जिन अलग अलग पदार्थोंको सूचित कर उन पदार्थोंमें और इस कल्पनामें अन्तर यह है कि वे पदार्थ (जिन्हें हम कहते हैं) असली कुत्ते हैं जिनमेंसे हर एकमें हजारों ही गुण मौजूद हैं; किसीका एक दाँत टूटा हुआ है, दूसरा करीब करीब सारा सफेद रंगका है, तीसरा "सैली" नाम लेनेपर झट आजाता है, इत्यादि; किन्तु यह कल्पना केवल मेरे दिमागके अन्दर एक मन-घड़न्त रूप है, जो थोड़ेसे इने-गिने गुणोंका एक समूह है जिसमें किसी तरहकी व्यक्तिता अर्थात् वैयक्तिक विशेषता) नहीं है— वह एक प्रकारका छोटासा जुज-ए-आजम (G. C. M.) है जो बड़ी बड़ी संख्याओंकी एक लम्बी पंक्तिपर विचार करके उनसे अख्ज कर लिया गया है।

अब फाक्स हाउण्ड, ग्रे हाउण्ड और इसी तरहकी अन्य अनेक कल्पनाओंको रचनेके बाद मुझे मालूम हुआ कि इन सब-में भी कुछ थोड़ेसे गुण एक समान पाये जाते हैं, इसपर मैंने एक नई कल्पना यानी "कुत्ता" नामकी रचना की। निस्सन्देह यह "कुत्ता" पहलेसे भी ज्यादह 'खयाली' है, यह एक कल्पना-की भी कल्पना है। वास्तवमें इस तमाम तरीकेकी विशेषता यह है कि, जैसा हम किसी मौकेपर कह चुके हैं, जितने ज्यादह वसीअ पैमानेपर हमारा खयाल जायगा उतनी ही उसकी गह-राई कम होगी; अथवा दूसरे शब्दोंमें, जैसा साफ जाहिर है, जिन पदार्थोंकी हम तुलना करते हैं उनकी संख्या जैसे जैसे बढ़ती जाती है वैसे वैसे ही उन सबके सामान्य गुणोंकी संख्या घटती जाती है। अन्तको, जैसाकि हम शुरूमें ही बतला

चुके हैं, जब एक काफी तादाद पदार्थोंकी लेली जाती है तो हमारा कल्पित विचार (चाहे वह "कुत्ता" हो वा चाहे कुछ भी क्यों न हो) पिघलकर खतम होजाता है और फिर उसका कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। "साइन्स"का और वास्तवमें मनुष्यके तमाम भौतिक ज्ञानका यही कठिन चक्र है कि अपने खास तरीकेपर चलनेके लिये उसे जरूरी तौरपर असलीयतकी खुश्क जमीनको छोड़कर कल्पनाओंकी दलदलमेंसे जाना पड़ता है, और ये कल्पनाएं जितनी जितनी साइन्स आगेको बढ़ती जाती हैं उतनी उतनी ही अधिक दुर्बल, अधिक नाजुक; और उठाने-धरनेके नाकाबिल होती जाती हैं, यहांतक कि अन्तमें उड़कर छायामात्र रह जाती हैं। तथापि यह तरीका बिल्कुल जरूरी है, क्योंकि मनुष्यका दिमाग केवल इस तरीकेपर ही कुदरती पदार्थोंके साथ व्यवहार कर सकता है।

अब हम इस अन्तिम बातपर एक क्षणभरके लिये विचार करते हैं। यह बात जाहिर है कि संसारका हरएक पदार्थ हर दूसरे पदार्थके साथ सम्बन्ध रखता है—वास्तवमें हर पदार्थका अस्तित्व केवल दूसरे पदार्थोंके साथ इस सम्बन्धके कारण ही कायम है; इसलिये हर पदार्थके कुल गुणोंकी संख्या अनन्त है (क्योंकि एक एक गुण इस तरहका एक एक सम्बन्ध जाहिर करता है)। इसीलिये इन्सानका महदूद दिमाग इस तरहके किसी पदार्थको (पूरी तरहसे) ग्रहण करनेकी शक्ति अपनेमें नहीं रखता—वह किसी प्रकार भी किसी असली पदार्थका चिन्तन ही नहीं कर सकता। इसलिये किसी पदार्थके साथ व्यवहार करनेके लिये दिमागको मजबूरन् उसके अनन्त गुण-समूहमेंसे थोड़ेसे गुण अलग कर लेने पड़ते हैं (यही वह अज्ञान्-का तरीका वा कोरी कल्पनाओंका वह तरीका है जिसका हम ऊपर जिकर कर चुके हैं)—अर्थात् उस पदार्थके दूसरे तमाम पदार्थोंके साथ जो अनन्त सम्बन्ध हैं उनमेंसे थोड़ेसे सम्बन्ध

अलग लेकर मनुष्यको पहले उनका चिन्तन करना पड़ता है। दूसरे सब सम्बन्धोंका चिन्तन वह बादमें यथायोग्य समयपर करता रहेगा। इस प्रकार उस पदार्थसे उसके बहुसंख्यक गुणोंको जुदा करके और केवल थोड़ेसे गुणोंको रहने देकर, जिनको मिलाकर वह एक कल्पना घड़ लेता है, इन्सानका दिमाग वास्तवमें असली पदार्थोंको छोड़कर एक सायेके पीछे चलने लगता है, किन्तु इस सबके बदलेमें उसे एक ऐसी चीज मिल जाती है जिसे वह हाथमें लेसकता है, जो इतनी हलकी होती है कि उसे वह इधर-उधर ले जा भी सकता है, और जो कागजके नोटोंके समान कुछ समयके लिये और खास खास हालतोंमें वास्तवमें 'धन' का काम देसकती है वा उस दर्जेतक धन है। डर केवल इस बातका है कि यह दिमाग इस तरह अपनी ही घड़ी हुई अधूरी कल्पनाकी बढ़ी हुई उपयोगितासे धोकेमें आकर कहीं उसे असली धन न समझ बैठे, उसे बाहरी संसारके मैदानमें बढ़ाकर उसमें वह असलीयत फर्ज न कर बैठे जो वास्तवमें केवल पदार्थोंमें ही है, अर्थात् जो असलियत केवल उन पदार्थोंमें है जिनमेंसे कि हर एकमें अनन्त गुण मौजूद हैं।

साइन्सका खास तरीका अब हम साफ साफ समझ गये और आजकलके साइन्सके नतीजोंसे उसकी अनेकानेक ही मिसालें भी दी जासकती हैं। हमारा तजरबा उन सब अनुभवोंसे मिलकर बनता है जो हमें पांच इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त होते हैं। हम भारी चीजोंके बोझको अनुभव करते हैं; हम देखते हैं कि जब इन चीजोंको छोड़ दिया जाता है तो वे गिर पड़ती हैं; हम गरमी और सरदी; रोशनी और अन्धेरे इत्यादिको अनुभव करते हैं। किन्तु ये सब अनुभव थोड़े वा बहुत दर्जेतक एक देशीय होते हैं, और मनुष्य मनुष्यके अनुभवमें अन्तर होता है; स्वभावतः हम उन सबके लिये कोई ऐसा सामान्य माप ढूंढ़ निकालना चाहते हैं जिसके द्वारा हम उन अनुभवोंके विषयमें

बातचीत कर सकें और अनुभव करनेवाले मनुष्योंकी अलग अलग वैयक्तिक खासियतोंका लिहाज न करते हुए उन अनुभवोंको ही ठीक ठीक बयान कर सकें। इस तरह हम कोई ऐसी सामान्य घटना ढूंढ़ निकालना चाहते हैं जो मनुष्यके सरदी, गरमीके अनुभवों वा रोशनी और अन्धेरेके अनुभवोंकी (जैसा हम कहते हैं) जड़में हो वा उनके अन्तर्गत हो, अथवा कोई ऐसी बात जिससे चीजोंका नीचे गिरना समझमें आसके (अर्थात् जो सदा उस तरहकी घटनाओंमें मौजूद हो)—इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिये हम कल्पनाएं रचनेके उस तरीकेको काममें लाते हैं जिसका ऊपर जिकर किया गया है; अर्थात् हम बहुतसी अलग अलग चीजों वा अलग अलग घटनाओंको देखकर फिर यह पता लगाते हैं कि उन सबमें कौन कौनसे गुण वा कौन कौनसी बातें सामान्य हैं। यहांतक हमारा काम बहुत ठीक है। किन्तु ठीक इसी जगहपर मामूली साइन्सके तरीकेकी भ्रान्ति उत्पन्न होती है, क्योंकि इस बातको भूलकर कि ये सामान्य गुण असली घटनाओंको देखकर उनसे घड़ी हुई केवल कल्पनाएं मात्र हैं, हम उन कल्पनाओंहीके अस्तित्वको सच्चा वा असली मान बैठते हैं, और असली घटनाओंको उलटा उनके गौण नतीजे, वा इन "कारणों" के "कार्य" इत्यादि समझने लगते हैं। मोटी भाषामें यह घोड़ेके आगे गाड़ीको खड़ा करना अथवा इन्सानके आगे उसके सायेको रखना है। मिसालके तौरपर यह देखकर कि अलग अलग रंगों और अलग अलग शकलोंके बहुतसे पदार्थ जमीनकी ओर गिरते हैं वा झुकते हैं हम गिरनेके इस सामान्य गुणका एक अलग अस्तित्व मानने लगते हैं जिसका नाम हम "आकर्षण शक्ति" (Attraction on Gravitation) रखते हैं—और अन्तको यह प्रतिपादन करने लगते हैं कि 'प्रकृति' के तमाम छोटे-बड़े पदार्थोंके बीचमें वा उनके ऊपर एक सर्वव्यापक आकर्षण-शक्ति काम कर रही है!

ऐसे ही यह देखकर कि बहुतसी भिन्न भिन्न चीजें जैसे पानी, हवा, लकड़ी इत्यादि हममें वह अनुभव पैदा करती हैं जिसे हम आवाज कहते हैं, और इन सबकी सूरतमें कांपना यानी तरङ्गोंका उठना (Vibration) एक सामान्य तत्त्व है, हम तरङ्ग उठनेके इस गुणको अलग करके उसका स्वतन्त्र अस्तित्व मानने लगते हैं और उसे आवाजका कारण बताने लगते हैं। किन्तु यद्यपि हम इस तरह सोचने लगें कि साया मनुष्यसे अलग है, तथापि साया मनुष्यसे अलग हो नहीं सकता; और यद्यपि हम गिरनेको वा तरंगोंको लकड़ीसे वा पत्थरसे अलग सोचनेकी कोशिश भले ही करें, तथापि इस तरहका गिरना और इस तरहकी तरंगे इन पदार्थोंसे वा इसी तरहके अन्य पदार्थोंसे अलहदा कभी नहीं होसकतीं, और उनके इस तरह अलहदा अस्तित्वकी बात-चीत करनेकी कोशिशका नतीजा यह होता है कि हम अन्तमें केवल बेमाइने बकवास करने लगते हैं। इससे भी अधिक विचित्र मूर्खता हमारी उस समय दिखाई देती है जबकि कभी कभी जिन कल्पनाओंको हम इस तरह असली हस्तियां फर्ज कर लेते हैं उनके वे समस्त गुण जिनको मिलाकर वे कल्पनाएं घड़ी गई हैं बिल्कुल फर्जी ही होते हैं, जिनका किसीको कुछ भी अनुभव नहीं होता, जैसेकि रोशनीके तरंग-वाद (अड्यूलेटरी थियरी) में (रोशनीका कारण खोजनेके लिये) एक ऐसा असम्भव 'ईथर' फर्ज कर लिया गया है जिसमें वे तरंगें पैदा होसकें और भौतिक विज्ञानके अणुवाद ऐटमिक थियरीमें एक ऐसा अणु (ऐटम) फर्ज कर लिया गया है जो सख्तसे सख्त भी है और साथ ही साथ हर तरफको जिस तरह चाहें मुड़ भी जाता है। निस्सन्देह इस सबका नतीजा वही है जोकि हम देख रहे हैं कि हर एक दिशामें 'साइन्स' आज दिन अपने तईं असाध्य कठिनाइयों और केवल बेहूदगियोंमें फँसा हुआ पाती है।

[इस जगहपर ग्रन्थकारने बड़े विस्तारके साथ आकर्षणके नियम (Law of Gravitation), ईथरकी तरंगोंसे रोशनीकी उत्पत्तिके सिद्धान्त (Undulatory theory of ligt), और अणुवाद(Atomic Theory) इन तीनोंको अलग अलग लेकर इनमेंसे हर एककी भ्रान्ति और असत्यताको दर्शाया है। उसने दर्शाया है कि आकर्षणके नियमकी वैज्ञानिक परिभाषामें जिन शब्दोंका उपयोग किया गया है उनका न कोई निश्चित अर्थ है न होसकता है, इस नियमके पता लगानेवाले विद्वान् स्वयं न्यूटनका कथन है कि कोई बुद्धिमान् आदमी बिना किसी सर्वव्यापक माध्यमको माने दो पदार्थोंके बीचके आकर्षणमें विश्वास नहीं कर सकता। अब यदि भौतिक माध्यम माना जावे तो कठिनाइयां अनन्त हैं और यदि किसी दूसरे प्रकारका माध्यम माना जावे तो नियम ही विज्ञानके क्षेत्रसे बाहर होजाता है। इसके अतिरिक्त जिस स्थितिमें इस समय विश्वके पदार्थ हैं उसमें ग्रन्थकारका दावा है कि एक अत्यन्त छोटेसे दायरेके बाहर यह नियम हरगिज ठीक नहीं होसकता। रोशनीका अथवा चीजोंके दिखाई देनेका कारण तरंगों (Vibrations) को मानकर 'साइन्स' के लिये जरूरी होगया कि वह इन सर्वव्यापककी तरंगोंके लिये भी किसी न किसी सामान्य और सर्वव्यापक माध्यमको खोल निकाले, और तुरन्त एक 'ईथर' की कल्पना कर डाली गई। "इस 'ईथर' को लेकर हमें पता लगा कि हमारी (साइन्सकी) जरूरतोंको पूरा करनेके लिये वह एक ऐसी चीज होनी चाहिये जिसका एक मुरब्बा इञ्चके ऊपर १७ मिलियन मिलियन पौण्ड (यानी दो खरब वा २०७ अरब मनसे ऊपर) वजन पड़ता हो, और इसपर भी इतनी बारीक वा सूक्ष्म हो कि हवाके हलकेसे हलके श्वासमें उससे रुकावट न पड़ने पावे; जबकि वह इतनी बारीक है कि हम किसी तरहसे भी उसे देख वा परख नहीं सकते, फिर भी उसकी तरंगों

वा उसके हिलनेमें इतनी ताकत है कि वे तरंगें ठोससे ठोस पदार्थोंको हिला डालती हैं और उनके टुकड़े टुकड़े कर डालती हैं; ईथर एक ऐसी चीज है जो कुछ शीशेके समान घनी और ठोस चीजोंमेंसे आसानीके साथ निकल जाती है किन्तु कुछ कौर्क जैसी हलकी और झिरनी चीजोंमेंसे नहीं निकल पाती, इत्यादि इत्यादि ! सारांश यह कि ईथर एक ऐसी चीज है जो खयालमें नहीं आसकती। जिस तरह कि इस तुरत-फुरत काम करनेवाली और अनुवाद किये जानेके नाकाबिल 'आकर्षण शक्ति' के ऊपर वैसे ही इस अभेद्य और अस्पृश्य ईथरके ऊपर 'साइन्स' श्रद्धाके साथ व्यर्थको अपना सर रगड़ती है। 'कल्पनाओंको असलीयतें मानकर' (Personification of abstractions *) अथवा अपने 'मानस-चित्रोंको भौतिक पदार्थ करार देकर' (Reification of Concepts ‡) साइन्स इन बेमाइने बेहूदगियोंको घड़ती है और फिर गम्भीरताके साथ और सच्चे विश्वासके साथ उन्हें समझनेकी कोशिश करती है; जिस 'मम्बो जम्बो' (अफरीकाकी कुछ हब्शी जातियोंका एक देवता) की पूजाके लिये 'साइन्स' एक समय मजहबका मजाक उड़ाती थी वैसा ही एक अपना 'मम्बो जम्बो' खड़ा करके अब साइन्स खुद श्रद्धाके साथ अपनी आंखें बन्द करके उसमें विश्वास करनेकी कोशिश करती है।" इसके बाद ग्रन्थकारने अणुवाद (Atomic Theory) के थोथलेपनको दर्शाया है। वह कहता है कि दिमागी ढङ्गपर किसी न किसी तरह भौतिक संसारकी रचनाको समझानेके लिये 'साइन्स' को एक 'अणु' (Atom) की कल्पना करनी पड़ी और यह मान लेना पड़ा कि दुनियाकी तमाम चीजें अणुओंहीकी बनी हुई हैं।

* J. S. Mill.

‡ देखो Stallo की बढ़िया पुस्तक Concepts of Modern Physics.

किन्तु "अणुका न कोई रंग है, न बू; न गरमी, न स्वाद; न जान और न समझ; उसमें केवल 'माद्दा' है और 'हरकत' (Mass and Motion) है; क्योंकि खयालके अन्दरमें केवल माद्दा और हरकत, इन दो चीजोंके अलावा बाकी सब चीजोंको अलग करके ही उसकी कल्पना की गई है। यह अपने एक "खयाल" को बढ़ाकर कुदरतकी पुश्तपर लाद देना है। और यह अणु, एक बेमाइने और बेहूदा चीज है। इस तमाम वसीअ विश्वमें रंग, बू, गरमी, जान और समझसे अलहदा 'माद्दा' और हरकत' नामकी कोई चीजें नहीं हैं। 'अणु' खयालमें भी नहीं आ-सकता। वह अत्यन्त यानी पूरी तरह सख्त है और पूरा लचकदार है, जिसका यह अर्थ हुआ कि वह एक ही समयमें मुड़ता भी है और नहीं भी मुड़ता; उसका रूप है और उसका कोई रूप नहीं है; वह सबसे सम्बन्ध रखता है और फिर भी सबसे बिल्कुल अलग है। लोगोंके सामने अपने इस 'मम्बो जम्बो' के मतको ठीक साबित करनेके लिये इस 'अणु' के उपासकोंको अपना बेहद सर खपाना पड़ा है। एक विद्वान् कहता है कि 'अणु' केवल निष्क्रिय माद्दा है जिसमें सिवाय रुकावटके और कोई शक्ति नहीं; दूसरा कहता है कि 'अणु' में माद्दा बिल्कुल नहीं वह केवल शक्तिका एक केन्द्र है; तीसरेकी राय है कि अणु स्वयं माद्दा नहीं है बल्कि केवल दूसरे माद्दे के अन्दर एक प्रकारका छोटासा भवंर (Vortex) है! किन्तु सब इस बातमें सहमत हैं कि 'अणु' मामूली समझकी चीज नहीं है, अब नतीजा केवल यह रह जाता है कि वह एक बेसमझीकी यानी बेवकूफीकी चीज (Nonsense) है।" इत्यादि]

और इसी तरह अन्य सब दिशाओंमें मनुष्यका दिमाग "कुदरत"रूपी गोल चक्रसे स्पर्श करती हुई सीधी रेखाएं बनाकर उनके ऊपरसे उड़कर दूर निकल जाता है और अपने तईं बेअंत ऐसी नेस्तियोंमें जा गिराता है जो 'कुदरत' से घड़ी हुई केवल

कल्पनाएं, केवल फर्जी भूतोंकीसी छायाएं हैं।
और उचित, क्योंकि अभीतक मनुष्यका दिमाग केवल भूत ही देख सकता है असलीयतें नहीं देख सकता; तथापि इसमें किसी तरहका भ्रम नहीं रहना चाहिये ; इन भूतोंको असलीयतें नहीं समझ बैठना चाहिये; क्योंकि वे तो एक दूसरेके साथ भी नहीं खप सकते। जिस तरहके 'अणु' से भौतिक विज्ञानवालोंका काम चल सकता है उस तरहके 'अणु' से रसायन-विज्ञानवालों का काम नहीं सर सकता। जो 'ईथर' रोशनीका माध्यम बन सकता है वह ईथर सर्वव्यापी 'आकर्षण'का माध्यम नहीं हो-सकता।

इन बारीकियों और बाद्-विवादोंमें पड़नेकी जरूरत ही न होती यदि यह बात:जाहिर न होती कि, जैसा मैंने शुरूमें कहा था, आजकलकी साइन्स स्पष्ट अथवा अस्पष्ट ढङ्गसे द्रष्टा "मनुष्य" (यानी आत्मा) को अलग करके उसके बिना ही प्रकृतिकी घटनाओंको समझानेका प्रयत्न करती है। यह देख-कर कि अपनी रोजमर्रहकी जिन्दगीमें जो मामूली बातें हम कहते रहते हैं वे वास्तवमें बिल्कुल यथार्थ नहीं होतीं, बल्कि देखनेवाले और बात कहनेवाले मनुष्यकी अपेक्षासे ही सच होती हैं—अर्थात् मनुष्यके अपने वैयक्तिक अनुभवमें रंगी होती हैं—कुदरती तौरपर साइन्सने कोई ऐसी बात ढूंढ निकालनेकी कोशिश की जो बिल्कुल यथार्थ हो और जो मनुष्यके अनुभवपर निर्भर न हो; किन्तु निस्सन्देह इस तरहकी कोशिशमें साइन्सको असफलता पहलेहीसे बदी हुई थी, क्योंकि सिवाय ऊपर लिखे अज्ञानके तरीकेपर फर्ज कर लेनेके किसी घटनाके विषयमें वा किसी घटना-समूहके विषयमें कोई बात बिल्कुल यथार्थ हो ही नहीं सकती और यह भी जाहिर है कि कोई बात जो कही जावे वास्तवमें मनुष्यके वैयक्तिक अनुभवसे बाहर नहीं जासकती। मिसालके तौरपर जब कोई मनुष्य कहता

है—"आज सरदी है" तो मानना पड़ेगा कि उसके इस कथनमें एक शोकजनक संदिग्धता और अस्पष्टता है जो मनुष्यके सब कथनोंमें स्वाभाविक है। "आज"— आज क्या चीज है? "सरदी"—सरदी किस माइनेमें? तुम्हारे लिये सरदी, वा दूसरे लोगोंके लिये सरदी, वा कुतुबके पासके बरफानी टापुओंमें रहनेवाले रोछोंके लिये सरदी वा थरमामेटर-में दिखाई देनेवाली सरदी? "है"—क्या तुम्हारा मतलब 'है' ही है? या तुम कहना चाहते हो,'महसूस होती है' वा "मालूम होती है?" इत्यादि। इस मौकेपर 'साइन्स' एक प्रामाण्य रूप धारण करके सामने आती है और उस मनुष्यके कथनको दुरुस्त करती है। साइन्स कहती है, "टैम्परेचर तीस दर्जे फाहरेन हीट है।" गोया इस कथनसे मामला तै होगया। किन्तु क्या वास्तवमें इससे मामला तै होजाता है? कौन जानता है"टैम्परेचर"क्या चीज है? उसकी परिभाषा साइन्समें क्या है? Clerk Maxwell की पुस्तक Theory of Heat, P. 2. पर लिखा है—"किसी चीजका टैम्परेचर वह मिकदार है जिससे जाहिर होता है कि वह चीज कितनी ठण्डी वा कितनी गरम है।" यह कहना करीब करीब ऐसा ही मालूम होता है जैसा यह कहना कि—"किसी चीजका रंग वह मिकदार है जिससे जाहिर होता है कि वह चीज कितनी नीली, लाल वा पीली है।" इससे हम अपने ज्ञानके मार्गपर अधिक आगे नहीं बढ़ते।

* * ❀ ❀

[इस जगहपर ग्रन्थकारने 'गरमी' अथवा 'टेम्परेचर' के विषयमें शुरूसे आजतकके साइन्सके तमाम सिद्धान्तोंको लेकर विस्तारके साथ उनकी भ्रान्ति और असत्यताको दर्शाया है। थरमामिटरके विषयमें वह बीचमें लिखता है कि—"एक यही अकेली बात, कि थरमामिटरके ऊपर जो दर्जे बने हुए हैं उनमें

बिल्कुल बराबर फासला होता है, साफ जाहिर करती है कि जिस जिस तरह पारा नलीके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक फैलता जायगा उसके कुल फैलाव यानी राशिके साथ दर्जेका हिसाब बराबर बदलता रहेगा।" इत्यादि।]

* * * *

इस सबका नतीजा यह हुआ कि बावजूद 'ताकत' (Energy) और 'अणुओं' (Atoms) की इस कदर चर्चाके 'साइन्स' को शोकके साथ कहना पड़ता है कि वह अभीतक शब्द 'टेम्परेचर' का कोई माननेयोग्य अर्थ नहीं बता सकी; वह अज्ञात चीज अभीतक अज्ञात ही है; कोनेके पासकी वह आजाद हस्ती अभीतक हमारे हाथोंसे खिसक जाती है। मनुष्यके अपने अनुभवसे पृथक कुदरतके अन्दर किसी स्वतंत्र अस्तित्वको पता लगनेकी कोशिशद्वारा ही साइन्स घूम-फिरकर एक बेमाइने बातपर आपहुंची। जब उस आदमीने कहा था कि "आज सरदी है" तो यद्यपि निस्सन्देह उसके कथनमें एक शोकजनक अस्पष्टता थी तथापि उसके कुछ माइने थे; वह अपने अनुभवको बयान कर रहा था, वा सम्भव है उसने सड़कपर कुछ बरफ पड़ा हुआ वा जमा हुआ देखा हो, किन्तु जब, इस कोशिशमें कि मानव-अनुभवको छोड़कर कोई स्वतन्त्र बात कहनी चाहिये, साइन्सने ऐसा न किया कि 'टेम्परेचर तीस दर्जे है' तो साइन्सने एक ऐसी बात कह दी जो यद्यपि सम्भव है ऊपरसे देखनेमें स्पष्ट मालूम होती है किन्तु जिसका आजतक न साइन्सने कोई निश्चित अर्थ बताया और न कभी बता सकती है *।

* निस्सन्देह मेरा इस सबसे यह मतलब नहीं है कि व्यवहारके लिये थरमामीटर या दूसरे इसी तरहके औजारोंका उपयोग न किया जावे। वास्तवमें यही तो साइन्सका असली और न्याय्य मैदान है। किन्तु जैसाकि मैं ऊपर पेशीनगोईके विषयमें कह चुका हूं, किसी ठीक ठीक

यही हाल'साइन्स'की दूसरी कल्पनाओंका है। यह 'कल्पना' कि संसार वा किसी भी पदार्थकी कुल ताकत स्वयं न कम हो सकती है और न बढ़ सकती है (The "law" of the conservation of Energy.) यदि वह पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको अपनी ताकत दे न दे वा उससे ताकत ले न ले, यह कल्पना कि संसारकी असंख्य पशु-जातियोंमेंसे दूसरोंकी निस्बत अधिक बलवान जातियां ही कायम रहती हैं (Survival of the Fillest)—जितना अधिक इन कल्पनाओंपर विचार किया जावे उतना ही इनका कोई ऐसा अर्थ कर सकना जो दर असल समझमें आजावे असम्भव मालूम होता है। "दूसरोंसे अधिक बलवान",इस वाक्यमें ही वास्तवमें वह बात फर्ज कर ली गई है जिसे साबित करना था वा जिसपर विचार करना था और "ताकतके कायम रहने" का तमाम सिद्धान्त केवलमात्र "आकर्षण" (Gravitation) के अत्यन्त सूक्ष्म 'सिद्धान्त'का और भी अधिक सूक्ष्म यानी हवाई रूप है। रसायन-विज्ञानमें जिन्हें 'तत्व' (Chemical Elements) कहा जाता है वे भी केवल ऐसी खयाली कल्पनाएं हैं जिनमेंसे हर एकमें केवल तीन तीन वा चार चार गुण हैं ओर जिन्हें असलीयतन् फर्ज करके बाहरी दुनियाके ऊपर थोप दिया गया है। दुनियाके जिन अगणित अलग अलग पदार्थोंकी रचना इन 'तत्वों' द्वारा बताई जाती है उन पदार्थोंकी अपेक्षा ये तत्व ज्यादह 'असली' नहीं बल्कि कहीं कम असली हैं, और उनको तत्व मानना तो केवलमात्र कल्पना और भ्रान्ति है। शायद 'शुद्ध कारबन' वा 'शुद्ध स्वर्ण' की चर्चा करना असलीयतमें वैसा ही बेमाइने है जैसा

नतीजोंका निकल आना एक बात है और उन कल्पनाओं वा सिद्धान्तोंका सच्चा होना जिनके आधारपर वे नतीजे निकाले गये हैं बिल्कुल एक दूसरी ही बात है। थरमामिटरसे काम लेनेमें 'टैम्परेचर' शब्दका जिकर करनेकी भी जरूरत नहीं होती।

'शुद्ध बन्दर' या 'शुद्ध कुत्ते' की बात करना [अर्थात् जिस तरह कि कोई कुत्ता ऐसा नहीं मिल सकता जिसमें कुत्तेपनके सामान्य गुणोंके अलावा अनेक ही वैयक्तिक गुण भी मौजूद न हों ऐसे ही संसारमें कोई ऐसी चीज नहीं होसकती जिसमें शुद्ध स्वर्णके गुणोंके अलावा अगणित और बातें मौजूद न हों—अ०] इस तरहकी कोई चीजें संसारमें नहीं हैं, केवल मनमानी परिभाषाओंके जरिये और अज्ञानके तरीकेसे हम इस तरहकी चीजोंमें विश्वास करने लगते हैं।

यथार्थ ज्ञानकी तलाशमें और इस उम्मीदमें कि कुदरती घटनाओंकी तहमेंसे छानते छानते कोई न कोई चीज ऐसी निकल आवेगी जो इन्सानी और वैयक्तिक न होकर स्वतन्त्र, नित्य और निर्विकार होगी, 'साइन्स' लगातार इन घटनाओंमेंसे इन्सानी और वैयक्तिक अंशको यानी अनुभवके अंशको निकाल बाहर करती रही है। और (अभीतक) तमाम साइन्सोंका रुझान इसी ओर रहा है कि नीला, लाल, हलका, भारी, ठण्डा, गरम, सम्मानता, विभिन्नता, स्वास्थ्य, सजीवता, भला, बुरा, इत्यादि शब्दों और मानव-अनुभवोंको छोड़कर हर सूरतमें ढूंढ़ ढूंढ़कर ऐसे तत्वोंको निकाला जावे और उनपर भरोसा किया जावे जिनमें मानव-अंश कम हो। मिसालके तौरपर 'आवाज' का अध्ययन करनेमें साइन्सकी यह कोशिश रही है कि जहांतक होसके कानके फैसलों और उसके अनुभवोंसे कम काम लिया जावे और तारोंकी लम्बाइयोंके नाप और उनकी तरङ्गों (Vibrations) की संख्या इत्यादिपर अधिक भरोसा किया जावे। (जहांतक होसका) हर साइन्सको उसके नीचेसे नीचे दर्जेतक पहुंचा दिया गया है। 'सदाचार-विज्ञान' (Ethics)में भलाई-बुराईकी कसौटी केवल उपयोगिता और पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त अनुभव बताये जाते हैं। सम्पत्ति-विज्ञान (Political Economy) मेंसे मनुष्य मनुष्यके बीच

न्याय, उदारता, प्रेम और ऐक्यका भाव इत्यादि सब विचार निकालकर बाहर कर दिये गये हैं। और जो उसका नीचेसे नीचा तत्व मिल सका अर्थात् 'स्वार्थ' (Self-interest) उसपर इस विज्ञानकी बुनियाद रखी गई है। जीवन-विज्ञान (Biology) मेंसे वृक्षों, पशुओं और मनुष्योंके अन्दरके व्यक्तित्वकी समस्त शक्ति निकालकर फेंक दीगई है, आत्माको इन सबसे अलग कर दिया गया है और यह कोशिश कीगई है कि इस विज्ञान-सम्बन्धी समस्त अद्भुत घटनाओंकी भी केवल रसायनकी क्रियाओं (Chemical Affinities), छोटे छोटे जीवित अणुओंके सम्बन्धों (Cellular Affinities), प्रोटोपलाज्म (एक तरहका जीवित माद्दा), और 'औसमोस' के नियमों (रकीक चीजोंके आपसमें मिल जानेके नियम)द्वारा ही व्याख्या कर डाली जावे। आगे चलकर रसायनकी क्रियाओं और भौतिक विज्ञानकी तमाम अद्भुत घटनाओंको भी खाली करके केवल बेजान अणुओं (Atoms) की दौड़ बताया गया है; और इन अणुओंकी दौड़ (और ऐसे ही ज्योतिषके चाँद, सूर्यनारायण आदिकी रफ्तार) को भी खोंचकर 'डाइनेमिक्स' (हरकत करते हुए पदार्थोंका विज्ञान) के उन नियमोंतक पहुंचा दिया गया जिन्हें विद्यार्थी अपने कमरेके अन्दर बैठा हुआ कागजके एक टुकड़ेके ऊपर लिख सकता है। इस प्रकार कौमटे (१६ वीं सदीके पूर्वार्द्ध का एक फ्रांसीसी फिलौसोफर जिसने आजकलकी वैज्ञानिक विचार-पद्धतिकी एक प्रकार नींव रखी) का यह विचार, कि सरलसे सरल साइन्ससे लेकर पेचीदासे पेचीदा साइन्सतक साइन्सोंका एक जबरदस्त चढ़ता हुआ सिलसिला होना चाहिये, अप्रकट रूपसे आजकलके वैज्ञानिक प्रयत्नोंके अन्तर्गत रहा है। 'साइन्स'ने हरएक हालतको उससे नीचेकी हालतके जरिये "समझाने" की कोशिश की है जैसे—"नीलेपन"को तरंगोंके जरिये और तरंगोंको उड़नेवाले अणुओंके जरिये—मनुष्यसे सम्बन्ध रखनेवाली

बातोंको सदा मनुष्यसे नीचेकी दुनियाके जरिये। मनुष्य-जातिसे सन्तुष्ट न होकर और उससे बाहर निकलकर, साइन्स पशुओं और वनस्पतियोंमेंको भटकती हुई,रसायन-विज्ञान और भौतिक विज्ञानमेंको होती हुई अन्तको मशीनों और कलों (Mechanics) के अन्दर जापहुंची। अब वह सन्तुष्ट होकर कहने लगी—"आखिरकार इन कलों और मशीनोंकी विद्याका मैदान मनुष्य-जातिसे बाहर है, यहांपर ऐसी बातें मिलेंगी जो स्वयं 'यथार्थ' होंगी और असली होंगी, हमें इसीको नींव मानकर इसके आधारपर अपनी इमारत फिरसे खड़ी करनी चाहिये और धीरे धीरे इसीके जरिये अर्थात् मशीनोंके असूलोंके जरिये हम मनुष्य, उसके स्वभाव और गुणों आदिको भी जान लेंगी।" मैं कहता हूं कि "आजकलकी साइन्स" यही स्वप्न देखती रही है; तथापि इस स्वप्नकी भ्रान्ति साफ जाहिर है। हम मनुष्यके सम्बन्धसे बाहर नहीं जासके, बल्कि केवल मनुष्यके अनुभवोंके सबसे अधिक बाहरके किनारेतक जापहुंचे हैं। "माद्दा और हरकत" (Mass and Motion), जिन्हें इस पद्धतिके अनुसार सबसे ज्यादह असली हस्तियां, और तमाम घटनाओंका आदि उत्पत्ति कारण माना जाता है, केवलमात्र मनुष्यके अनुभवोंको लेकर उनसे घड़ी हुई अन्तिम कल्पनाएं और हमारे सबसे अधिक खोखले खयाली अस्तित्व हैं। जड़ माद्देसे विश्वकी उत्पत्ति और संचालन बतानेकी कोशिशका अर्थ केवल यह है कि समस्त घटनाओंमें जो जो गुण हमें सामान्य दिखाई देते हैं उन्हीं गुणोंको उन सब घटनाओंका कारण कह दिया जावे—और यह बात, जैसाकि हम ऊपर कह आये हैं, ऐसी ही है जैसी मनुष्योंकी समस्त एक दूसरेसे भिन्नताका कारण उनके भिन्न भिन्न तरहके बूट बता दिये जावें—मुमकिन है कि इस तरह हम कोई ऐसा लफ्जी असूल घड़ लेवें जो देखनेमें ठीक मालूम हो, किन्तु उसके अन्दर अर्थ प्रायः कुछ भी नहीं होसकता।

"साइन्स"की यह तमाम गति और कौमटेके अनुसार साइन्सकी ऊपरको चढ़ती हुई अलग अलग शाखाओंका तमाम सिलसिला जो सब इस प्रकार 'मनुष्य'(अर्थात् आत्मा)के अस्तित्वको कल-पुरजोंद्वारा समझानेकी एक कोशिश है (To explain Man by Mechanics), एक जबरदस्त भँवर है। यह भँवर किसी सीधी-सादी, यथार्थ दिखाई देनेवाली और नित्य स्थाई बुनियादी माद्दी चीजसे शुरू करके धीरे धीरे कदम बा कदम 'मनुष्य' (यानी आत्मा) तक पहुंचनेका दावा करता है, यानी यह दावा करता है कि इन माद्दी चीजों और कल-पुर्जोंके नियमोंके जरिये वह मनुष्यके अस्तित्वके कारणको भी समझ लेगा; किन्तु वास्तवमें वह अपना काम शुरू ही 'मनुष्य' से करता है। 'माद्दा' और 'हरकत' इत्यादि जिन चीजोंसे साइन्स शुरू होती है वे वास्तवमें 'मनुष्य' के सबसे अधिक नीचेके अनुभव हैं, और इनके जरियेसे साइन्स मनुष्यके ऊँचेसे ऊँचे और गहरेसे गहरे अनुभवोंको समझने और समझानेकी कोशिश करती है। इस सबसे हमें फौरन् वह तरीका याद आजाता है जिसे गंवारी शब्दोंमें कहते हैं—"अपने बालोंमें कंघा करनेके लिये सीढ़ी लगाकर चढ़ना।" सच यह है कि 'साइन्स' कभी भी "मनुष्य" की विशाल दुनिया अर्थात् मानव-जगत् यानी मनुष्यके अनुभवोंसे बाहर नहीं गई, और न वास्तवमें आजतक उसे इसके बाहर खड़े होनेकी कोई जगह ही मिल सकी; किन्तु पिछली दो वा तीन सदियोंमें वह लगातार उस दिशामें यानी मनुष्यसे बाहरकी ओर जानेकी चेष्टा जरूर करती रही है। "मनुष्य-जीवन" के आन्तरिक आधार और उस जीवनकी असली घटनाओंको साइन्सने इसलिये छोड़ दिया क्योंकि एक तो वे घटनाएं अत्यन्त वसीअ हैं और इतनी आसानीसे काबूमें आनेवाली नहीं हैं और दूसरे जाहिरा तौरपर मनुष्य मनुष्यके आन्तरिक तथा बाहरी अनुभवोंमें इतना अन्तर होता है

कि उन सबसे उस मैदानमें आगे बढ़नेके लिये कोई एक निश्चित मत नहीं स्थिर होसकता, इसलिये साइन्स इस मैदानको छोड़कर मनुष्यसे बाहर किसी अधिक निश्चित और अधिक व्यापक चीज (वा असलीयत) की तलाशमें धीरे धीरे बाहरकी ओर भटक गई है। इस प्रकार एक एक कर मनुष्यके आन्तरिक अनुभवोंको छोड़कर जैसे मनुष्य मनुष्यमें वा मनुष्य तथा अन्य प्राणियोंमें वैयक्तिक सम्बन्धका अनुभव, न्यायका भाव, कर्तव्यका भाव, औचित्य-अनौचित्यका भाव इत्यादि(क्योंकि ये सब भाव अत्यन्त अनिश्चित रूपके हैं वा शायद इसलिये क्योंकि अलग अलग मनुष्योंमें ये भाव कम वा अधिक दर्जेतक पाये जाते हैं, किसीमें अभी बिल्कुल प्रारम्भिक रूपमें और किसीमें पूरे उन्नत रूपमें); और अधिक स्पष्ट शारीरिक अनुभवों यानी रंगका अनुभव, आवाजका अनुभव, जबानका जायका, बू इत्यादिके पाससे निककलते हुए; क्योंकि ऊपर लिखे कारणोंसे ही ये भी अधिक उपयोगी नहीं होसकते—"साइन्स" अन्तको इन सबसे नीचे उतरकर शरीरके पट्ठोंके सुकड़ने और फैलनेके अत्यन्त शुरूके मानव-अनुभवमें आकर ठहर जाती है। इस अत्यन्त मोटे अनुभवसे ही साइन्स अपने लिये माद्दो (Mass or matter) की कल्पना करती है। इस अन्तिम अनुभवमें पहुंचकर जो शायद मनुष्यमें और छोटेसे छोटे पशुओंमें एक समान पाया जाता है 'साइन्स' को अपने लिये सबसे अधिक बसीअ और सबसे अधिक व्यापक मैदान मिल जाता है और वह इस तमाम रचना-के असली "केन्द्र"'से जितनी दूर जासकती थी उतनी दूर पहुंच जाती है। गोया 'साइन्स' विशाल "मानव" जगत्के सबसे बाहरके छिलकेतक पहुंच चुकी। किन्तु यह छिलका भी बिल्कुल सूखी हुई हड्डी ही नहीं है, उसमें भी अभी थोड़ा-बहुत मानव-अंश बाकी है, और इसीलिये वह भी बिल्कुल यथार्थ और नित्य एकरूप जैसा 'साइन्स" चाहती थी वैसा

नहीं है। किन्तु साइन्स इससे आगे नहीं जासकती—और फिलहाल उसे यहां ही रुक जाना पड़ेगा!

शायद किसी दिन भविष्यमें जब "वैज्ञानिक सिद्धान्तों" के ये तमाम दिखावटी वस्त्र जिनकी एक विशेषता यह है कि केवल विद्वान् ही उन्हें देख सकते हैं, ज्यों-त्यों कर तैयार होजावेंगे और जैसोकि आशा कीजाती है "मनुष्य-जाति" गम्भीरताके साथ अपना यह नया लिबास धारण करके बाहर निकलेगी ताकि सारी दुनिया देख देखकर उसकी तारीफ करे, तब उस समय—जैसा ऐण्डरसनके उपन्यास "Emperor's New Clothes (अर्थ—सम्राटके नये कपड़े)" में आता है—शायद कोई छोटासा बालक किसी मकानको ड्योढ़ीपर खड़ा हुआ चिल्ला पड़ेगा—"किन्तु इसके बदनपर तो कुछ भी नहीं" और थोड़ेसे गोलमाल और घबराहटमें मालूम होगा कि बालक ठीक है।

नोट

स्टैनली जेवौन्स अपनी पुस्तक Principles of Science (अर्थात्—'साइन्सके सिद्धान्त') P. IX में लिखता है—

"मुझे डर है कि अपने इस जबदस्त विश्वासको प्रकट कर सकनेमें मुझे बहुत ही अधूरी सफलता हुई है कि, यदि पूरे और कड़े तर्कके साथ जांच कीजावे तो साबित होजायगा कि [भौतिक सृष्टिके अन्दर] 'नियमका शासन' (Reign of Law) एक ऐसी कल्पना है जिसकी अभीतक किसी बातसे तसदीक नहीं होती, 'प्रकृतिकी समानता' (Uniformity of Nature) एक ऐसा वाक्य है जिसके अनेक अर्थ होसकते हैं, और हमारी साइन्सके नतीजोंकी असंदिग्धता बहुत दर्जे तक एक भ्रम है।"

दूसरा अध्याय

भविष्यकी साइन्स; एक पेशीनगोई

Once let that (the human ideal) slip out of the thought, and science is of no more use than the invocations in the Egyptian papiri.

—Richard Jefferies.

अर्थ—"यदि एक वार उसे (अर्थात् मनुष्य-जीवनके आदर्श-को) अपने विचारसे बाहर खिसक जाने दिया जावे तो फिर साइन्स मिश्र देशकी प्राचीन हस्तलिपियोंमें लिखी हुई प्रार्थनाओंसे अधिक उपयोगी नहीं रह जाती।"

रिचर्ड जैफरीज।

पिछले अध्यायसे जाहिर होगया होगा कि आजकलकी साइन्सके काम करनेके तरीकेमें कहीं न कहीं किसी न किसी तरहकी गलती जरूर रह गई है। इसका यह मतलब नहीं कि इस काममें जो जबरदस्त मेहनत कीगई है वह बिल्कुल ही फजूल गई, क्योंकि इस मेहनतके बदलेमें हम एक बहुत बड़ी तादाद अमली नतीजों और तफसीलवार मशाहदोंकी दिखला सकते हैं; किन्तु इसका मतलब यह है कि साइन्सकी असली समस्याको केवल दिमागके जरियेसे हल करनेकी कोशिश एक ऐसी बुनियादी गलती है जो अन्तमें हमें किसी न किसी बेहूदगीतक पहुंचाये बिना न रह सकती थी, और इस गलतीने फिलहाल हमारे अबतकके नतीजोंको भी दूषित कर दिया है। क्योंकि—इस आखिरी बातके सिलसिलेमें—मनुष्यके मस्तिष्क-को उसकी भावनाओंसे अलग कर देने यानी उसके दिमागको

दिलसे जुदा कर देनेका एक नतीजा यह हुआ कि हमारे वैज्ञानिक मशाहदोंका एक बहुत बड़ा हिस्सा केवल दिखावटी और तुच्छ रह गया; दूसरी ओर इस गलतीहीका एक नतीजा यह भी हुआ कि साइन्सके अमली नतीजे जैसे औद्योगिक कलकारखाने और युद्धकी सामग्री इत्यादि जितने हमारी भलाईके साधन हैं उतने ही बुराईके साधन बन गये।

हम ऊपर कह आये हैं कि साइन्स विश्वकी एक ऐसी व्याख्याकी खोजमें, जो केवल दिमागसे सम्बन्ध रखती हो और जो सदाके लिये मान्य हो, एक ऐसी चीजकी खोज करती रही है जिसका कहीं अस्तित्व ही नहीं है। जिन्हें हम बाहरी "कुदरत" की घटनाएं कहते हैं वे भी कमसे कम आधे दर्जे तक मनुष्यके हृदयके भाव हैं। यदि हम किसी भी घटनामेंसे अपने इस भावको निकाल बाहर करनेको कोशिश करें और उस घटनाकी एक ऐसी व्याख्या तैयार करना चाहें जिसमें इन्सानी अंश वा भावका अंश न हो तो यह केवल ऐसा ही है जैसा किसी चीजमेंसे उसका अर्थ निकालकर बाहर कर देनेकी कोशिश; इस तरहसे जो व्याख्या हम तैयार करेंगे वह देखनेमें (अर्थात् शब्दोंके लिहाजसे) चाहे यथार्थ ही हो किन्तु वास्तवमें न उसका कुछ अर्थ होगा और न कुछ मूल्य। यह ऐसा ही है जैसा ईंटमेंसे मिट्टी निकाल देनेकी कोशिश करना। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि हमारी मन्तककी दलीलें और युक्तियां यद्यपि बड़े महत्वकी हैं, तथापि वे हरगिज केवल अपने सहारे नहीं ठहर सकतीं और न उनके लिये खड़े होनेकी अलग कोई जगह ही है। इन दलीलोंमें हमें अनेक बातें फर्ज कर लेनी पड़ती हैं, और दलीलें हमारे भीतरके ऐसे भावोंका केवल बाहरी रूप होती हैं जो तर्कसे उत्पन्न नहीं होते, बल्कि जो शायद कभी कभी मन्तक (तर्कशास्त्र) के नियमोंके भी विरुद्ध होते हैं। पक्केसे पक्के मन्तकका

अर्थ केवलमात्र एक जंजीरकी अनेक कड़ियोंको आपसमें जोड़ देना है; और जंजीरकी अन्तिम कड़ी उस समयतक किसी कामकी नहीं, आप उसपर किसी तरहका बोझ नहीं डाल सकते, जिस समयतक कि सबसे पहली कड़ीको कहीं न कहीं मजबूत न जमा लिया जावे। दिमागी जंजीरकी मजबूती केवल उस कुण्डेकी मजबूतीपर निर्भर है जिससे कि वह सारी जंजीर लटकती है, और वह कुण्डा सदा मनुष्यका एक भाव होता है। उकलैदस (रेखागणित) की मजबूती केवल उन मूल तत्वों (Axioms) की मजबूतीके सहारे है जिन्हें 'स्वयंसिद्ध' मान लिया जाता है, और ये स्वयंसिद्ध तत्त्व हमारे अन्दरके 'भाव' हैं। वे ऐसी तर्कशून्य बात हैं जिनके विषयमें हम इससे ज्यादह और कुछ नहीं कह सकते कि "मैं ऐसा अनुभव करता हूं।" वास्तवमें 'रेखागणित' की तमाम शकलें गोया इन शुरूके इन्सानी भावों वा विश्वासोंकी केवलमात्र विस्तृत छान-बीन और उनका एक जबदस्त फैलाव हैं—और रेखागणितकी तमाम इमारत इन्हीं मूल विश्वासोंके सहारे खड़ी है और इन्हींके गिरनेसे गिर पड़ती है। शुद्ध दिमागी सचाई नामकी कहीं कोई चीज नहीं है; यानी मेरा मतलब यह है कि ऐसी कोई सचाई नहीं जिसके अस्तित्वको हृदयके भावोंसे अलग करके बयान किया जासके। मिसालके तौरपर यदि वास्तवमें यह दिखाया जासके कि रेखागणितकी कोई शकल ऊपरके स्वयंसिद्ध तत्त्वोंके आधारपर कायम है तो फिर वह शकल दिमागी तौरपर या बिना किसी सम्बन्धके सच नहीं रही है, बल्कि केवल मेरे अपने रेखागणित-सम्बन्धी प्रारम्भिक भावके एक जहूरकी हैसियतसे सच है। और यदि मैं रास्ते चलते किसी फकीरको दो-चार पैसे दे-देता हूं, केवल इसलिये नहीं कि दान देनेको हर हालमें मैं अपनी एक ड्यूटी (कर्त्तव्य) समझ बैठा हूं, वा इसलिये भी नहीं कि मैं दूसरोंकी नजरोंमें दानशील दिखाई देना चाहता हूं, वा

उसके दिक करनेसे बचना चाहता हूं,बल्कि इसलिये कि मैं उसके साथ सच्ची दिली हमदर्दी महसूस करता हूं; तो मेरा यह दान देना सच्चा है किन्तु स्वयं बिना किसी दूसरी बातके सम्बन्धके सच्चा नहीं बल्कि वह काम जिस चीजको जाहिर करता है— अर्थात् मेरे अन्दरके मनुष्य-प्रेमके प्रारम्भिक भावको—उसके केवल एक जहूरकी हैसियतसे वा उसके जहूरके अर्थोंमें सच्चा है। हकीकतमें सबसे सच्ची सचाई वह है जो हमारे सबसे गहरे भावोंका जहूर हो, और यदि कोई बात निरपेक्ष यानी परम सत्य (Absolute truth) है तो केवल वह मनुष्य उसे जान सकता है और केवल वही उसे जाहिर कर सकता है जिसके अपने अन्दर'परम भाव'मौजूद हो वा जो परम"अस्तित्व" (परम-आत्मा) को अपने अन्दर साक्षात् कर चुका हो।

ऐसी सूरतमें, और चूंकि दिमागी युक्तियोंका अस्तित्व जंजीरकी कड़ियोंके समान क्षणिक होता है इसलिये, यह बात साफ जाहिर है कि दिमागी नतीजोंको हम अपने दूसरे उद्देश्यों-के पूरा करनेके लिये बतौर साधनोंके काममें लासकते हैं किन्तु उन्हें हम अपना उद्देश्य नहीं मान सकते। उन्हें जीवनके उद्देश्य मानकर उनपर किसी तरहके विश्वासका भार लटकाना उस चीनी जादूके खेलकी तरह है जिसे मार्को पोलो (इटली देशका रहनेवाला सबसे पहला यूरोपियन यात्री जो तेरहवीं सदीमें चीन पहुंचा था) ने बयान किया है जिसमें जादूगर किसी रस्सेका एक सिरा ऊपर अधरमें फेंककर दूसरे सिरेसे उस रस्सेके ऊपर चढ़ता है। इससे मालूम होता है कि हमारी साइन्सकी कल्पनाएं उस समयतक उचित हैं जिस समयतक कि हम व्यावहारिक उपयोग यानी अमली कामोंके लिये उन्हें बतौर साधनोंके घड़ लेते हैं। इसी अर्थमें वे क्षणिक भी हैं; वे हकीकी सचाइयां मानकर नहीं घड़ी जातीं बल्कि केवल किसी खास अमली नतीजेतक पहुंचनेके लिये

एक जंजीरकी कड़ियोंके तौरपर घड़ी जाती हैं। इस गरज-के लिये जो भी कल्पनाएं वा सिद्धान्त हमारे लिये उपयोगी हों, हम घड़ सकते हैं। यदि हम पुलोंकी मजबूतीका हिसाब लगा रहे हैं तो तामीर और शिल्प-सम्बन्धी हम किसी भी ऐसे असूलों-को काममें लासकते हैं जिनसे हमें असली और अमली नतीजे मिल सकें। यदि हम ग्रहणोंकी पेशीनगोई करना चाहते हैं तो हम किसी भी कामचलाऊ सिद्धान्त का उपयोग कर सकते हैं। सिद्धान्त यानी कल्पना चाहे कोई भी हो हर्ज नहीं है जबतक कि उससे हमारा मनोवांछित अमली नतीजा निकल आता है, जिस तरह कि जबतक किसी रस्सेसे आप अपनी नौकाको नौकाश्रयमें खींचकर लासकते हैं तबतक इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि आपका रस्सा लोहेका है वा सनका वा रेशमका। मैं समझता हूं कि इस दृष्टिसे हमारी 'आजकलकी साइन्स' बड़ी तारीफके काबिल है। अमली नतीजों और थोड़े कालकी पेशीनगोइयोंके लिये उससे बहुत कुछ उपयोगी मसाला मिल सकता है। ऐसे ऐसे नियम और ऐसी ऐसी कल्पनाएं मिल सकती हैं जो कुदरती घटनाओंके एक तरहके शौर्ट-हैण्ड नोट, वा प्रचलित रूढ़िया और जेबमें रख लेनेयोग्य संक्षिप्त सार होती हैं, जिनका कुदरतकी असली दुनियाके साथ करीब करीब वैसा ही सम्बन्ध है जैसा किसी नकशेका उस देशके साथ जिसका वह नकशा कहा जाता है। कोई नहीं कह सकता कि असली देशमें और उस नकशेमें कुछ भी समानता है किन्तु जब आप उस असूलको समझ जाते हैं जिसपर वह नकशा तैयार किया गया है तो आपके लिये अपने रास्तेका पता लगानेमें वह नकशा बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। इसलिये जबतक कि साइन्स अपने इस असली लक्ष्यको सामने रखती है, और मनुष्यके अनुभवसे चलकर फिर उस अनुभवपर ही लौट आना चाहती है, तबतक साइन्सकी बीचकी सब कल्पनाएं बिल्कुल

उचित हैं; किन्तु जिस समय साइन्स अपनी इन कल्पनाओंको हकीकी और प्रामाणिक बताने लगती है और उन्हें कुदरती घटनाओंकी सच्ची सच्ची व्याख्या कहने लगती है, और इन कल्पनाओंके आधारपर ऐसे ऐसे दुर्गम मैदानोंमें घुसनेकी कोशिश करती है जहांकी घटनाओंकी कोई तसदीक नहीं होसकती वा जो अत्यन्त सूक्ष्म मैदान हैं, जैसे अदृश्य जन्तुओं (:जर्म्स) वा अणुओंके मैदान वा अनन्त दूरके आकाशमें, वा अत्यन्त पीछेके भूतकाल वा अधिक आगेके भविष्यमें घुसना चाहती है—तो कहना होगा कि साइन्स केवल रस्सेका एक सिरा अधरमें फेंककर दूसरे सिरेसे ऊपर चढ़ना चाहती है !

अंगरेजीकी यह मसल कि "The wish is father to the thought" अर्थात् 'इच्छा विचारकी जन्मदात्री है' एक वसीअ अर्थमें बड़ी गहरी सचाई है। जिस तरह शरीर पहले और वस्त्र पीछे वैसे ही व्यक्तिके अन्दर भाव पहले और विचार पीछे आते हैं (इच्छा भी एक भाव ही है)। यूरोपियन इतिहासमें पहले रूसो* आता है और फिर वौलटेयर †। मैं समझता हूं कि मनुष्यके शरीरकी रचना भी इसी असूलके मुताबिक है, क्योंकि दिमागके पीछे और दिमागके कार्योंको निश्चित करनेवाले वे जबरदस्त मज्जा-तन्तु हैं जोकि भावनाओंका स्थान विशेष है। वास्तवमें मनुष्य-शरीरको देखनेसे दिमाग स्पष्ट एक क्षणिक यानी अनस्थाई चीज मालूम होता है जिसके एक ओर इन्द्रियोंके तन्तु हैं और दूसरी ओर भावनाओंके जबरदस्त तन्तु हैं।

यदि किसी व्यक्तिके भीतरके भाव वा उसकी भावना बदल

* रूसो (Roussean) और † वौलटेयर (Voltaire) अठारहवीं सदीके दो प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान्, जिन्होंने यूरोपमें उस सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक आजादीकी नींव रखी जिसकी कलियां अभीतक पूरी तरह नहीं खिलीं। रूसो अत्यन्त भाविक था और उसे फ्रान्सकी जगत्प्रसिद्ध क्रान्तिका मानसिक पिता माना जाता है।—अ०।

दीजावे तो उसके विचार करनेकी तमाम शैली ही उलट-पुलट होजावेगी। यदि किसी साइन्सके वे मूल तत्त्व जो स्वयंसिद्ध मान लिये जाते हैं और जो उसके प्रारम्भिक भाव हैं बदल दिये जावें तो उस साइन्सकी सारी ऊपरकी इमारतको नये सिरेसे निर्माण करना होगा। मसलन आज-कलका 'सम्पत्ति-विज्ञान' जिस मूल तत्वको स्वयंसिद्ध मानकर उसके आधारपर कायम किया गया है, वह मूल तत्व 'वैयक्तिक लोभ' है। किन्तु यदि इसकी जगह कोई नई स्वयंसिद्ध भावना हमारे अन्दर जाग उठे (जैसे आज-कलकी बेअन्त लूट-खसोटके स्थानपर न्याय और ईमानदारीकी भावना यदि हमारे अन्दर जाग उठे), तो इस विज्ञानकी सारी बुनियाद बदल जावेगी और नई बुनियादके साथ साथ एक बिल्कुल नई इमारत खड़ी करनी पड़ेगी।

इसी तरह जब लोग राजनीति, धर्म, कला-कौशल इत्यादिपर बहस करते हैं तो आम तौरपर देखा जावेगा कि उनका मतभेद बुनियादी है। वे शायद स्वयं इस बातको बिल्कुल न जानते हों, किन्तु वे सब भिन्न भिन्न मूल तत्वों यानी बुनियादी तत्वोंको स्वयंसिद्ध मानकर उनसे आगे चलते हैं, और इसीलिये उनका एक मत हो नहीं सकता। कभी कभी निस्सन्देह गौरसे देखनेसे यह भी मालूम होगा कि वे बुनियादमें सहमत हैं किन्तु उनमेंसे किसी एकने ऊपरके नतीजे निकालनेमें कहीं गलती खाई है; ऐसी सूरतमें उस मनुष्यका विचार उसके प्रारम्भिक भावको जाहिर नहीं करता, और जब उसे यह समझा दिया जाता है तो उसे अपना विचार बदलना पड़ता है। लेकिन अधिकांश बार यही देखनेमें आता है कि मतभेद वास्तवमें उस गहराईपर है जहांतक कि दलीलकी पहुंच नहीं होसकती; और इस तरहके लोगोंमें अन्ततक मतभेद बना ही रहता है। ऐसी सूरतमें न उनमेंसे कोई ठीक है और न कोई गलत है। उनके केवल भाव भिन्न भिन्न हैं; वे भिन्न भिन्न मनुष्य हैं।

इसलिये 'विचार'(Thought)की तहमें 'भाव'(Feeling)है और 'विचार' उस 'भाव' का जहूर, उसका बाहरी अंकुर वा उसका एक खोल होता है। और हर व्यक्तिके छोटेसे वैयक्तिक जीवनमें तथा समष्टि रूपसे "मनुष्य" के महान् और व्यापक जीवनमें, दोनोंमें चूंकि मनुष्यका लगातार नया जन्म होता रहता है और मनुष्य भीतर ही भीतर बढ़ता रहता है, इसलिये मनुष्यकी बाहरी विचार-शैलियां भी लगातार ही बदलती रहती हैं और नई नई विचार-शैलियां उनकी जगह कायम होती रहती हैं। एक बढ़ते हुए पौदेकी कलियोंके ऊपरके पत्तों वा छिलकोंकी तरह वे विचार-शैलियां कुछ समयतक भीतरके जीवनको रूप प्रदान करती हैं, और फिर गिर जाती हैं और दूसरी शैलियां वा दूसरी पत्तियां उनकी जगह निकल आती हैं। ऊपरका छिलका अपने अन्दरकी कलीको तैयार करता है और वही कली निकलकर उस छिलकेको अलग फेंक देती है। ऐसे ही मनुष्यका विचार अपने अन्तरके भावको तैयार करता है और उसकी हिफाजत करता है, और वही भाव बढ़कर अवश्यमेव उस विचारको अलग फेंक देगा; और ज्यों ही कि कोई खास विचार पक गया यानी अपने पूरे रूपमें आगया त्यों ही समझना चाहिये कि अब वह 'मिथ्या' (False) होगया अर्थात् गिरनेके लिये तैयार (Ready to fall) होगया।

अब हम एक सच्ची 'साइन्स' अर्थात् जिसे हकीकतमें विज्ञान वा साइन्स कहा जासके, ऐसी साइन्सके विषयमें फिरसे विचार करनेके काबिल हैं।

चूंकि "मनुष्य-जीवन" और उसके अनुभवोंके सबसे बाहरी सिरेपर कोई नित्य और परम अस्तित्व यानी कोई असलीयत नहीं है—कोई ऐसा उड़ता हुआ अणु नहीं है जिसकी हम ठीक ठीक परिभाषा कर सकें और जिसके आधारपर हम अपने विचारों और दलीलोंको कायम कर सकें—और चूंकि इस

त्रुटिके कारण ही विश्व और उसकी घटनाओंकी एक सच्ची और असली व्याख्याकी दृष्टिसे "आज कलकी साइन्स" बिलकुल व्यर्थ साबित होचुकी—इसलिये क्या यह मुमकिन है कि जिस दिशामें हमने अपनी असलीयतको खोजना चाहा उस दिशाके चुननेमें ही हमने गलती खाई;और क्या यह मुमकिन होसकता है कि बजाय"मनुष्य"के अनुभवोंकी दूरसे दूरकी परिधिके हमें "मनुष्य-जीवनके खास केन्द्र" में ही इस असलीयतकी खोज करनी चाहिये थी ? निस्सन्देह यदि हम इस दिशामें भीतर प्रवेश कर सकें तो बजाय किसी छायारूपी दिमागी कल्पनाके हम उसके बिल्कुल विपरीत एक गहरे निर्विकार भावतक यानी एक गहरी निर्विकार स्थितितक पहुंचनेकी अथवा कहना होगा "अस्तित्व" की एक वास्तवमें स्वयंसिद्ध और बुनियादी स्थितितक पहुंचनेकी आशा कर सकते हैं। क्या यह होसकता है कि उस गहराईतक पहुंचकर हमें अपने भीतर सूर्यकी तरह दमदमाता हुआ (यदि हम उसे केवल देखभर सकें तो—और भौतिक दुनियामें सूर्य ही उसकी उपमा है), इस तरहका एक परम अस्तित्व मिल जावे जो विश्वकी एकमात्र असलीयत है, बाकी तमाम चीजें जिसकी छायामात्र हैं, जिससे हर चीज सम्बन्ध रखती है और जिसकी अपनी कोई व्याख्या नहीं होसकती, किन्तु जिसके चारों ओर तमाम विचार, तमाम कल्पनाएं घूमती रहती हैं, और विश्वकी तमाम घटनाएं जिसे केवल एक अस्पष्ट ढंगसे व्यक्त करती रहती हैं ?

क्या यह मुमकिन है ? यह प्रश्न है जो हममेंसे हरएकको हल करना होगा। कमसे कम हम सुझानेके तौरपर इस प्रश्नको उपस्थित किये देते हैं। हम यह सुझा देना चाहते हैं कि यदि घटनाओंके अन्दरसे मानव-अनुभवके अंश (Sense-element) को बिल्कुल बाहर निकाल देनेसे हमें कोई सन्तोषप्रद चीज नहीं मिल सकी, तो हमें अब इसके विपरीत तरीका अख्तियार

करना चाहिये और घटनाओंके अन्दर जितना अधिक अनुभव वा जितना अधिक चैतन्य (Sense) हम प्रवेश करा सकें उतना कराकर हमें देखना चाहिये।

जिन्हें हम "असली कुदरती घटनाएं" (Facts) कहते हैं वे कमसे कम आधे हमारे अन्दरके भाव होते हैं। हमें इस बातको स्वीकार करना चाहिये और बजाय इसके कि उन घटनाओंके भीतरसे हम भावोंको निकाल बाहर करें हमें चाहिये कि जो भाव इस समय उन घटनाओंके सम्बन्धमें हमारे अन्दर पैदा होते हैं उन्हें हम और भी अधिक गहरा और वसीअ बनावें। कौन जानता है कि हमने नीले आकाशको आजतक कभी देखा भी है वा नहीं? किसे मालूम है कि हमने आजतक कभी एक दूसरेको भी देखा है वा नहीं? क्या यह बात आम तौरपर कहनेमें नहीं आती कि "कुदरत" के मामूली पदार्थोंमें एक मनुष्य वह वह बातें देख लेता है जिनका दूसरेको बिल्कुल कुछ भी बोध नहीं होता? "नदीके किनारेपरके बसन्ती गुलाब (Primrose) का फूल उसके लिये केवलमात्र एक पीला फूल ही है, और कुछ नहीं।" "प्रकृति" की घटनाओंको इस तरह कितना अधिक गहरा बनाया जासकता है और हमारे लिये कितना अधिक सारगर्भित बनाया जासकता है—और यह तरीका हमें कहांतक लेजायगा?

क्या हम यह नहीं चाहते कि कुदरती घटनाओंके सम्मुख बजाय कम अनुभव करनेके हम और ज्यादह अनुभव करें (Feel) यानी हमारे भाव और अधिक गहरे हों कि नीले आकाश और सुगन्धभरी हवा, और वृक्षों और पशुओंके साथ हमारा एक जीवित सम्बन्ध कायम होसके—इतना ही नहीं बल्कि जहरीली और हानिकर चीजोंके साथ भी हमारा ऐसा ही सम्बन्ध हो और हम उनके हानिकर स्वभावका अधिक गहरा और अधिक तेज अनुभव या बोध (Semse) प्राप्त कर सकें? क्या यह एक

विचित्र प्रकारका विज्ञान नहीं है जो दिमागको तो जगाकर चीजोंके सायोंके पीछे दौड़ाता है किन्तु जो पांच ज्ञानेन्द्रियोंको असली चीजों और उन चीजोंके अनुभवोंकी तरफसे कुन्द कर देता है—जिसका नतीजा यह है कि मनुष्य आकाशकी पवित्र हवाको एक बोतलके अन्दर बन्द करनेकी कोशिश करता है और फिर उस बोतलको साथ लेकर एक ऐसी प्रयोग-शालामें अपने तईं बन्द कर लेता है जो बूदार गैसोंसे भरी होती है और जिसमें हवा आने-जानेके लिये रोशनदान भी काफी नहीं होते और फिर वहां बैठकर उस बोतलकी हवाकी वैज्ञानिक छान-बीन करता है; अथवा जिस विज्ञानकी इजाजतसे मनुष्य, यह न जानते हुए कि अपनी इस क्रियाद्वारा वह मनुष्य और पशुओंके बीचके पवित्र और धार्मिक सम्बन्धको कलंकित कर रहा है, जिन्दा कुत्तेकी चीर-फाड़ करता है? निस्सन्देह "साइन्स" अर्थात् विज्ञानके ऊंचे अर्थोंमें वैज्ञानिक मनुष्यको अमरीकाके असभ्य आदिम निवासियोंके समान तेज नजरवाला और शिकारी कुत्तेके समान तेज नाकवाला होना चाहिये, लगातार उपयोगद्वारा उसकी तमाम इन्द्रियां और उसकी अनुभवशक्ति सधी हुई होनी चाहिये, उसका जीवन "कुदरत" के साथ बिलकुल मिला हुआ, पवित्र और स्वस्थ होना चाहिये और उसका हृदय प्राणीमात्रके साथ दया और सहानुभूतिसे फड़कता हुआ होना चाहिये। विश्वकी कुञ्जियां फिर गोया ऐसे मनुष्यके हाथोंमें होंगी; किन्तु मशीनकी तरह काम करनेवाला, रोगी और कमरोंके अन्दर बन्द रहनेवाला आज-कलका विद्यार्थी क्या वास्तवमें असली घटनाओंसे अनभिज्ञ नहीं है? निस्सन्देह वह असली घटनाओंसे अनभिज्ञ है, क्योंकि उसने कभी उन्हें अनुभव नहीं किया।

सच्ची "साइन्स" यानी सच्चे "विज्ञान" का काम यह है कि पहले तो तमाम घटनाओंको (यानी उन सब बातोंको जिन्हें

मनुष्य अनुभव करता है) अलग अलग नाम देकर उनकी परिभाषाएं नियत करे और फिर इन घटनाओंके एक दूसरेके साथ सच्चे सम्बन्धका पता लगावे; अब चूंकि इन घटनाओंकी परिभाषाएं और उनके एक दूसरेके साथ सम्बन्ध अनुभव करनेवाले मनुष्यके दृष्टि-केन्द्रके बदलनेके साथ साथ बराबर बदलते रहते हैं, इसलिये जाहिर है कि विज्ञानके इस कार्यमें मनुष्य-जीवनका समस्त अनुभव आजाता है, और इस मार्गपर अन्तमें जाकर मनुष्य-जीवनके उस अन्तिम अनुभव यानी उस अन्तिम भीतरी घटनाका भेद खुलता है जिसके साथ और जिसके द्वारा एक दूसरेके साथ बाकी तमाम घटनाओंका सम्बन्ध कायम है। इसलिये यह एक समस्त युगभरका कार्य है, और मनुष्यकी भावनाओं और उसके हृदयके धर्म और सदाचार-सम्बन्धी भावोंके साथ इस कार्यका उतना ही गहरा सम्बन्ध है जितना कि मनुष्यके मन्तकी और दिमागी हिस्सेके साथ। वास्तवमें "विज्ञान" का यह काम स्वयं "मनुष्य" की असलीयत (यानी "आत्मा") की खोज करना और मनुष्यके सच्चे रूपका पता लगाना है।

"आजकलकी साइन्स" "प्रकृति" के अन्दर एकताको ढूंढना चाहती है मगर नहीं पासकती, क्योंकि स्वभावसे ही ऐसी बहुतसी बातें जिनके विषयमें तमाम लोगोंका अनुभव एकसा हो इन्सानी तजर्बेके केवल कुछ छोटे छोटे मैदानोंमें ही मिल सकती हैं, और बहुत मुमकिन है कि इन छोटे छोटे मैदानोंमें एकता मिल ही नहीं सकती। "आजकलकी साइन्स" एक नीलमको लेकर उसके टुकड़े टुकड़े कर डालती है; वह एक ओर उसके रङ्ग और उससे रोशनीकी किरणोंके निकलनेपर बहस करती है; दूसरी ओर उसकी स्फटिककीसी बनावट और उसकी सख्तीपर; तीसरी ओर उसके वजन और भारीपनपर; चौथी ओर उसके रासायनिक गुणों वा तत्वोंपर; इन सब

बातोंपर 'साइन्स' अलग अलग विचार करती है और हर एक पहलूपर अलग अलग नियमों और कल्पनाओंकी लम्बी लम्बी पंक्तियां तैयार कर लेती है। किन्तु सब गुण आपसमें क्यों-कर मिल जाते हैं ? उनका वह एक दूसरेसे सम्बन्ध कैसा और क्या चीज है जो असलमें उन्हें नीलम बना देता है—अथवा नीलमकी खाकका छोटे से छोटा जर्रा जिससे बनता है ?—इन बातोंकी (बुद्धिमानीके साथ) 'साइन्स' व्याख्या करनेकी कोशिश ही नहीं करती। "आजकलकी साइन्स" मनुष्यको लेकर उसे चीर डालती है; उसके खून, उसकी नाड़ियों, उसकी हड्डियों, उसके दिमागपर बहस करती है; उसकी देखने, छूने, सुननेकी ताकतोंकी तहकीकात करती है; किन्तु उस एक चीज वा उस एक ताकतके विषयमें जो इन सबको मिलाकर एक बनाये रखती है, तथा मनुष्यके अंदर इन सबके एक दूसरेके साथ असली सम्बंधके विषयमें 'साइन्स' खामोश है।

तथापि मनुष्य स्वयं अपने विषयमें खूब जानता है कि वह 'एक' है; वह जानता है कि उसके शरीरके सब अंग एक दूसरेके साथ और सब मिलकर उसके साथ सम्बन्ध रखते हैं;वह जानता है कि उसकी देखने, छूने, सुनने,चखने और सूंघनेकी ताकतें उसके वैयक्तिक जीवनके केन्द्रमें यानी उसके "मैं हूं" में आकर मिल जाती हैं; वह जानता है कि उसकी तमाम शक्तियां और तमाम ताकतें, चाहे वे आध्यात्मिक हों और चाहे भौतिक, और चाहे वे भिन्न भिन्न 'साइन्सों' की तहकीकातके दायरोंमें क्यों न आती हों,तथापि आपसमें एक दूसरेके दरमियान उनकी एक खास और निश्चित व्यवस्था है;और चाहे वह स्वयं अभीतक उसका पूरा ज्ञान नहीं भी रखता, तथापि उन सब शक्तियों और ताकतोंकी एक अन्तिम "साइन्स" जरूर है। इसके अलावा मनुष्य यह भी जानता है कि खाकके एक जर्रेमें, अथवा

नीलममें, अथवा एक नारङ्गीमें, अथवा "प्रकृति"के किसी भी पदार्थमें, पदार्थके वे भिन्न भिन्न गुण, जिनकी 'साइन्सें' इस तरह अलग अलग छान-बीन करती हैं, वास्तवमें मनुष्यकी अपनी अलग अलग ज्ञानेन्द्रियोंके केवल अक्समात्र हैं। अर्थात् किसी भी पदार्थके अन्दर उस पदार्थके भिन्न भिन्न गुणोंके मेलकी समस्या हिर-फिरकर वही मनुष्यके अपने अन्दरकी भिन्न भिन्न ज्ञानेन्द्रियों और भिन्न भिन्न शक्तियोंके मेलकी समस्या बन जाती है—क्योंकि अन्तको जिन्हें हम बाहरी पदार्थ कहते हैं वे हैं क्या चीज ? वास्तवमें विविध ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा जो जो अनुभव मनुष्यके अन्दर उत्पन्न होते हैं और उसके हृदयमें जो भाव होते हैं उन अनुभवों और भावोंका किसी खास समय एक दूसरेके साथ जो सामान्य सम्बन्ध होता उस भीतरी सम्बन्ध-की एक छाया चेतनताकी एक अवस्थाके रूपमें मनुष्यके सामने आजाती है, और इस छायाका नाम ही पदार्थ है। मैं कहता हूं कि इस सबको जानते हुए मनुष्य देख सकता है कि आम तौरपर "कुदरत"को समझना और उन नियमों वा संबं-धोंको समझना, जो उसके खयालके मुताबिक उसे बाहरके पदार्थोंमें दिखाई देते हैं, सदैव उन नियमों और सम्बन्धोंपर निर्भर होगा जिन्हें वह अपने भीतर अपने व्यक्तित्वके भिन्न भिन्न भागोंके बीच या तो चुपचाप फर्ज कर लेता है और या जिनका वह साक्षात् ज्ञान रखता है, और वह अन्तिम सचाई जिसकी "साइन्स"—ईश्वरीय "साइन्स" (अध्यात्म)— वास्तवमें तलाशमें है, धार्मिक अथवा आध्यात्मिक "सचाई" है; उसका मतलब है स्वयं मनुष्यकी असलीयतको समझना और मनुष्यकी तमाम शक्तियोंके एक दूसरेके साथ सच्चे सम्बन्धका पता लगाना; इस सच्ची खोजमें मनुष्यका तमाम अनुभव आकर मिल जाता है और बजाय उसकी केवल एक किस्मकी (यानी मानसिक) ताकतोंके ही उसकी हर किस्मकी ताकतें, शारी-

रिक, मानसिक, भावना-सम्बन्धी और रूहानी, सब उपयोगमें लानी पड़ती हैं।

असलीयत यह है कि जिस समयतक हम अपने अस्तित्व-के नियमको न जान लेंगे उस समयतक हम नीलमके नियम-को अथवा नारंगीके नियमको अथवा सामान्यतया "प्रकृति"के नियमको नहीं जान सकते; और अपने अस्तित्वके नियमका दिमागी तहकीकातके जरिये हम एक गौण ज्ञानसे अधिक कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते; हमारे अपने अस्तित्वका नियम मुख्यकर जीवनद्वारा ही जाना जाता है। पृथ्वीकी आक-र्षणशक्ति और हमारी जीवन-शक्ति इन दोनोंका सम्बन्ध उस दिनसे लेकर, जिस दिन कि हम दुधमुँहे बालकोंके रूपमें अपने तईं फर्शसे ऊपर भी नहीं उठा सकते,जवानी के उन गर्वभरे बलके दिनोंमेंसे होते हुए जबकि हम ऊंचेसे ऊंचे पहाड़ोंपर चढ़ते-फिरते हैं, उस घड़ीतक जबकि हमारी आजाद रूहें अन्तिम बार पृथ्वीके आकर्षणको जीतकर उससे ऊपर निकल जाती हैं,जितनी अच्छी तरह अपने भीतर इस लम्बे तजरबेके जरिये सीखा जासकता है उतनी अच्छी तरह किसी भी प्रयोगशालाके अन्दर बाहरी तजरबोंके जरिये नहीं सीखा जासकता; और जिस तरह कि यह पृथ्वीके आकर्षण यानी वजनका अनुभव, जो पहलेपहल बिल्कुल एक बाहरी अनुभव मालूम होता था, अन्तको हमारे गहरेसे गहरे आपेके साथ अत्यन्त सारगर्भित सम्बन्ध रखता हुआ मालूम होता है; ठीक वैसे ही वे अनुभव भी अन्तमें मालूम होने लगते हैं, जो हमें अन्य ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा प्राप्त होते हैं,जैसे रोशनी,गरमी,स्वाद,शब्द,बू आदि-के अनुभव जो मनुष्यके वैयक्तिक जीवनको एक प्रकार आहार पहुंचाते रहते हैं। मिसालके तौरपर स्वादका अनुभव,जो एक प्रकार पहले जबानके सिरेसे शुरू होता है, यदि उचित ढंगसे उन्नति करता रहे तो अन्तको एक ऐसा अनुभव होजाता है जो

तमाम शरीरके स्वास्थ्य और उसके हितके साथ अपने तईं एक कर लेता है; फिर स्वादका आनन्द केवल जबानकी खालका आनन्द ही नहीं रह जाता बल्कि उससे कहीं ज्यादह वसीअ आनन्द होजाता है, और उचित अनुचित भोजनकी तमीज करनेमें फिर वह केवल मामूली शारीरिक शक्तियोंको अधिक पुष्ट करनेका ही खयाल नहीं रखता बलिक उससे कहीं बढ़कर बातोंका भी खयाल रखने लगता है। 'रोशनी'का अनुभव, जो इस भौतिक आंखसे शुरू होता है, भीतरकी ओर बढ़ता और अधिक गहरा होता रहता है यहांतक कि उसके द्वारा समस्त शरीर और मनके अन्दर एक प्रकारका आन्तरिक प्रकाश अथवा ईश्वरीय 'ज्ञान' व्याप जाता है जिससे कि सब चीजोंकी अपनी अपनी उचित जगह दिखाई देजाती है और उसीमें स्वयं सौन्दर्यका सच्चा अनुभव भी मनुष्यके सामने खुल जाता है। इसी तरह 'गरमी'के शारीरिक अनुभवका 'प्रेम'के साथ सम्बन्ध है और यह अनुभव 'प्रेम' तक ही मनुष्यको लेजाता है;और 'शब्द, को जब हम अपने मित्रोंकी आवाजोंमें वा गायनकी दिव्य सुरीली तानोंमें सुनते हैं तो फिर वह केवल एक बाहरी घटना ही नहीं रह जाता बलिक हमारी नाजुकसे नाजुक और प्यारीसे प्यारी भावनाओंको रूप देनेवाली भाषा बन जाता है।

इस प्रकार हमारी तमाम ज्ञानेन्द्रियां ज्यों ज्यों बढ़ती जाती हैं और अधिकाधिक गहरी होती जाती हैं; त्यों त्यों हमारे वैयक्तिक जीवनके बिलकुल केन्द्रमें पहुंचकर वे सब एक दूसरेमें मिलती हुई मालूम होती हैं। धीरे धीरे बहुत दिनोंके तजरबेके बाद उनका एक दूसरेके साथ सम्बन्ध और उनका असली मतलब खुलता जाता है वा खुलता जायगा; और ज्यों ज्यों यह होता जाता है त्यों त्यों ही मनुष्य इस बातको जानता जाता है कि उसके अन्दर एक प्रधान शक्ति मौजूद है अथवा वह स्वयं ही एक प्रधान शक्ति है जिसके कि उसकी

बाकी तमाम शक्तियां केवल भिन्न भिन्न तरहके जरूर हैं (अर्थात् इस अवस्थाको पहुंचकर मनुष्य अपनी आत्माके अस्तित्वको जानने लगता है)। इसके बाद और आगे बढ़कर जब व्यक्ति-रूप मनुष्यकी भावनाएं अधिक व्यापक होती जाती हैं अथवा उसकी ज्ञानेन्द्रियोंका गौरव बढ़ता जाता है तब वह दूसरे व्यक्तियोंके साथ अपने सम्बन्धको भी अनुभव करने लगता है। अपने प्रेमोंद्वारा, अपनी घृणाओंद्वारा, और अपने आकर्षण, नफरत, मेल, तरकीब, न्याय, उदारता, भला, बुरा इत्यादिके अनुभवों द्वारा—और ये सब भावनाएं इस बीच एक दूसरेके समान समयके साथ साथ अधिकाधिक गहरी होती जाती हैं—मनुष्य धीरे धीरे दूसरे मनुष्योंके साथ अपने सच्चे और स्थाई सम्बन्धको पहचानता जाता है, और उस दिव्य समाजके साथ भी अपने सम्बन्धको समझता जाता है जिसके वे सब ही अंग हैं—और अन्तको इसी तरह करते करते, यदि हम यह कहनेका साहस कर सकते हैं तो,मनुष्य परम नित्य और सर्व-व्यापक अस्तित्व (परम-आत्मा) के साथ धीरे धीरे अपने सम्बन्धको पहचानने लगता है। आजकल चूंकि आपसमें हमारा सबसे अधिक महत्वका सम्बन्ध एक दूसरेके साथ प्रतिस्पर्द्धा और "मुकाबले" (Competition) का समझा जाता है, इसलिये स्वभावतः "प्रकृति"के पदार्थोंके विषयमें भी हम यही समझते हैं कि वे मुख्यकर अपने अपने "जीवनकी रक्षाके लिये एक दूसरेके विरुद्ध संग्राम [Struggle for Existence] में लगे रहते हैं; किन्तु जब हम इस बातको जान जावेंगे कि हमारी सब ज्ञानेन्द्रियोंका, हमारी भावनाओंका और बहैसियत व्यक्तियोंके स्वयं हमारा सबका "परम" और सर्वव्यापी आत्माके साथ सम्बन्ध है और उस परम अस्तित्व-से हमारा सबका उसी तरह निकास है जिस तरह वृक्षकी शाखाओं और टहनियोंका उसके तनेसे—जब हम इन सब

बातोंको जान जावेंगे तब ही हम इस बातको भी समझने लगेंगे कि "प्रकृति"के अन्दर भी एक 'ईश्वरीय' और परम और नित्य सत्य विज्ञान मौजूद है; तब हम अन्तको समझेंगे कि समस्त पदार्थोंका एक दूसरेके साथ एक नित्य-स्थाई और अकाट्य सम्बन्ध है, और तब ही हम इन समस्त पदार्थोंके सच्चे अर्थको समझेंगे—किन्तु उससे पूर्व कदापि नहीं।

इसलिये क्या यह मुमकिन है कि "साइन्स", जो इस समयतक "मनुष्य-जीवन"के केन्द्रसे हटकर बिल्कुल बाहरी सिरेतक लगातार बाहरकी ओर जाती रही है—और कुछ समय बाद हम समझ सकेंगे कि साइन्सका यह कार्य भी वास्तवमें बड़ा उपयोगी और महत्वका था—क्या यह मुमकिन है कि साइन्स जो अपनी इस यात्रामें जहांतक मुमकिन होसकता था कुदरतकी घटनाओंको मनुष्यके भावोंसे खाली करती रही है, और जिसने अन्तको अपने तईं इस तरहकी अत्यन्त छायात्मक कल्पनाओंतक पहुंचा दिया है जो कल्पनाएं कि अर्थ और अनर्थ अथवा भाव और अभावके बीचकी बिल्कुल संदिग्ध सीमापर कायम हैं—मैं पूछता हूं कि क्या यह मुमकिन है कि यह सब कर चुकनेके बाद साइन्स अब फिर एक बार पीछेको मुड़ेगी और पहले जहांतक होसकता है कुदरतकी घटनाओंको मनुष्यके भावोंसे भरकर (अर्थात् "प्रकृति" के प्रत्येक रूपके साक्षात् और अत्यन्त जीवित सम्पर्कद्वारा हर घटना और हर पहलूके साक्षात् वैयक्तिक अनुभवमें प्रवेश करनेका अभ्यास करके), इस प्रकार धीरे धीरे ऊपरको चढ़ती हुई समस्त घटनाओंमें सबसे महान् और मरकजी घटना और सबसे महान् और मरकजी भावनातक पहुंचेगी, और फिर उस समय जाकर ही पहलेपहल साइन्सको एक ऐसे वसीअ संघटनका पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त होगा जोकि अपने केन्द्रसे लेकर सबसे दूरकी परिधितक पूर्णतया निर्दोष और पूरी तरह

गठा हुआ है, जो उस "मनुष्य" (अर्थात् आत्मा) का असली संसार है जिसमें मनुष्य और देवता दोनोंके रूप शामिल हैं, जो प्रत्येक वैयक्तिक मनुष्य, जानवर, पौदे अथवा प्राणीके अंदर प्रारम्भिक यानी बीज रूपमें मौजूद है, जो समस्त जीवन, समस्त अनुभव, समस्त पीड़ाओं और समस्त परिश्रमका अंतिम लक्ष्य है, जो मनुष्यके समस्त ज्ञानकी नींव है, और जो समस्त अध्ययनका एकमात्र गुप्त किन्तु उचित विषय है ?

इस सबके लिये क्या यह मुमकिन है, कि 'साइन्स'को, मोटे शब्दोंमें, प्रयोगशालाके कमरोंको छोड़कर "जीवन" के साथ मिलकर एक होजाना होगा; अथवा मनुष्य-जीवनके महान् और अनेक रूप-प्रवाहको आजकलकी दिमागी बेचैनीके प्रायः गन्दे अस्तबलोंमें उसी तरह छोड़ देना होगा जिस तरह प्राचीन यूनानके वीर हरकुलीजने बादशाह औजियसके उन गन्दे अस्तबलोंमेंको, जो तीस वर्षसे साफ न हुए थे, ऐल्फियस नदीका प्रवाह मोड़कर उन्हें एक दिनके अन्दर बहा दिया था ? फिर "कुदरत" की खोज केवल दिमागहीका विषय न रह जावेगी, बल्कि धैर्यके साथ सुनने और शान्तिके साथ देखने, और प्रेम और श्रद्धा और समस्त गहरे इन्सानी अनुभवोंका विषय होगी, फिर यह खोज छोटीसे छोटी घटनाका अर्थ करनेमें भी (आजकलकी साइन्सके समान) घमण्डके साथ अपना सिर ऊंचा करके न चलेगी, बल्कि हर एक "घटना" को हद दर्जेकी गहराईतक पहुंचावेगी, इस खोजमें हर तरहके अनुभवों (Experience) को (न कि आजकलके समान प्रयोगों Experiment को) खुशीसे आलिंगन किया जावेगा और मनुष्य "प्रकृति" माताके परदोंको फाड़नेके बजाय पुत्रके समान प्रेमके साथ उसके साथ साथ चलेगा, उस समय मनुष्यका जीवन खुली हवामें, और जल और स्थलके ऊपर व्यतीत होगा, मनुष्य पशुओं और वृक्षों और ताराओंके साथ रहेगा, उनके

साथ वैयक्तिक नाता जोड़कर उनकी आदतोंका साक्षात् ज्ञान लाभ करेगा, उनकी आवाजों और जबानोंको पहचानेगा, और ध्यानके साथ सुनेगा कि वे स्वयं क्या कहना चाहते हैं; उस समय शारीरिक शक्तियोंको प्राप्त करने और भौतिक तत्वोंका सामना करनेके लिये इन्द्रियोंको अत्यन्त तेजसे तेज ढंगसे सिधाया जावेगा, और मनुष्य-जातिके समस्त अनुभवको, बिना किसी चीजको भी छोड़े, अपनाया जावेगा—तब कहीं "साइन्स" एक सच्ची साइन्स होगी।

क्या यह मुमकिन है कि बजाय "साइन्स" की हर शाखको उसके नीचेसे नीचे तत्वोंतक खींच लानेके (जैसाकि हम आजकल करते हैं) हमें किसी अर्थमें उसके उच्चसे उच्च तत्वोंकी ज्योतिमें उसका अध्ययन करना होगा और "ऊपर उठाकर" हर साइन्सको उससे ऊपरकी "साइन्स" में जामिलाना होगा? मेरा मतलब यह है कि हम इन साइन्सोंको केवल तब ही समझ सकेंगे जब हम मशीनों और कलपुर्जोंकी साइन्सोंको उभारकर भौतिक साइन्सोंमें, भौतिक साइन्सोंको लेकर सजीव पदार्थोंकी साइन्सोंमें, सजीव पदार्थोंकी साइन्सोंको सामाजिक और सदाचार-सम्बन्धी साइन्सोंमें और इसी तरह उन्हें उत्तरोत्तर लेजाकर एक दूसरेमें मिला देंगे। क्या यह होसकता है कि रसायन-विज्ञान (केमिस्टरी) की घटनाएं केवल जीवित प्राणियों और उनकी क्रियाओंके सम्बन्धसे ही अपना यथोचित स्थान और यथोचित महत्व प्राप्त कर सकती हैं; कि जीवित पदार्थोंकी घटनाएं और जीवन-विज्ञान (बाइऔलोजी) और पशुविज्ञान (जूऔलोजी) के नियम—जिनमें 'विकासवाद' भी शामिल है—केवल उस समय ही "समझमें आसकते हैं" जबकि पहले वृक्षों और पशुओं, दोनोंके आत्मत्वके ऊपर इन घटनाओं और नियमोंकी निर्भरताको मान लिया जावे; कि यदि 'सम्पत्ति-विज्ञान' (पोलिटिकल इकोनौमी) और अन्य 'सामाजिक विज्ञानों' को (जिनका सम्बन्ध अलग अलग मनुष्यों अर्थात् व्यक्तियोंसे

है) ठीक ठीक समझना हो तो उन महान् धार्मिक असूलों और उत्साहोंकी रोशनीमें उनका अध्ययन करना होगा जो एक वर्जेतक मनुष्यको उसके वैयक्तिक आपेसे ऊपर उठा लेजाते हैं; और अन्तमें 'सदाचार विज्ञान' अर्थात् पाप-पुण्यकी समस्याओंका अध्ययन केवल तब ही सार्थक होसकता है जबकि विद्यार्थी इस बातको समझ चुका हो कि 'सदाचार-विज्ञान' से ऊपर एक ऐसा भी क्षेत्र है जिसमें सदाचार और दुराचार; पाप और पुण्यके प्रश्न न प्रवेश करते हैं और न कर सकते हैं ?

साइन्सके मामूली तरीकेको इस प्रकार उलट देनेकी रस्किन (१६ वीं सदीका एक सुप्रसिद्ध और सुयोग्य अंगरेज विद्वान्)ने अपने 'सम्पति-विज्ञान' के व्याख्यानों और लेखोंमें एक जबरदस्त और अद्भुत मिसाल कायम की है; शायद "साइन्स" की दूसरी शाखाओंमें उसका अनुकरण करना अब दूसरोंका काम है * ।

* इस तरहपर 'रेखागणित' के अध्ययनका मुख्य उद्देश्य होगा आंखको और भीतरकी आंख अर्थात् ज्ञान-चक्षुको इस तरह साधना कि वे रेखागणित-सम्बन्धी शकलों और घटनाओंको देख सकें, कोणोंको परख सकें, इत्यादि—और केवल गौण उद्देश्य होगा आनुमानिक युक्तियों-द्वारा नतीजे निकालना, और इस तरहके अनेक कल्पित नियम तैयार करना जो तर्ककी रस्सियोंसे मजबूत बंधे हुए हों; 'प्राकृतिक विज्ञान' (Natural History) के अध्ययनका मुख्य उद्देश्य होगा पशुओं और वनस्पतियोंकी आदतोंका एक प्रेम-पूर्ण निकट परिचय प्राप्त करना, और उनकी अलग अलग श्रेणियां बनानेको वह केवल एक गौण बात और मुख्य उद्देश्यके लिये सहायक रूप समझा जावेगा;शरीर-विज्ञान(Physiology) का फिर मुख्यकर "स्वास्थ्य" के तरीकेपर अध्ययन किया जावेगा अर्थात् शरीरको पवित्र किया जावेगा यहांतक कि धीरे धीरे समस्त शरीर और उसके समस्त अङ्ग भीतरके चक्षुके लिये साफ शीशेकी तरह चमकने लगेंगे,और जो नतीजे मनुष्यको इस तरह हासिल होंगे उनको केवल पुष्ट करने और ठीक करनेके लिये चीरफाड़का उपयोग किया जावेगा; इत्यादि ।

एक नित्य और परम तत्व (Absolute) यानी समस्त अस्तित्वके अन्तर्गत एक प्रधान असलीयतकी खोजके सम्बन्धमें हम ऊपर देख चुके हैं कि 'साइन्स'के सामने दो मार्ग खुले हुए हैं—या तो यह कि 'साइन्स' केवलमात्र दिमागी होकर अपनी खोज किसी बिल्कुल बाहरी (और फर्जी) चीजसे शुरू करे जैसेकि 'अणु' से, अथवा यह कि 'साइन्स' ईश्वरीय बनकर इस परम तत्वकी खोज मनुष्य-स्वभावके अन्तःतम गुप्त स्थानोंमें करे। 'विकास' (Evolution) के सिद्धान्तके विषयमें भी हमारे सामने इसी तरहके दो मार्ग हैं और इस सिद्धान्तका अर्थ दोनों तरहसे किया जासकता है, अर्थात् या तो विकास-शृङ्खलाके सबसे नीचे छोटेसे छोटे जन्तुओं (Amoeba) से शुरू करके और या इस शृङ्खलाके सबसे ऊपर मनुष्यसे शुरू करके यानी या तो उन चीजों (या जन्तुओं) से जिनके विषयमें हमें प्रायः कुछ भी जानकारी नहीं है और या उस चीज (मनुष्य) से जिसके विषयमें और चीजोंकी अपेक्षा हमारी जानकारी सबसे अधिक है। जर्मनके सुप्रसिद्ध विद्वान् गैथे (Goethe १७४६-१८३२) को इटलीके पैडुआ नगरमें बैठे हुए ताड़के एक वृक्षकी ओर देखते देखते पत्तोंके रूपान्तर होनेकी कल्पना सूझी, और बादमें उसने अपनी इस कल्पनाको उस सिद्धान्तके रूपमें बयान किया जिसे अब सब स्वीकार करते हैं अर्थात् यह कि वृक्षके समस्त भाग जैसे बीजदानी, फूलके बीचकी गर्भकेसर, उसके चारों ओरकी केसर (पुंकेसर वा जीरा), पंखड़िया, पखंड़ियोंके नीचेकी पत्तियां, टहनी इत्यादि, सब केवल एक पत्ते वा अनेक पत्तोंके रूपान्तरमात्र समझे जासकते हैं। इस सिद्धान्तकी दृष्टिसे अलग अलग भागोंके भेद मिट जाते हैं और बजाय अनेक भागोंके एक ही भाग रह जाता है—किन्तु प्रश्न यह है कि "वह भाग क्या है ?" निस्सन्देह उसे 'पत्ता' कहना एक मनमानी बात है, क्योंकि जब उसका लगातार

रूपान्तर होता रहता है तो वह किसी समय पत्ता है तो दूसरे समय टहनी है, और फिर तीसरे समय छोटी पत्ती है और फिर कभी पंखड़ी है, इत्यादि। तो बताओ, वह है क्या? एक लमहेके लिये तो सर चकरा जाता है, उत्तर नहीं दिया जासकता।

ठीक यही हाल 'विकास' (Evolution) के सिद्धान्तका है जिसके दायरेमें कि छोटेसे छोटे जन्तुसे लेकर मनुष्यतक समस्त शरीरधारी संसार आजाता है*। जिस तरह पत्तोंके रूपान्तर होते रहनेका सिद्धान्त वृक्षके विविध भागोंके भेदको मिटा देता है वैसे ही 'विकास' का सिद्धान्त विविध भागोंके जीवों वा प्राणियोंके बीचके भेदको उड़ा देता है। ('पशुविज्ञान' पशुजातिमें दो मुख्य भेद करता है—एक वे जिनके रीढ़की हड्डी होती है और दूसरे वे जिनके रीढ़की हड्डी नहीं होती।) ज्यौफ्रे सेण्ट हिलेयर नामक विद्वान्ने फ्रेञ्च ऐकेडेमी नामक फ्रान्सकी विद्वत्परिषद्के सामने यह दिखानेकी तजवीज की थी कि यदि किसी रीढ़की हड्डीवाले पशु (Vertebrate जैसे गाय, घोड़ा, मनुष्य) के विषयमें यह अनुमान कर लिया जावे कि वह उलटा पीछेको मुड़कर हाथों और पैरोंके बल चलने लगा तो बिना रीढ़के जन्तुओं (Cephelopod जैसे कई जल-जन्तु होते हैं) और रीढ़की हड्डीवाले जन्तुओंका भेद मिट जाता है। छोटेसे छोटे बिना रीढ़के कीड़े (Molluse) से लेकर मनुष्यतक एक लगातार ऊपरको चढ़ता हुआ धीरे धीरे विकासका सिलसिला जारी है, इन दोनोंके बीच और बीचकी तमाम पशुयोनियोंके बीच भेदकी तमाम रेखाएं बराबर जगह बदलती हुई और एक दूसरेमें लीन होती हुई मालूम होती हैं, जातियों और उपजातियोंका

* मोटे शब्दोंमें डारविनके अनुसार विकासका सिद्धान्त यह है कि इन्सानतक जानवरोंकी जितनी जातियां-उपजातियां संसारमें पाई जाती हैं उन ही सबका निकास एक दूसरेके बाद धीरे धीरे कुछ प्रारम्भिक रूपसे अत्यन्त सरल जन्तुओंसे हुआ है—अ०।

भेद मिट जाता है और "साइन्स" को बजाय अनेकके केवल एक ही चीज दिखाई देने लगती है। तब (सोचना चाहिये कि) वह एक चीज क्या है? वह बिना रीढ़का कीड़ा (Molluse) है अथवा मनुष्य है अथवा क्या है? क्या हमें यह कहना चाहिये कि मनुष्य एक छोटेसे कीड़े (Molluse or an amoeba)का बढ़ते बढ़ते रूपान्तर है अथवा यह कि वह कीड़ा मनुष्यका एक प्रारम्भिक रूप है? हमें क्या समझना चाहिये? यहांसे आगे विचार करनेकी दोनों दिशाएं हमारे सामने खुली हैं, हमें इनमेंसे कौनसी दिशा अख्तियार करनी चाहिये? किन्तु सीधी सच्ची बात यह है कि केवल 'दिमाग'से इस समस्याका कोई सन्तोषजनक उत्तर दिया ही नहीं जासकता। 'दिमाग' इन दोनों दिशाओं वा दोनों हलोंमेंसे चाहे किसी एकको भी चुन ले उसका इस प्रकार चुनना बिल्कुल वैसा ही मनमाना होगा जैसाकि ऊपरकी मिसालमें "पत्ते" नामका चुन लेना। इस प्रश्नका उत्तर हमारे पास है ही नहीं। इस प्रकार "विकास" के सिद्धान्तका प्रकट होना "साइन्स"के नाशका सूचक है (निस्सन्देह 'साइन्स' से यहां हमारा मतलब केवल आजकलके मामूली अर्थोंमें 'साइन्स' से है)। क्योंकि "विकास-बाद" का मतलब ही एक दूसरेके बाद प्राणी प्राणीके बीचके उन तमाम बनावटी भेदों वा उन भिन्नताकी रेखाओंको मिटा देना है जिनके अस्तित्वकी बुनियादपर ही साइन्सकी इमारत कायम है और जिस समय कि "विकास" का सिद्धान्त शरीरधारी और गैर शरीरधारी समस्त "प्रकृति" को अपने दायरेके अन्दर लेआवेगा (और कुछ ही समय बाद ऐसा अवश्य होगा,) तब "साइन्स" की आंखोंके सामने समस्त "प्रकृति" की भिन्नताकी रेखाएं (यहांतक कि जड़ और चेतनके बीचकी फर्जी रेखाएं) एक दूसरेमें दौड़ने और लीन होने लगेंगी, "साइन्स" तब इस बातको समझ जावेगी कि उसके कायम किये हुए भेद

ावटी और मनमाने हैं और 'साइन्स' मुड़कर स्वयं अपना नाश कर लेगी। मुझे विश्वास है कि मनुष्य-जातिके इतिहासमें आजसे युगों पूर्व पहले भी ऐसा होचुका है और शायद फिर यही चक्र दोहराया जावेगा।

इस पहेलीका कि "वह क्या चीज है जो कभी छोटासा कीड़ा होती है और कभी मनुष्य और कभी एक बेजान अणु ?" केवल एक ही उत्तर समझमें आसकता है, और उस उत्तरका देनेवाला स्वयं मनुष्य है; किन्तु मुझे डर है कि वह उत्तर "साइन्सकी तर्कशैलीके अनुकूल" (Scientific) नहीं है। उत्तर यह है—"वह मैं हूं।" "मैं ही हूं जो अनेक रूपोंमें प्रकट होताहूं।" इस उत्तरका जोर इस बातपर निर्भर है कि इस "मैं" शब्दसे मनुष्यका क्या अर्थ है। इस ही प्रकार समस्त विश्वकी एक नित्य और परम असलीयतकी खोजका एकमात्र और समझमें आनेयोग्य उत्तर भी इसी "मैं" शब्दके अर्थमें मिल सकता है— अर्थात् मनुष्यके भीतरी अनुभव यानी उसकी चेतनताके अधिक गहरा होनेमें। "मनुष्य" (आत्मा) ही समस्त पदार्थोंका माप है। यदि हम 'साइन्स' से यह काम लेना चाहते हैं कि वह मनुष्यके सबसे बाहरके अंशको आराम पहुंचावे—अर्थात् उसके लिये सस्ते बूट और सस्ते जूते मोहय्या कर दे इत्यादि—तब हमारा मनुष्यके बाहरी अंशमें अपने परम तत्वकी खोज करना ठीक है, और मनुष्यके पैरके मापसे शुरू करना भी उचित है। हमने फुटों (पैरों अथवा दूरी मापनेके फुटों) और पौण्डों (सोनेका सिक्का अथवा आधा सेरका वजन) की बुनियादपर एक साइन्स खड़ी की और वह अपना काम खासी अच्छी तरह देरही है। किन्तु यदि हम मनष्यके भीतरी अस्तित्वके लिये लिबास बनाना चाहते हैं—अथवा एक ऐसा लिबास तैयार करना चाहते हैं जो सम्पूर्ण सर्वाङ्ग मनुष्यके ऊपर फब जावे— जिसे पहरना मनुष्यके लिये आनन्ददायक और एक तरहसे

अपने ही भीतरी अर्थको प्रकट करनेके तुल्य हो—तो जाहिर है कि हमें अपना माप मनुष्यके वाहरसे नहीं बल्कि उसके भीतरके अन्तर्तम तत्त्वसे लेना होगा। सारा सवाल यह है कि इस दिशामें भी कोई परम और नित्य असलीयत है वा नहीं। समस्त ऐतिहासिक युगोंमें और उससे पूर्व भी ऐसे मनुष्य हो-चुके हैं जो कहते आये हैं कि मनुष्यके भीतर इस तरहकी असलीयत मौजूद है। मुमकिन है कि वे लोग स्वयं अपने भीतर उस असलीयतको अनुभव करते थे। दूसरी ओर ऐसे लोग भी हुए हैं जो, पैरोंसे शुरू करके, कहते रहे हैं कि स्वयं मनुष्यकी चेतनता ही इस शारीरिक मशीनका केवल उसी तरहका एक नतीजा है जिस तरह सीटी इंजनका नतीजा होती है वा उस इंजनसे पैदा होजाती है—इन दोनों दलोंके बीच अभी अन्तिम निर्णय होना बाकी है। आज दिन अधिकतर पैरोंहीके उपासकोंका जोर है, और (बावजूदे कि पैर छोटे बड़े अनेक मापके होते हैं और बूट पहननेकी आदतके कारण उनकी शकलें भी तरह तरहकी होजाती हैं, तथापि) आम तौरपर आज दिन लोग यही समझते हैं कि पैरोंसे बढ़कर परम तत्त्व हमें कोई नहीं मिल सकता।

इस पैरोंके राज्यमें आम तौरपर यह माना जाता है कि यह समस्त विश्व अनेक ऐसे पदार्थों और ताकतोंका एक जमघट है जिनमें आपसमें थोड़ी-बहुत तरतीब भी है और जो सब मनुष्यसे भिन्न हैं। इस जमघटके बीचमें ही मनुष्य डाल दिया गया है और मनुष्यके जीवनका उद्देश्य और उसके जीवनकी प्रवृत्ति है "अपने चारों ओरकी परिस्थितिके अनुसार अपने जीवनको ढाल लेना" (Adaptation to his exviron-ment), इस मतको समझनेके लिए हम कल्पना करते हैं कि मिसेज ब्राउन नामकी एक स्त्री आक्सफोर्ड स्ट्रीट नामक गलीके बीचमें है। गाड़ियां और मोटरें इधर-उधर तेजीसे

आ-जारही हैं, मिसेज ब्राउनके चारों ओरसे गड्डे और छकड़े खड़-खड़ाते हुए निकले चले जारहे हैं। यह मिसेज ब्राउनके चारों ओरकी परिस्थिति है और इसीके अनुसार उसे अपने तईं ढालना है। उसे इन सवारियोंकी चालें और उनके नियम सीखने होंगे, बचनेके लिये उसे कभी इस हाथ खड़ा होना होगा और कभी उस हाथ, कहीं दौड़ना होगा और कहीं रुक जाना होगा,मुमकिन है किसी उचित अवसरपर किसी एक गाड़ीके अन्दर कूदकर बैठ जाना होगा और उसकी चालके नियमसे फायदा उठाकर जितना मुमकिन होसकता है उतने आरामके साथ अपने मुकामतक पहुंच जाना होगा। इस तरह बहुत दिनोंतक शिक्षा पाते रहनेसे मिसेज ब्राउनका जीवन बहुत कुछ ठीक दिशामें "ढल जाता" है और पहलेकी निस्बत उसका शरीर और मन, दोनों अधिक फुर्तीले होजाते हैं। यह सब तो बहुत ठीक है। किन्तु मिसेज ब्राउनका एक मुकाम, एक लक्ष्य भी है जहां उसे जाना है। (निस्सन्देह यदि उसका कोई लक्ष्य न होता तो वह आक्सफोर्ड स्ट्रीटके बीचमें पहुंच कैसे जाती? और यदि बिना किसी लक्ष्यके केवल इधर-उधर फुदकनेके लिये वह वहां पहुंच गई तो क्या थोड़े ही समय बाद कोई मिसेज ब्राउन रह जावेगी?) असली सवाल यह है कि, "'मनुष्य' का लक्ष्य, उसकी मंजिले मकसूद, क्या है?"

दुर्भाग्यसे इस आखरी सवालके बारेमें हम प्रायः कुछ भी चर्चा नहीं सुनते। आजकलका असूल यह है (मैं उम्मेद करता हूं कि मैं इस असूलके साथ अन्याय नहीं कर रहा हूं) कि अपने चारों ओरकी परिस्थितिका काफी अच्छी तरह अध्ययन करनेसे तुम्हें इस लक्ष्यका पता लग जावेगा—अर्थात् यह कि ज्योतिष-विज्ञान, जीवन-विज्ञान, भौतिक विज्ञान, सदाचार-विज्ञान इत्यादि साइन्सोंकी खोज करनेसे तुम्हें 'मनुष्य'का लक्ष्य मालूम होजावेगा। किन्तु मुझे यह बात ऐसी ही मालूम होती

है जैसा यह कहना कि गाड़ियों और मोटरोंके नियमोंका काफी अच्छी तरह अध्ययन करनेसे तुम्हें यह मालूम होजावेगा कि तुम किस मुकामको जारहे हो। वास्तवमें ये सब केवल जरिये और साधन हैं। खुशीसे इनका अध्ययन करो, ऐसा करना बिल्कुल ठीक है; किन्तु मत सोचो कि ये तुम्हें यह बता देंगे कि तुम्हें जाना कहां है। तुम्हें इनका उपयोग करना है न कि ये तुम्हारा उपयोग करें।

इसलिये यदि चारों ओरकी परिस्थितिसे काम लेना है तो किसी लक्ष्यका होना जरूरी है। मैं समझता हूं कि जीवन-विज्ञान (Biology) के इस असूलका भी कि—"शरीरके अंगोंकी रचना दो चीजोंसे नियत होती है, एक जो 'कार्य' उस अंगद्वारा होना है (Function) उससे और दूसरे आस-पासकी परिस्थितिसे;" यही मतलब है। तब फिर "मनुष्य"का 'कार्य' वा उसका 'धर्म' (Function) क्या है ? इस स्थानपर हम फिर "मैं" शब्दके अर्थकी ओर लौट आते हैं।

बावजूद इस बातके कि आजकल चारों ओर पैरोंका राज्य है और लामजहब लोग मिलकर अत्यन्त प्रचण्डताके साथ पैरोंमें अपने विश्वासका प्रतिपादन करते हैं; तथापि हम यह सुझा देना चाहते हैं कि मनुष्यके अन्दर एक दिव्य अनुभव अर्थात् अपने ईश्वरीय होनेका अनुभव और एक पैरोंका अनुभव, दोनों तरहके अनुभव(A divine Consciousness as well as foot Consciousness)मौजूद हैं। जिस तरह हम ऊपर दिखला चुके हैं कि जबानके जायकेका अनुभव जो शुरूमें केवल जबानके सिरेपर एक स्थानीय अनुभव होता है धीरे धीरे उन्नति करके समस्त शरीरमें व्यापक होसकता है और समस्त शरीरके स्वास्थ्यके साथ समानार्थी होसकता है; अथवा जिस तरह आकाशका नीलापन एक मनुष्यके लिए केवल रंगका एक ऊपरी अनुभव होसकता है, और दूसरे मनुष्यको वही नीला-

पन एक कविता लिखने वा चित्र खींचनेके लिये उत्तेजित कर सकता है, और तीसरेको—जिस तरह कि "प्रेम इलाहीके नशेमें मख्मूर" रेगिस्तानके अरबको—वही नीलापन एक वैसी ही जिन्दा हस्ती मालूम होसकता है जिस तरहकी कि प्राचीन यूनानियोंके लिये उनका प्रधान देवता 'द्याऊस' वा 'ज़ुस' (Zeus) था उसी तरहपर क्या यह मुमकिन नहीं है कि मनुष्यकी सारी चेतनता धीरे धीरे केवल एक स्थानीय (अर्थात् निज शरीर-तक परिमित) और क्षणिक चेतनासे उभरकर और उन्नति कर ईश्वरीय और विश्वव्यापी चेतनाका रूप धारण कर ले ? हम जानते हैं कि हर मनुष्यके अन्दर एक स्थानीय चेतना मौजूद है जिसका सम्बन्ध उसके केवल इस बाहरी शरीरके साथ है। किन्तु क्या हर मनुष्यके अन्दर ही एक विश्वव्यापी चेतनाके अंकुर भी मौजूद नहीं हैं ? यह बात तो रोजमर्राके तजर्बेमें आती रहती है कि हमारे अन्दर कभी कभी चेतनाके इस तरहके पहलू उभर आते हैं जो पांच इन्द्रियोंकी ज्ञान-सीमासे बाहर हैं; इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि कभी कभी हमें ऐसी चीजें दिखाई देजाती हैं वा हमें ऐसी चीजोंका ज्ञान होजाता है जो न शारीरिक आंखोंसे दिखाई देती हैं और न शारीरिक कानोंसे सुनाई देती हैं; इसमें भी सन्देह नहीं कि अपने आस-पासके लोगों, अपनी कौम वा अपनी जातिकी ओरसे चेतनताकी विशेष लहरें कभी कभी हमारे अन्दर पैदा होती रहती हैं; तो क्या यह मुमकिन नहीं कि हमारे अन्दर ही इस तरहकी एक दिव्य दृष्टि और इस तरहके एक दिव्य ज्ञानके अङ्कुर मौजूद हों जिस दृष्टि और जिस ज्ञानका सम्बन्ध इस परिमित और अनित्य शरीरके साथ नहीं, बल्कि जो दृष्टि और जो ज्ञान अनन्त काल और हर स्थानके लिये सच्चे और उपयोगी होंगे ? सचमुच जैसाकि हम अभी संकेत कर आये हैं, क्या हमारे सबके अन्दर एक आन्तरिक "प्रकाश" मौजूद नहीं है जिसका कि वह चीज

जिसे हम बाहरी दुनियामें 'रोशनी' कहते हैं केवल एक अधूरा जहूर और विकास है, जिसके द्वारा अन्तको हम चीजोंके असली रूपको देख सकते हैं, अर्थात् समस्त सृष्टिके जानवरों, फरिश्तों, वृक्षों, अपने मित्रोंकी शकलों, और मनुष्यकी तमाम श्रेणियों और जातियोंके सच्चे अस्तित्व और उनकी असली व्यवस्थाको पहचान सकते हैं—किसी शारीरिक आंखके जरियेसे नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यापक और प्रत्यक्ष अन्तर्ज्ञानके जरिये जिसमें देखनेवाला दिखाई देनेवाली वस्तुके साथ अपने तईं एक अनुभव करने लग जाता है ? क्या हमारे भीतर "सुनने" का एक निर्दोष और परिपूर्ण अनुभव मौजूद नहीं है—जिस तरह कि मानो असंख्य प्रभात-तारे मिलकर गायन करते हुए सुनाई देते हों—यानी उन शब्दोंको समझना जिनका उच्चारण समस्त विश्वके अन्दर होरहा है, समस्त पदार्थोंके गुप्त अर्थको समझना, उस शब्दको समझना जो स्वयं सृष्टि ही है—अर्थात् एक ऐसी गहरी और व्यापक सुननेकी ताकत जिसकी कि हमारी मामूली सुननेकी ताकत, हमारी शारीरिक श्रवणेन्द्रिय, केवल हमारा पहला पाठ और हमारी आरम्भकी दीक्षामात्र है ? क्या हम (कभी कभी) अपने भीतर "स्वस्थता" (Health) और "पवित्रता" (Holiness) के एक इस प्रकारके भीतरी अनुभवको महसूस नहीं करते—जो हमारी बाहरी जिह्वा यानी रसनेंद्रियका एक प्रकारका अनुवाद और खुलते खुलते उसका अन्तिम और सर्व्वोच्च रूप है—जिसे बिना किसी शोर-शरके, बिना दलील और बिना इनकारके हर, अवस्था और हर हालतमें यह निर्णय करनेका सम्पूर्ण और अन्तिम अधिकार है कि क्या करना अथवा क्या सहन करना हमारे लिये हितकर और उचित होगा ? इत्यादि ।

इससे ज्यादह कहनेकी जरूरत नहीं है। यदि मनुष्यके अन्दर इस तरहकी ताकतें मौजूद हैं, तो वास्तवमें एक सच्ची

साइन्स वा एक सच्चा विज्ञान मुमकिन होसकता है। बिना इन ताकतोंके साइन्स केवल एक अचिरस्थाई और छाया साइन्स ही होसकती है। स्टुआर्ट मिल अपनी पुस्तक "सिस्टम आफ लौजिक" में लिखता है—"जिन जिन चीजोंका ज्ञान हमें बराह रास्त अपनी चेतनता (Consciousness) द्वारा होता है उन उनके ज्ञानके विषयमें सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं" जिन जिन चीजोंका ज्ञान हम अपनी स्थानीय और अनित्य चेतनताद्वारा लाभ करते हैं उनके ज्ञानके विषयमें उस समयके लिये सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं; जिन जिन चीजोंका ज्ञान हम अपनी नित्य और विश्वव्यापी चेतनताद्वारा लाभ करते हैं उनके ज्ञानके विषयमें सदाके लिये सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं।

तीसरा अध्याय

एक बुद्धिसंगत और मनुष्योचित साइन्स*

शायद आप मुझे माफ करेंगे यदि एक बुद्धिसंगत और मनुष्योचित यानी सबका हित चाहनेवाली साइन्सके इस विषयको आपके सामने पेश करते समय मैं थोड़ी देरके लिये इसके सम्बन्धके कुछ अपने व्यक्तिगत हालात आपको सुनाने लगूं। मैंने लगभग चार सालतक केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें गणितका अध्ययन किया। उसके बाद ऐसा हुआ कि लगभग दस वर्ष तक मैं 'भौतिक साइन्सों' (Physical Sciences) के अध्ययनमें और उनके ऊपर व्याख्यान देनेमें लगा रहा। कुदरती तौरपर उस समयके शुरूके हिस्सेमें मैं बिना किसी ऐतराजके आजकलकी साइन्सोंके तरीकों और उनके नतीजोंको मानता रहा। किन्तु धीरे धीरे मैं अपने अन्दर एक प्रकारका असंतोष अनुभव करने लगा। मैं महसूस करने लगा कि "साइन्स" के अनेक ऐसे नियम जिन्हें विश्वव्यापी सचाइयां बताया जाता है वास्तवमें केवल एक बहुत छोटे से दायरेके अन्दर ही सच हैं; और बहुतसे ऐसे नतीजोंकी पुख्तगी, जिनपर इतना अधिक जोर दिया जाता है, बिल्कुल संदिग्ध है। अन्तको इस बढ़ते हुए असन्तोषका नतीजा यह हुआ कि मैंने सन् १८८४के लगभग "आजकलकी साइन्स" के ऊपर एक जरा जोरदार हमला

---

* यह अध्याय वास्तवमें एक भाषण है जो ग्रन्थकारने सन् १८९६ ई० में लन्दनकी 'ह्यूमैनिटेरियन लीग' नामक संस्थाके सामने दिया था। इस पुस्तकके अन्दर यह भाषण पहली बार सन् १९०६ में शामिल कर लिया गया।

किया अर्थात् उसपर एक कड़ी आलोचना लिखकर प्रकाशित की ⁂।

अब इस तमाम पिछले जमानेका स्मरण करते हुए यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हूं कि मेरे उस हमलेमें थोड़ीसी जल्दबाजी और तफसीलमें कहीं कहीं थोड़ी अपरिपक्वता भी थी तथापि मैं महसूस करता हूं कि मेरा उस लेखका मुख्य दावा बिलकुल ठीक था, और मैं उसे वापस लेनेकी अपने अन्दर जरा भी जरूरत वा प्रवृत्ति अनुभव नहीं करता।

मेरा वह मुख्य दावा क्या था? वह इस प्रकार था। "आजकलकी साइन्स" संसारकी समस्त घटनाओंका दिमागकी खालिस और सूखी रोशनीमें, जिसपर मनुष्य-हृदयके भावोंका कोई रङ्ग न चढ़ा हो, निरीक्षण करने और फिर उन घटनाओंको अलग अलग श्रेणियोंमें विभक्त करनेकी एक कोशिश है, अर्थात् इस कोशिशका नाम ही 'साइन्स' है, निस्सन्देह 'साइन्स' स्वयं अपनी इस परिभाषाको स्वीकार करेगी; और इस दर्जे तक ही 'साइन्स' इस बातकी एक कोशिश है कि मनुष्यके दिमागी हिस्सेको उसकी केवल पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान, उसकी भावनाओं और मनुष्य-स्वभावके धार्मिक तथा अन्य भागोंसे अलग कर दिया जावे। यहींपर मेरा मतभेद है; मेरा दावा यह था कि अन्तको जाकर इस तरह मनुष्य-स्वभावके अलग अलग टुकड़े किये ही नहीं जासकते।

किन्तु अपने इस दावेके लिये सबूत देनेसे पहले मैं फौरन् यह स्वीकार कर लेना चाहता हूं कि मनुष्यकी भावनाओंको दूर रखकर दिमागकी खुश्क रोशनीमें हर चीजको देखनेकी यह "आजकलकी साइन्स"की कोशिश किसी किसी पहलूसे बड़े ही

⁂ थोड़ेसे परिवर्त्तनके साथ यही सन् १८८४ वाला लेख सन् १८८९ में इस पुस्तकमें शामिल कर दिया गया और इस भागके पहले अध्यायके रूपमें ऊपर आचुका है।

महत्वकी थी। जब हम यह सोचने लगते हैं कि "प्राचीन समयकी साइन्स" क्या थी, जिसमें अनेक तरहके खब्त और हठधर्मियां भरी हुई थीं, जिसमें यह माना जाता था कि ग्रहणके समय दैत्य सूरज और चाँदको डसने लगते हैं, जिसमें किसी महामारी वा भौंचालके देवताको प्रसन्न करनेके लिये सैकड़ों जिन्दा मनुष्योंकी कुरबानियां कीजाती थीं; जिसमें अनेक तरहके डर और अन्धविश्वास भरे हुए थे और जो किसी भी चीजको सिवाय इस एक दृष्टिके किसी दूसरी दृष्टिसे देख ही न सकती थी कि उस चीजका मनुष्यके अपने आराम और उसकी छोटी छोटी उम्मेदों और उसके अन्देशोंपर क्या असर पड़ता है; जब हम इन सब बातोंको सोचते हैं तो मालूम होता है कि वास्तवमें कुदरतकी घटनाओंको बिना किसी तरहका उनपर रंग चढ़ाये उन्हींके असली रूपमें देखनेकी यह कोशिश पुराने तरीकेके मुकाबलेमें एक बहुत बड़ी उन्नति थी। यह एक प्रकारसे "मनुष्यकी" यह कोशिश थी कि वह अपने आपेसे ऊपर उठ सके, और मैं इस कोशिशकी पूरी पूरी सराहना करता हूं और उसकी बड़ी इज्जत करता हूं।

तथापि, जिस समयका मैं जिकर कर रहा हूं उस समयमें तीन बातें मेरे दिलमें घर करती जारही थीं; एक यह कि 'साइन्स' की यह कोशिश एक असम्भव कोशिश थी; दूसरी यह कि जिसे हम "साइन्स" कहते हैं वह वास्तवमें सच्ची साइन्स (अर्थात् सच्चा विज्ञान) नहीं है; और तीसरी यह कि जिस मानसिक निर्भ्रान्तताका "आजकलकी साइन्स" दावा करती है वह निर्भ्रान्तता वा यथार्थता तो वास्तवमें उसमें है नहीं किन्तु इस झूठे दावेके कारण यह "साइन्स" इस तरहकी तंग खयाली और हठधर्मी पैदा करती जारही है जो उतनी ही बुरी है जितनी कि पुराने जमानेकी तंग खयाली और हठधर्मी होसकती थी।

वास्तवमें मैं समझता हूं कि इस कोशिशहीमें एक खास

भ्रान्ति शामिल है। किन्तु मैं उसे कैसे बयान करूं? बाहरके संसारके साथ हमारे जितने सम्बन्ध हैं वे एक बिल्कुल मोटे तरीकेपर तीन हिस्सोंमें बांटे जासकते हैं—एक हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध, दूसरे शुद्ध मानसिक अर्थात् दिमागी सम्बन्ध यानी खयालोंद्वारा सम्बंध, और तीसरे वे सम्बंध जिनका सम्बंध हमारे हृदयकी भावनाओं और हमारे धार्मिक भावोंसे है। "प्रकृति" के किसी पदार्थको लेलीजिये—मसलन् एक पक्षी। पक्षीको हम या तो आंख कान आदि अपनी ज्ञानेंद्रियोंका एक विषय मान सकते हैं, इसमें उसका रूप, उसका रङ्ग, उसका गाना इत्यादि आजाता है। कोई कोई लोग इस विषयमें गैर मामूली होशियारी और तेजी हासिल कर लेते हैं। और केवल आवाजसे वा कभी कभी उड़नेसे ही तुरन्त गानेवाले पक्षीको पहचान लेते हैं। या दूसरी ओर हम उसी पक्षीको दिमागी पहलूसे देख सकते हैं—यानी उसके चारों ओरकी परिस्थितिके लिहाजसे उसका अध्ययन कर सकते हैं—और इस दृष्टिसे उसके परोंकी आकृति, उसकी टांगकी लम्बाई, उसकी चोंचका तर्ज, और इन सब चीजोंका उसकी आदतों, उसके रहनेके स्थान, उसके भोजन इत्यादिके साथ सम्बन्ध और उपयुक्तता आदिपर विचार कर सकते हैं। इस प्रकार शुद्ध दिमागी नतीजोंका एक पूरा सिलसिला हमारे पास तैयार होसकता है, जिसमें उस पक्षीके उस दुनियाके साथ हर तरहके सम्बंध बयान किये जावेंगे जिसमें कि वह रहता है। यही आजकलकी "साइन्स" का खास मैदान है। किन्तु इससे भी आगे बढ़कर हम इस बातपर विचार कर सकते हैं कि हमारी अपनी भावनाओंके साथ और हमारे धार्मिक भावोंके साथ पक्षीका क्या सम्बंध है और इसी दृष्टिसे पक्षीको देख सकते हैं। मुमकिन है कि पक्षीको देखकर एक मनुष्यके हृदयमें उसके सौंदर्य्यकी प्रशंसा और

उसके लिये दया और सहानुभूति पैदा हो; और दूसरेको यह सोचकर आश्चर्य होता हो कि मैं पक्षीको मार सकता हूं वा नहीं अथवा पक्षीका मांस खानेके लिये अच्छा होगा वा नहीं। "आजकलकी साइन्स"का इस बातसे कोई तआल्लुक नहीं कि ये तीसरी श्रेणीके सम्बंध हमारे पक्षीके साथ कैसे होने चाहिये वा कैसे नहीं होने चाहिये ; न वह पहली श्रेणीके सम्बंधोंसे अधिक वास्ता रखती है; किन्तु वह केवल बीचकी यानी दूसरी श्रेणीके सम्बंधोंको लेकर अर्थात् शुद्ध मानसिक सम्बंधोंको लेकर उन्हें दूसरे तमाम सम्बंधोंसे अलग कर लेना चाहती है, और पक्षीका अथवा वह जो कुछ भी चीज हो उसका केवल इस एक (यानी दिमागी) पहलूसे अध्ययन करना चाहती है। किन्तु सवाल यह है कि क्या असलीयतमें ऐसा होसकता है? क्या इन तीनों पहलुओंको एक दूसरेसे अलग किया जासकता है? निस्सन्देह इस प्रश्नका जवाब है— "नहीं किया जासकता।"

मोटे तौरपर अपना मतलब समझानेके लिये और यह दिखानेके लिये कि मैं इस बातको असम्भव क्यों कहता हूं मिसालके तौरपर मैं उन करोड़ों जीवित अणुओं (Cells) मेंसे एक अणुको लेता हूं जिनसे कि मनुष्यका शरीर बना हुआ है। फर्ज कीजिये कि यह छोटासा अणु इसी तरह अपने तईं मनुष्य-शरीरसे एक पृथक चीज मानता हुआ शरीरके बाकी तमाम अणुओंके और सम्पूर्ण शरीरके 'नियमों' की व्याख्या करनेका हौसला करे। जाहिर है कि वह छोटासा अणु, जो शरीरकी धाराओंके साथ बहता रहता है और उसकी समय समयकी भावनाओंसे प्रभावित होता रहता है, जो शरीरके कुछ अङ्गोंसे बिलकुल मिला हुआ और नजदीक रहता है और कुछ अङ्गोंसे अत्यन्त दूर रहता है, किसी तरह भी इस तरहके विषयमें किसी पक्षपातशून्य निर्णयतक पहुंचनेका

दावा नहीं कर सकता। जाहिर है कि एक तो इस समस्या-को हल करनेके तमाम सूत्र उसे नहीं मिल सकेंगे और दूसरे जो थोड़ेसे सूत्र उसे मिलेंगे भी उनका भी ठीक ठीक मतलब निकालते समय उसकी अपनी छोटी छोटी जरूरतें और उसके अपने क्षुद्र तजरबे उसके अन्दर भयंकर पक्षपात पैदा कर देंगे। तथापि "प्रकृति" के महान् शरीरमें मनुष्य स्वयं इसी छोटेसे अणुके समान है, अथवा यदि आप चाहें तो उस "समाज" के शरीरमें भी, जिसका कि वह केवल एक अंग है, वह इस छोटेसे अणुसे अधिक हैसियत नहीं रखता।

तथापि मुझे मालूम होता है कि एक तरीका ऐसा है, जिससे मनुष्यके शरीरके अन्दरका वह अणु मुमकिन है कि समस्त शरीरको पूरी तरह समझने लगे; और वह तरीका आन्तरिक अनुभवका तरीका है, न कि कोरी दिमागी दलीलों-का। हम इस बातका अनुमान कर सकते हैं कि शरीरके अन्दर कोई एक अणु ऐसा हो जो मज्जातन्तुओं इत्यादिके जरिये दूसरे हर एक अणुके साथ एक असली सम्पर्क और सच्ची सहानुभूतिका सम्बंध रखता हो। तब निस्सन्देह जो समस्या हमने ऊपर बयान की है उसके हल करनेकी समस्त सामग्री इस अणुके कब्जेमें होगी, शरीरके बाकी अङ्गोंमें यदि कहीं कोई भी तब्दीली होगी तो वह तब्दीली इस खास अणुके अन्दर अपने तईं अवश्य अंकित कर देगी यानी अपना अक्स उसके अंदर छोड़ देगी; और (यदि उस अणुके कोई दिमाग भी है तो) उसके छोटेसे दिमागमें, बगैर किसी किस्मकी जबरदस्त कोशिश करनेके केवल सहानुभूतिद्वारा ही समस्त शरीरकी रचनाका चित्र खिंच जावेगा—वास्तवमें उसका दिमाग समस्त शरीरके लिये एक आईना बन जावेगा। शायद मेरी इस मिसालसे ही आपको वह कुंजी मिल जावे जिससे आप यह जान सकें कि मैं सच्चो "साइन्स" किसे समझता हूं।

किन्तु इस विषयकी ओर अधिक बढ़नेसे पहले मैं थोड़ेसे और विस्तारके साथ "साइन्स" की शुद्ध मानसिक दृष्टिकी भ्रान्तिको दिखला देना चाहता हूं। मैं दो बातें कहता हूं। पहली बात मैं यह कहता हूं कि "कुदरत" के अंदर किसी भी पदार्थ वा किसी भी क्रियाके समस्त गुणों और पहलुओंको शब्दोंद्वारा जाहिर कर सकना नामुमकिन है, दूसरा कथन मेरा यह है कि पदार्थों वा क्रियाओंके इस प्रकारके जो सार वृत्तान्त हम घड़ भी लेते हैं वे स्वभावसे ही और अनिवार्य तौरपर उस अंतर्गत भावमें रंगे होते हैं जिस भावके साथ कि हम "कुदरत" के उस खास पदार्थ वा उस खास क्रियाको समझना चाहते हैं।

पहली बात पहले लीजिये। आप पूछते हैं कि किसी भी पदार्थका सर्वाङ्गपूर्ण सार वृत्तान्त असम्भव क्यों है? आप कहते हैं कि यदि एक घड़ीको वा किसी भी दूसरी मशीनको हम पूरी तरह शब्दोंद्वारा बयान कर सकते हैं और उसकी निर्दोष व्याख्या कर सकते हैं; तो हम (थोड़ेसे और ज्ञानके साथ) एक देवदारके वृक्ष, वा मनुष्यकी आंख, अथवा इस सम्पूर्ण सौर जगत्को भी उसी प्रकार पूरी तरह बयान क्यों न कर सकेंगे?

अब हम उस बातपर आगए जिसे "साइन्स" की "मशीन-दृष्टि" अथवा "यंत्र-दृष्टि" कहा जासकता है। यह एक विचित्र बात है (फिर भी मेरा खयाल है कि हम शीघ्र देख लेंगे कि ऐसा होना बिल्कुल स्वाभाविक था) कि पिछले करीब एक सौ वर्षके अन्दर, जिस समयके अन्दर कि हमारी रोजमर्राकी जिन्दगी और हमारी सामाजिक जिन्दगीमें "मशीनों" और कलोंने इतना जबरदस्त हिस्सा लेना शुरू कर दिया है, "साइन्स" और "विश्व" के सम्बन्धमें हमारी तमाम कल्पनाएं कल-पुर्जोंके विचारोंसे रंग गई हैं। "आजकलकी साइन्स" का यह एक तर-

हका आदर्श है (यद्यपि समय समयपर इस आदर्शको साक्षात् करना "साइन्स" को कठिन मालूम होने लगता है) कि हर चीज और हर बातको कल-पुर्जोंका काम माना जावे और "कुद-रत" के हर कामको उसी तरह समझा और समझाया जावे जिस तरह एक "मशीन" के चलनेको समझा और समझाया जाता है। किन्तु इस विचार और इस आदर्शमें एक पूरी भ्रान्ति भरी हुई है। क्योंकि ज्यों ही आप इसपर विचार करने लगेंगे आपको मालूम होगा कि "कुदरत" का कोई हिस्सा भी वास्त-वमें किसी मशीनसे मिलता-जुलतातक नहीं है।

मामूली अर्थोंमें 'मशीन' किसे कहते हैं? मशीन कुछ ऐसे हिस्सोंको इस तरह मिलाकर रख देनेका नाम है जिससे उनके द्वारा कोई खास खास काम किये जासकें, किन्तु उनके अलावा और कोई काम नहीं। सीनेकी मशीन सीनेका काम करती है, घड़ी समय दिखानेका काम करती है, और ये दोनों इन दोनों कामोंके सिवा और कोई काम नहीं करतीं। इन मशीनोंके सब हिस्से मिलकर उन्हीं कामोंको पूरा करते हैं, और इन माइनोंमें ठीक जहांतक कि उनके मशीन-सम्बन्धी कार्य्योंका तआल्लुक है मशीनोंकी विद्या जाननेवाले एक हजार मिस्तरी भी इन मशीनोंको पूरी तरहसे और एक ही तरहसे बयान कर सकते हैं। किन्तु मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि "कुदरत" में कोई भी चीज ऐसी नहीं है जो केवल एक कार्य वा एक ही तरहके कार्य करती हो और दूसरे अथवा दूसरी तरहके कार्य न करती हो। इसके विपरीत कुदरतका हर पदार्थ अनन्त प्रकारके कार्य सम्पादन करता है।

मिसालके तौरपर 'मनुष्यकी आंख' को लीजिये। और मैंने जानकर यह एक ऐसी मिसाल ली है जो मेरे दावेके सबसे अधिक खिलाफ है,क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं कि 'मनुष्यकी आंख' सृष्टिके उन खास खास पदार्थोंमेंसे एक खास पदार्थ है

जिससे कि एक खास ही तरहका काम लिया जाता है। आपको मालूम है, कहा जाता है कि आंखके विषयमें सुविख्यात वैज्ञानिक हेल्महौट्जने यह कहा था कि—"यदि कोई आंखका कारीगर मेरे पास इस तरहका दोषपूर्ण औजार बनाकर भेजता (जैसीकि इन्सानकी कुदरती आंख है) तो मैं उसे धन्यवाद-सहित वापस कर देता।" हेल्महौट्ज एक बड़ा आदमी था और मैं हरगिज उसके साथ यह अन्याय न करूंगा कि यह समझूं कि उसने जो कुछ कहा उसका मतलब वह न समझता था। वह जानता था कि रोशनीकी किरणोंको फोकस करनेकी एक मशीनकी हैसियतसे आंख निस्सन्देह दोषपूर्ण है, किन्तु निस्सन्देह वह इस बातको भी खासी अच्छी तरह जानता था कि आंख इस दृष्टिसे क्यों दोषपूर्ण है—कारण यह है कि आंख हरगिज केवल एक रोशनीकी किरणोंको फोकस करनेका यंत्रमात्र ही नहीं है बल्कि इससे एक बहुत बढ़कर चीज है।

वास्तवमें आंख न केवल दूरबीन इत्यादिकी तरह रोशनीकी किरणोंको फोकस करने अर्थात् उन्हें इकट्ठा करनेका काम ही करती है, बल्कि आंखकी तुलना एक दूसरे औजार, यानी फोटो लेनेके कैमेराके साथ भी की जासकती है, जिसके समान वह बाहरी दुनियाको एक तसवीर बनाकर उसे अपने पीछेकी ओर 'रैटिना' नामक एक नाज़ुक पटल अथवा प्लेटके ऊपर फेंक देती है। किन्तु कैमेरा नामक किसी 'मशीन' के भी आंख बिल्कुल समान नहीं है, क्योंकि दोनोंमें एक भेद यह है कि आंखको कभी भी किसी मानवी वा किसी ईश्वरीय कारीगरने किसी एक खास गरजके लिये नहीं बनाया था। बल्कि इसके बरअक्स हम जानते हैं कि मनुष्यकी आंख धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते और विकसित होते होते युगोंमें जाकर इस रूपको पहुंची है। उन अत्यन्त छोटेसे छोटे जन्तुओंसे लेकर जिनमें पहले-

पहल देखनेकी शक्ति पैदा हुई और जिनसे आंखका एक धुंधला प्रारम्भ हुआ, लगातार रूपान्तर होते होते भिन्न भिन्न दिशाओं-में छोटी छोटी वृद्धियोंद्वारा नित्य नया रूप धारण करते करते, करोड़ों जन्तुओंकी करोड़ों ही आवश्यकताओंके अनुसार, जिनमेंसे कोई पानीमें रहते थे और कोई हवामें उड़ते थे, किसीको नजदीककी चीजें देखनी होती थीं और किसीको बहुत बहुत दूरकी, किसीको एक प्रकारकी रोशनीमेंसे देखना होता था किसीको दूसरे प्रकारकी, इत्यादि, बदलते बदलते और बढ़ते बढ़ते सदियों, बल्कि हजारों और हजारों सदियोंमें जाकर हमारी आजकलकी आंख तैयार हुई है। नतीजा यह कि आज-दिन आंखके अन्दर न केवल असंख्य परम्पराप्राप्त किन्तु दबी हुई शक्तियां ही मौजूद हैं वरन् आंखकी पेचीदा बनावट हकी-कतमें उसके तमाम असाधारण इतिहासका खुलासा और एक अंशमें उसका आलेख्य है।

इस आखिरी बातकी एक मिसालके तौरपर मैं आपको याद दिला देना चाहता हूं कि बिल्कुल शुरूमें 'देखनेकी शक्ति' 'छूनेकी शक्ति' का केवल एक रूपान्तर थी। प्रारम्भिक जन्तु-ओंके सीधे-सादे गोलमटोल शरीरोंकी नाजुक आम सतहपर जो रोशनी पड़ती थी और दूसरी चीजोंके जो साये उसपर पड़ते थे वे उस शरीरमें एक बाहरी स्पर्शके समान विकार और स्पर्शकासा ही अनुभव पैदा करते थे। धीरे धीरे समय बीतने-पर और हजारों नसलों बाद उस जन्तुके अंग-प्रत्यंगोंके अधि-काधिक विकसित होनेपर यह अनुभव—यानी रोशनी और सायेका अनुभव—जिस्मकी खालके एक खास हिस्सेमें ही पैदा होने लगा और उसने जिसे हम 'देखना' वा 'दृष्टि' कहते हैं उसका रूप धारण किया। आजदिन भी 'मनुष्यकी आंख' के अगले हिस्सेमें बाहरकी चीजोंकी जो छोटी छोटी तसवीरें बनती हैं वे जिस 'रेटिना' नामक पीछेके परदेके ऊपर जाकर

पड़ती हैं वह परदा मानो आँखके मज्जातन्तुकी उंगलियोंके उन असंख्य एक दूसरेसे मिले हुए सिरोंका बना हुआ है जिन्हें "रौड्स और कोन्स" कहते हैं, जिन्होंने तमाम रैटिनाको एक घनी चित्रकारीकी तरह छा रखा है और जो नाजुक सिरोंसे बाहरी दुनियाकी चीजोंकी तसवीरोंको छूकर महसूस करते हैं। और इस प्रकार 'देखनेकी कूबत' अब भी असलीयतमें 'छूनेकी कूबत' ही है—यह वह कूबत है जिससे प्राणी दूरकी चीजको छूता और महसूस करता है—वास्तवमें चीजोंको देखते समय कभी कभी मनुष्य इस बातको अनुभव भी करने लगताहै।

किन्तु अभी इन सब बातोंसे बढ़कर, रोशनीकी किरणोंको अपने अन्दर इकट्ठा करने और उनके द्वारा चीजोंके फोटो खींचनेके अलावा, असंख्य प्राणियोंकी आवश्यकताओंके अनुसार हजारों सदियोंके अन्दर अपनेको ढालते रहनेके दबे हुए चिन्हों और युगोंके विकासके इतिहासका सार अपने अन्दर गुप्त रखनेके अलावा, 'मनुष्यकी आंख' के अन्दर ऐसी ऐसी शक्तियां मौजूद हैं जो शायद इनसे भी कहीं अधिक दूरतक पहुंचनेवाली और कहीं अधिक अद्भुत हैं। आंख मनुष्यके हृदयके भावोंको 'प्रगट करने' का एक अद्भुत यंत्र है। पुतलीको कभी फैलाकर और कभी सिकोड़कर, भीतरके शीशे (लैन्स) और ढेले इन दोनोंके उभरेपनको अनेक आकृतियां देकर और सैकड़ों दूसरे तरीकोंसे किसी न किसी तरह आंख 'आदेश', 'नियंत्रण', 'शक्ति', 'दया', 'प्रेम', 'सहानुभूति' और उन लाखों अन्य भावनाओंकी सूचना दूसरे मनुष्योंतक पहुंचा देती है जो भावनाएं कि मनुष्यके हृदयमें क्षण क्षणपर पैदा होती रहती हैं, जिनका कि कोई अन्त नहीं और जो मिलकर मानों ऐसे सम्पूर्ण ज्ञान-कोष अथवा एक ज्ञान-सागर हैं। आंखके अन्दर जो यह बोलनेकी अर्थात् भावोंको प्रकट करनेकी शक्ति है उसके बिना आंखका अनुमान करना भी कठिन है। अब यह

पता लगानेकी जरूरत नहीं है कि इनके अलावा भी आंख-द्वारा और क्या क्या कार्य होते वा होसकते होंगे। यद्यपि आंखका कार्य बिलकुल एक खास और सबसे अलग कार्य है तथापि यह अब काफी साफ तौरपर जाहिर होचुका कि आंख-को रोशनीकी किरणोंको जमा (फोकस) करनेकी एक मशीन कहना एक वैसी ही भयंकर और हास्यजनक अधूरी बात कहना है, जैसाकि मनुष्यके 'हृदय' को (जोकि भावनाओं-का और जीवनका असली केन्द्र और इन्सानी प्रेम तथा वीरताका प्रतिरूप है) एक मामूली (खून फेंकनेका) पम्प कहना।

"प्रकृति" अनन्त है, और किसी एक नुकतेपर भी मनुष्य-का छोटासा दिमाग उसका घेरा नहीं डाल सकता। यह भी स्पष्ट है कि "प्रकृति"के किसी एक छोटेसे हिस्सेको लेकर उसे बाकी प्रकृतिसे अलग करके फिर उसकी पूरी तरह व्याख्या करनेके भी कोई माइने नहीं होते, गोया वह हिस्सा वास्तवमें बाकी प्रकृतिसे अलग हो। जैसा मैं ऊपर कह आया हूं एक हजार मिस्तरी भी एक मशीनको एक ही तरहपर बयान करेंगे, क्योंकि वास्तवमें वे सब इस बातपर सहमत हैं कि उस मशीनको केवल उसके एक खास कार्यकी दृष्टिसे ही देखा जावे; किन्तु यदि आप एक हजार आदमियोंसे एक ही चेहरेको बयान करनेके लिये कहें—अथवा और भी अच्छा हो, यदि आप एक हजार खूब होशियार हाथकी तसवीरें खींचनेवालोंसे एक ही चेहरेकी तसवीर खींचनेके लिये कहें—तो आप अच्छी तरह जानते हैं कि समस्त तसवीरें एक दूसरेसे भिन्न होंगी। और क्यों भिन्न होंगी? केवल इसलिये क्योंकि हर एक चेहरेके, चाहे वह कितना भी अनघड़ क्यों न हो, अनन्त रुख और अनन्त पहलू होते हैं, और हर एक चित्रकार अपने ही दृष्टि-केन्द्रके अनुसार किसी एक पहलूको अपनी

तसवीरके लिये छांट लेता है। ठीक यही बात "प्रकृति" के हर पदार्थ और हर क्रियाके विषयमें कही जासकती है।

आप पूछ सकते हैं कि अगर ये सब बातें सच हैं तो यह कैसे होजाता है कि वैज्ञानिक लोग स्पष्ट और निश्चित नतीजों-पर पहुंच जाते हैं और बहुत दर्जेतक अनेक बातोंमें एक दूसरे-के साथ सहमत भी होते हैं ?

साफ जाहिर है कि यह बात पृथकताके तरीकेपर चलकर सम्भव होसकती है; यानी जो समस्या सामने होती है उसके कुछ पहलुओंको छांटकर बाकी तमाम पहलुओंकी ओरसे आंख बन्द करलेनेके तरीकेपर चलकर यह होसकता है। क्योंकि कुदरतकी किसी भी घटनाके समस्त सम्बन्ध यानी उसके समस्त पहलू किसी तरह भी इन्सानी खयालके दायरेमें नहीं आसकते, इसलिये केवल एक यही तरीका होसकता है कि कुछ पहलुओंको छोड़कर बाकीके ऊपर खयालको एकाग्र किया जावे; और जब चुपचाप इस बातपर भी एक तरहका एकमत है कि अमुक अमुक पहलुओंको छोड़कर केवल अमुक अमुक पहलुओं-पर ही खयाल किया जावेगा तो स्वभावतः सबके विचारोंके नतीजे भी एकहीसे निकलते हैं। इस तरीकेपर समस्याके और सब पहलुओंको जान-बूझकर नजरअन्दाज करके ही 'आंख'को रोशनी फोकस करनेका एक औजार कहा जासकता है और उसी तरह उसको बयान किया जासकता है और उसकी परिभाषा की जासकती है, 'हृदय'को एक मामूली 'पम्प'कहा जासकता है, और इस विशाल 'सौर जगत्' को कुछ ऐसे यंत्र विज्ञान-सम्बन्धी थोड़ेसे नियमोंका एक सुथरा उदाहरण बताया जा सकता है जिनका गैलिलिओ और न्यूटनने पता लगा लिया है।

'सौर जगत्' और 'ज्योतिष-विज्ञान'के विषयपर मैं कुछ शब्द और कहूंगा, क्योंकि ज्योतिष-विज्ञानको 'आजकलकी साइन्स' की निर्भ्रान्तताकी एक बहुत बड़ी मिसाल बताया जाता है

और ज्योतिषका विषय फिर एक ऐसा विषय है जो जाहिरा तौरपर मेरे दावेके सबसे अधिक विरुद्ध जाता है। जिन नियमों-के जरियेसे न्यूटनने ग्रहों यानी सय्यारोंको चालोंके रास्ते निश्चित किये और उन रास्तोंकी शकलें कायम कीं वे बादकी नसलोंके लिये एक बड़े अचम्भेकी बात होगये; पहलेसे ही अब सय्यारोंकी अलग अलग जगह बताई जासकती है और हिसाब लगाकर आश्चर्यजनक सचाईके साथ ग्रहणोंकी पेशीन-गोई की जासकती है। तथापि 'गणित' का प्रत्येक छोटेसे छोटा विद्यार्थी इस बातको जानता है कि जिन मसावातके जरियेसे ये नतीजे निकाले जाते हैं वे मसावात केवल उस तरीकेसे ही हल होसकती हैं जिसे "छोटी छोटी रकमोंके छोड़ देने"का तरीका कहते हैं; यानी इन समस्याओंको कतई तौरपर हल नहीं किया जासकता, किन्तु कुछ ऐसी रकमों और बातों-को नजरअन्दाज करके, जो महत्वकी मालूम नहीं होतीं, एक तरहके करीब करीब हल करनेतक पहुंचा जासकता है। और स्वभावतः इस बातके समझानेमें बहुत अधिक जोर दिया जाता है कि इन छोटी छोटी रकमोंको बिना किसी आपत्तिके छोड़ दिया जासकता है। मिसालके तौरपर सूर्यके चारों ओर ग्रहोंके मार्गों और जमीनके चारों ओर चाँदके मार्गके विषयमें बहुत समयतक यह बात बिलकुल प्रमाणित मानी जाती रही कि इनमेंसे प्रत्येक मार्ग अंडाकार है और हर मार्गकी शकल तथा उसकी जगहमें जो छोटी छोटी तब्दीलियां होती रहती हैं उन तब्दीलियोंके कारण उन मार्गोंकी लम्बाईमें कभी भी कोई स्थाई कमी वा ज्यादती न होगी—अर्थात् यह कि सूर्यसे सय्यारोंके और पृथ्वीसे चाँदके औसत फासले सदा खास हदों के अन्दर रहेंगे। किन्तु हालहीमें प्रोफेसर ज्याई डार्विनने चाँदके हिसाबमें इन बेचारी छोटी छोटी तिरस्कृत रकमोंमेंसे एक रकमको लेकर हिसाब लगाया कि आखिरकार उसके

कारण पृथ्वीसे चाँदके औसत फासलेमें बड़ी जबरदस्त और स्थाई तब्दीली होजाती है; यद्यपि निस्सन्देह वह तब्दीली बहुत ही धीरे धीरे होगी; नतीजा यह हुआ कि अब यह बात मुमकिन मालूम होती है कि 'चाँद' का असली मार्ग बजाय परिमित और अंडेकी शकलका होनेके एक ऐसा पेचकी तरह घूमता हुआ (Spiral) मार्ग है जो धीरे धीरे किन्तु लगातार बड़ा होता जाता है, और जिसके कारण किसी दिन चाँद जमीनसे बहुत ही अधिक दूर निकल जावेगा। यदि बीस साल पहलेसे किसी ग्रहणकी पेशीनगोई करनी हो तो, चाहे अण्डाकार मार्गके सिद्धान्तके अनुसार हिसाब लगाया जावे और चाहे घूमते हुए और लगातार बढ़ते हुए मार्गके सिद्धान्तके अनुसार, फरक इतना कम होगा कि शायद दोनोंमें कुछ भी फरक मालूम न होसके; किन्तु सौ सदियोंतकका हिसाब लगानेमें इन दोनों सिद्धान्तोंसे बिल्कुल ही भिन्न भिन्न नतीजे निकलेंगे।

इस प्रकार 'ज्योतिष-विज्ञान' की फर्जी निर्भ्रान्तताका मुख्य कारण यह है कि 'आकाश'के युगोंके मुकाबलेमें हमारे 'समय' अत्यन्त छोटे छोटे हैं। 'आकाश'की तब्दीलियोंका हिसाब लगानेके लिये हजारों वर्षोंसे बल्कि शायद करोड़ों वर्षोंसे हिसाब करना चाहिये, किन्तु हम ज्योतिषकी समस्याके इस जबरदस्त पहलूको नजरअन्दाज करके एक थोड़ेसे कालतक अपने मशाहदोंको परिमित रखते हैं और अपने नतीजोंसे बिल्कुल सन्तुष्ट होजाते हैं!

अपना मतलब और साफ कर देनेके लिये दूसरी मिसाल मैं उन तारोंकी लेता हूं जिन्हें 'अचल तारे' कहा जाता है (जैसे ध्रुवतारा)। पिछले दो हजार वा तीन हजार वर्षसे जबसे कि विविध नक्षत्र-समूहोंकी शकलों आदिका हमारे पास कोई भी लेख मौजूद है, इन तारोंके समूह और गुच्छे, जिन्हें हम आंखसे अच्छी तरह पहचानते हैं, जाहिरा एक दूसरेके सम्बन्धसे एक

ही अथवा करीब करीब एक ही जगहपर कायम रहे हैं; किन्तु अब बारीक दूरबीनों और अन्य औजारोंसे ध्यानपूर्वक देखनेपर मालूम हुआ है कि ये तारे भी चल रहे हैं और बराबर एक दूसरेसे भिन्न भिन्न दिशाओंमें बड़ी तेजीके साथ मीलों फी सैकण्ड (अर्थात् लाखों मील रोजाना)के हिसाबसे चलते रहे हैं। तथापि इनके बीच बीचके फासले इतने जबरदस्त हैं और उनकी काल-अवधियां इतनी बड़ी बड़ी हैं कि इन तमाम हजारों वर्षों-के अन्दर भी एक दूसरेकी ओर उनके रुखोंमें कोई बड़ी तब्दीली वाके होने नहीं पाई! फर्ज कीजिये, यदि कोई जहीन विदेशी क्रीकेट (गेंद-बल्ले) के खेलको जाननेके लिये इंगलैण्ड आवे और एक चौथाई मिनटतक क्रीकेटके मैदानमें रहकर, जिस समयके अन्दर कि दोनों खिलाड़ियोंने शायद अपनी अपनी जगह भी न बदली हो, कुछ बातें लिखकर चला जावे और उन्हींके आधारपर इस खेलके नियमोंपर एक किताब लिख डाले तो आप उसे क्या समझेंगे? ऐसे ही हम उस छोटेसे बेचारे "इन्सान" को क्या समझें जिसे थोड़ीसी सदियोंतक तारोंको देखकर इस बातका पक्का यकीन होगया कि वह उनकी चालों-को समझता है और "आकाशके तमाम नियमों" आदिका पण्डित है।

इस सबसे मालूम होजावेगा कि "प्रकृति"की प्रत्येक समस्या इतनी बेअन्त पेचीदा है कि मनुष्य किसी भी समस्या-को केवल एक उसी तरीकेपर हल कर सकता है जिसे हम "अज्ञानका तरीका" कह आये हैं। अब हम "साइन्स"के एक अमली विषय जैसे 'चेचकके टीके'की मिसाल लेते हैं। सीधा-सादा सवाल इस विषयमें यह मालूम होता है कि अया बछड़े-के लिम्फ अथवा मनुष्यके लिम्फके साथ टीका लगानेसे चेचक रुक जाती है अथवा कम होजाती है वा नहीं; और यदि रुक जाती है वा कम होजाती है तो टीका लगानेसे कमसे कम

उतनी ही जबरदस्त कोई दूसरी बुराइयां तो पैदा नहीं होजातीं? पहलेपहल यह सवाल आपको एक बड़ा सीधा और आसान सवाल मालूम होता होगा; लेकिन ज्यों ही आप उसपर सोचना शुरू करेंगे आपको मालूम होगा कि वह बेहद पेचीदा है। पहली बात तो यह जाहिर है कि इस तरहके मामलोंमें इक्का-दुक्का व्यक्तियोंके हालातसे कुछ नतीजा नहीं निकल सकता। यानी इस बातसे कि जैदके टीका लगाया गया था और उसे चेचक नहीं निकली कुछ साबित नहीं होता, क्योंकि यह किसी बातसे जाहिर नहीं होता कि यदि जैदके टीका न लगता तो उसके चेचक निकलती। और जब आप सैकड़ों और हजारों मनुष्योंके टीका लगा डालें तब भी आपको पूरा यकीन नहीं होसकता; क्योंकि मुमकिन है ये लोग किसी ऐसी खास जमाअतके हों, वा किसी ऐसी ख़ास जगह रहते हों, वा उनकी ऐसी खास तरहकी आदतें हों, वा उनकी इस तरहकी जिन्दगी हो कि जिसके कारण दूसरोंकी निस्बत उन्हें चेचक कम होती हो;और इससे पूर्व कि हम किसी निश्चित नतीजेको पहुंच सकें हमें इन सब कारणोंकी अलग अलग खोज कर उन्हें निकालकर अलग कर देना होगा। इस तरह जबतक कि एक अधिकांश आबादीके टीका न लगाया जावे तबतक हम अपनी समस्याको हल करनेके लिये विश्वसनीय संख्याओं और कैफियतके मिलनेकी आशा नहीं कर सकते। किन्तु इतने बड़े पैमानेपर इस तरहके कामको करनेमें अनेक वर्षोंका लग जाना जरूरी है; और इसी दरमियान लोगोंकी आदतें बदलती रहती हैं, "स्वास्थ्य-रक्षा"के लिहाजसे मकानों आदिकी हालतों और सूरतोंमें तरक्की होती रहती है, "खाने-पीने"के रिवाज बदल जाते हैं; और (जैसा महामारियों वा वबाओंके इतिहासमें अनेक बार हुआ करता है) मुमकिन है कि रोग अपनी मियाद पूरी करके खुद बखुद कम होने लगा हो। इस प्रकार रोगके कम होजानेके सम्भव कारणोंका एक

और पूरा पूरा सिलसिला सामने आजाता है जिस सबपर हमें विचार करना होगा।

फिर फर्ज कर लीजिये कि बावजूद इन सब कठिनाइयोंके यहांतक भी मामला टीका लगानेके पक्षमें ही तै होगया; किन्तु इससे पूर्व कि हम किसी अन्तिम नतीजेतक पहुंच सकें एक और पूरा सिलसिला कठिनाइयोंका हमारे सामने आता है, वह यह कि इस कार्यसे और दूसरी बीमारियोंके फैलनेकी कहांतक सम्भावना है और वे बीमारियां किस हदतक फैल सकती हैं। सवालोंका यह सिलसिला करीब करीब उतना ही पेचीदा है जितना कि दूसरा सिलसिला था; और इसमें अनिश्चितताका एक बहुत बड़ा अंश यह आजाता है कि नहीं मालूम किसी नये रोगके टीकेद्वारा शरीरमें प्रवेश होजाने और उस रोगके प्रकट होने,इन दोनोंके बीच कितना समय बीतना चाहिये। क्योंकि यदि कभी कभी टीका लगनेके बाद ही बच्चोंके एक खास किस्मकी खौफनाक जिल्दी बीमारी, यानी सुर्ख बादह (Erysipelas) निकल आती है तो निस्सन्देह यह अनुमान करनेके लिये कुछ गुञ्जाइश जरूर है कि टीका इस बीमारीका कारण है; किन्तु यदि यही बीमारी कुछ सालके बाद प्रकट हो तो यद्यपि उस सूरतमें भी टीकेसे उसका सम्बन्ध असली होसकता है, तथापि उस सम्बन्धको जोड़ सकना असम्भव होगा।

ऐसी सूरतमें हमें यह करीब करीब एक अचम्भा मालूम होता है कि जिन शुरूके दिनोंमें डाक्टर जैनरके * मतका जोर था उन दिनोंके डाक्टरोंको अपने नतीजोंमें इतना अटल विश्वास कैसे होगया था; यह रहस्य तब ही खुलता है जब हम इस

* एडवर्ड जनर (१७४९ से १८२६ तक) वह अंगरेज डाक्टर था जिसने चेचकके टीकेको ईजाद किया, जिसके बदलेमें पार्लिमेण्टने उसे उस समयके हिसाबसे साढ़े चार लाख रुपयेकी जायदाद आदि इनाममें दी थी।—अ०

बातको याद करते हैं कि उन नतीजोंतक पहुंचते समय उन लोगोंने वास्तवमें 'स्वास्थ्य-रक्षा' के तरीकोंकी तब्दीली, 'चेचक' का खुद बखुद कम होजाना, दूसरी बीमारियोंका फैल जाना, इत्यादि उन सब दूसरी बातोंको नजरअन्दाज कर दिया था जिनका मैंने जिक्र किया है; और कुल समस्याके केवल एक छोटेसे पहलूतक अपनी खोजके दायरेको परिमित कर लिया था। किन्तु अब इतना समय बीत जानेके बाद जबकि इस बीच उन तमाम घटनाओं और पहलुओंने जिन्हें उस समय नजरअन्दाज कर दिया गया था। जबरदस्ती हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया तब जाकर पिछले 'रायल कमीशन'! (सन् १८९६) की मालूमातसे जाहिर होता है कि आजकलके वैज्ञानिकोंकी रायने इस टीकेके विषयमें कितना जबरदस्त पलटा खाया है ।

इस सबसे यह न समझ लेना चाहिये कि मैं "साइन्स" का मजाक उड़ाता हूं—यह मेरा इरादा हरगिज नहीं; इसके विपरीत मैं यह समझता हूं कि आजकलकी वैज्ञानिक खोजोंद्वारा हमारा जो उपकार हुआ है उसका अंदाजातक नहीं लगाया जासकता ; किन्तु मैं आपको केवल इस बातसे आगाह कर देना चाहता हूं कि ये तमाम समस्याएं कितनी अधिक पेचीदा हैं, और यह खयाल कि इनमेंसे किसी एकको भी एक बने-बनाये तैयार दिमागी नियमद्वारा हल किया जासकता है, कितना गलत है।

किन्तु आप पूछेंगे कि लोगोंके भावों और उनकी भावनाओं-का उनके वैज्ञानिक नतीजोंपर कैसा प्रभाव पड़ जाता है? क्योंकि जो दो बातें मैंने कुछ देर पहले कही थीं उनमेंसे दूसरी बात यह है। इसका जवाब है—बहुत सीधी तरहसे, यानी इस तरह कि मनुष्यके भाव ही इस बातका निर्णय कराते हैं कि मनुष्य किसी उपस्थित समस्याके किन किन पहलुओंको

नजरअन्दाज करेगा और किन किनकी ओर ध्यान देगा; वास्तवमें भावोंद्वारा ही लोगोंके दृष्टि-केन्द्र अर्थात् उनके नुक्तए-खयाल कायम होते हैं। उस मिसालको लीजिये,जिसमें अनेक चित्रकारोंसे एक ही चेहरेको चित्रित करनेके लिये कहा गया था; ठीक जिस तरह प्रत्येक चित्रकार अपने भाव, अपनी सहानुभूति, अपनी रुचि और अपने साधारण स्वभावके अनुसार उस चेहरेके अंदरसे कुछ बातोंको छांट लेता है और बाकी बातोंको छोड़ देता है, इसी तरह हर नसलके वैज्ञानिकोंका हर दल अपनी रुचि, अपनी सहानुभूति, अपने खब्तों और अपने वहमोंके अनुसार अपने समयकी समस्याओंके खास खास पहलुओंकी ओर ध्यान देता है और बाकीको छोड़ देता है।

"साइन्स"के समस्त इतिहासमें इसकी मिसालें भरी हुई हैं। हम सब इस बातसे परिचित हैं कि जर्मनीके प्रसिद्ध ज्योतिषज्ञ कौपरनिकस (१४७३ से १५४३ तक) और इटलीके विद्वान् गैलिलिओ (१५६४—१६४२, जिसने यूरोपमें पहली दुरबीन बनाई)के समयमें यूरोपियन लोगोंके मजहबी अंधविश्वासों और उनकी हठधर्मीने किस तरह यूरोपके अन्दर ज्योतिष-विद्याकी उन्नतिको रोके रखा। जबतक लोग यह मानते थे कि केवल इस पृथ्वीपर ही हजरत ईसाने जन्म लेकर पापों और दुःखोंसे जीवोंके उद्धारका काण्ड रचा है तबतक, स्वभावतः वे इस पृथ्वीको ही विश्वका केन्द्र मानते थे और जो बातें भी उनके इस विचारका खण्डन करती मालूम होती थीं उनकी ओर देखनेतकसे इनकार कर देते थे। जब गैलिलियोने अपनी नई बनी हुई दूरबीनको वृहस्पति तारेकी ओर लगाया और उसे उपग्रहोंसे घिरा हुआ देखा तो उसे इस घटनाके अन्दर कौपरनिकसकी बताई हुई पद्धति और सूर्यको केन्द्र मानकर उसके चारों ओर ग्रहोंके घूमनेका एक अक्स दिखाई दिया; किन्तु जब उसने दूसरोंसे यह चाहा कि वे भी उसके साथ दूरबीनद्वारा

देखकर उसी नतीजेको स्वीकार करें तो वे न माने। वह अपने समकालीन मित्र जर्मन ज्योतिषज्ञ केप्लरके नाम एक पत्रमें लिखता है—"ऐ, प्रिय मित्र केप्लर, मैं बहुत उत्सुक हूं कि हम दोनों मिलकर एक बार खूब दिल भरकर हँस सकें। यहां पैडुआ (इटलीका एक प्रसिद्ध नगर और विद्या-केन्द्र) में दर्शन-शास्त्रके एक मुख्य प्रोफेसर हैं, मैंने उनसे अनेक बार और बहुत जोर देकर यह प्रार्थना की कि वे मेरी दूरबीनमेंको चाँद और ग्रहोंकी ओर देखें; किन्तु वे पूरी हठधर्मीके साथ देखनेतकसे इनकार करते हैं। इस शानदार हिमाकतपर हम कितने जोरोंके साथ कहकहा मारकर हँसते!"

और यद्यपि हम अपनेसे पहलेके लोगोंकी हिमाकतपर हँसते हैं तथापि आजदिन वे ही बातें हम खुद करते हैं। मसलन् "सम्पत्ति-शास्त्र" (Political Economy) नामकी साइन्सको लीजिये। इस साइन्सके अन्दर करीब करीब वैसी ही जबरदस्त क्रान्ति होचुकी है जैसीकि 'ज्योतिष-विद्या' के अन्दर पृथ्वीको विश्वका केन्द्र माननेके बजाय सूर्यको केन्द्र मानने लगनेमें हुई थी। पिछले सौ सालका समय खास तौरपर तिजारती युग था, इस समयके अन्दर सामाजिक विज्ञानके मुख्य मुख्य विद्वान् भी अपने समयके भावों और समयकी हवासे भरे हुए थे, इसलिये ये लोग खुशीसे वैयक्तिक सम्पत्तिके संग्रहको ही मनुष्य-जीवनकी सबसे प्रधान प्रेरक शक्ति मानते रहे; नतीजा यह हुआ कि ऐडम स्मिथ (१७२३-१७९०, आजकलके यूरोपियन सम्पत्ति-शास्त्रका जन्मदाता अंगरेज) से लेकर जौन स्टुआर्ट मिल (१८०६-१८७३, प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान्) तक सम्पत्ति-शास्त्रके तमाम विद्वानोंने अपनी वैज्ञानिक छानबीनकी बुनियाद 'स्वार्थ-परता' और 'मुकाबले' पर रखी और इन्हीं दोनों आधारोंपर अपने विज्ञानको कायम किया। आजदिन इस विज्ञानके नये विद्वानोंका एक नया सिलसिला सामने आया, जिनके दिमाग

"सम्मिलित सामाजिक जीवन" और "परस्पर सहायता" की महान् सचाइयोंसे भरे हुए हैं, इसलिये इन विद्वानोंने पता लगाया कि "मनुष्य-समाज" मुख्यकर इन्हीं दोनों असूलोंका एक उदाहरण है, और इन लोगोंने 'सम्पत्ति-शास्त्र' को बिल्कुल एक नया रूप और नया पहलू प्रदान किया। कारण यह नहीं है कि इस समयके अन्दर "मनुष्य-समाज" का रूप इतना अधिक बदल गया हो, बल्कि कारण यह है कि "सामाजिक जीवन" के अध्ययन करनेवालोंका दृष्टि-केन्द्र इतना बदल गया है कि उसके कारण वे उपस्थित समस्याके बिल्कुल एक दूसरे ही पहलू और दूसरी ही तरहकी घटनाओंकी ओर ध्यान देने लगे हैं।

मैं ऊपर संकेत कर आया हूं कि किस तरह रोजमर्राकी जिन्दगीमें 'मशीनों' के ज्यादह इस्तेमालके कारण संसारके विषयमें भी हमारे विचार बिल्कुल बदल गये हैं। यह एक विचित्र बात है कि पिछले लगभग एक सौ वर्षके मशीनोंके युगमें हम न केवल "मनुष्य-समाज" को ही एक ऐसी मशीन मानने लगे हैं जिसमें अनेक अलग अलग व्यक्ति केवल पैसेके सम्बन्ध वा लेन-देनके नातेसे आपसमें मशीनके पुरजोंकी तरह बंधे हुए हैं, बल्कि वही असूल हम तमाम विश्वके लिये भी काममें लाते हैं; और यह मानने लगे हैं कि यह समस्त विश्व अगणित अलग अलग अणुओंका केवल एक जमघट है जोकि परस्पर आकर्षणके द्वारा वा सम्भवतः एक दूसरेसे केवल सटे हुए होनेके कारण एक साथ कायम हैं। तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये दोनों विचार गलत हैं, क्योंकि जिन व्यक्तियों-से मिलकर "समाज" बना हुआ है वे एक दूसरेसे पृथक नहीं हैं; और इस कल्पनापर तो ध्यान भी नहीं दिया जासकता कि अन्तको छानबीन करते करते यह समस्त विश्व केवल अगणित जुदा जुदा अणुओंका एक समूह रह जाता है।

जब हम "डाकृरी" यानी वैद्यक जैसे एक अमली और अर्वाचीन प्रश्नपर विचार करते हैं तो बहुत आसानीसे दिखाई देजाता है कि जिन भावोंको लेकर किसी विज्ञानका अध्ययन किया जावे उन भावोंका उस विज्ञानकी गतिपर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि यदि "वैद्यक-विद्या" का अध्ययन (जैसाकि शायद आजकल अधिकतर किया जारहा है) "भय" और "भोग" के मिले हुए भावोंको लेकर किया जावे—यानी भय इस बातका कि कहीं अपने वैयक्तिक कुशलमें बाधा न आवे और उसके साथ साथ भोग आदिकी इस तरहकी आदतोंको बनाये रखनेकी एक प्रकारकी चिन्ता जिनके विषयमें हम जानते हैं कि वे स्वास्थ्यके विरुद्ध हैं—यदि वैद्यकका अध्ययन इस घबराहट-भरी और परस्पर विरोधी मानसिक स्थितिके साथ किया जावे, तो जाहिर है कि 'वैद्यक' की गति भी उतनी ही घबराहटकी होगी। इस तरहकी वैद्यकमें अधिकतर ऐसी ऐसी दवाइयां ढूंढ़ी जावेंगी जो बिना हमारी किसी तरहकी कोशिशके हमारी बदचलनियोंके बुरे नतीजोंको कम कर सकें वा ढक सकें; जिस तरह रातको डरावना स्वप्न देखकर मनुष्य चौंक उठता है उसी तरह इस तरहकी वैद्यकको पता चलेगा कि हमारे चारों ओरकी हवामें बीमारियोंके करोड़ों और अरबों आंखसे दिखाई न देनेवाले छोटे छोटे कीड़े भरे हुए हैं; इस तरहकी वैद्यक भयसे कांपती हुई रोगके इन दूतोंका अध्ययन करेगी, और पागलोंकी तरह बेअन्त पिचकारियों, टीकों, जिन्दा जानवरोंकी चीरफाड़ों इत्यादिके जरिये उन्हें दूर रखनेकी कोशिश करेगी।

दूसरी ओर यदि इसी विज्ञानका अध्ययन बिल्कुल दूसरे भावोंको लेकर किया जावे—अर्थात् "स्वास्थ्य" के प्रेम और जीवनको प्यारा, सुन्दर और शुद्ध बनानेकी इच्छाको लेकर; यदि वैद्यकके विद्यार्थीका हृदय न केवल इन्हीं भावोंसे भरा हुआ हो, बल्कि उसे "मनुष्य" की स्वाभाविक भीतरी शक्तिमें,

सृष्टिके अन्दर उसकी सत्तामें, जबरदस्त विश्वास हो, इस बातमें विश्वास हो कि "मनुष्य" न केवल इन तमाम असंख्य छोटे छोटे कीड़ोंकी असंख्य सेनाओंको ही वशमें रख सकता है, बल्कि अपनी संकल्प-शक्तिद्वारा अपने शरीरकी तमाम क्रियाओंको भी काबूमें कर सकता है; यदि ऐसा हो तो जाहिर है कि बिल्कुल एक दूसरे ही प्रकारकी घटनाओंका एक पूरा सिलसिला विद्यार्थीकी आंखोंके सामने खुल जावेगा और ये घटनाएं ही उसके अध्ययनका विषय होंगी—जैसे स्वास्थ्य-रक्षा, शुद्ध जीवन, शुद्ध भोजन, शुद्ध वस्त्र इत्यादिके नियम, आत्मसंयमके तरीके, और शरीरके ऊपर मन और बुद्धिके प्रभुत्वकी तफसील और उसका अभ्यास—ये सब बात बिल-कुल उतनी ही असलीयत रखती हैं, जितनी कि पहली बातें जिनका हमने ऊपर जिकर किया है, उतने ही महत्वकी हैं; और शायद उतनी ही बेअन्त और पेचीदा हैं, किन्तु इनका सिलसिला साइन्सका बिल्कुल एक दूसरा ही और पहलेसे भिन्न सिल-सिला होगा।

सारांश यह कि आप निस्सन्देह समझ गये होंगे कि मैं ऐसे "लफ्ज़ी नियमों" (Formulas) की साइन्समें विश्वास नहीं करता जो इस तरह एक दिमागसे दूसरे दिमागमें डाले जा-सकते हों जिस तरह एक बरतनसे दूसरे बरतनमें पानी डाला जाता है। मैं ऐसी चीजमें विश्वास करता हूं जो "मनुष्य-स्वभाव" और "मनुष्य-जीवन"का अधिक अंगरूप हो—जिसमें पांच "ज्ञानेन्द्रियां", "दिमाग" और "आत्मा", तीनों मिले हुए हों; जिसमें "ज्ञानेन्द्रियों" को अधिकसे अधिक बारीकीके साथ सिधाया जावे और "दिमाग" का ठीकसे ठीक उपयोग किया जावे, और जिसमें "प्रकृति" की ओर "मनुष्य" के हृदयके भाव अत्यन्त विशुद्ध और उदार हों और उन भावोंके इन्द्रियां और दिमाग दोनों पूरी तरह अधीन हों।

अब इस विषयके बिल्कुल अमली पहलुओंको लीजिये। मैं समझता हूं कि "भौतिक विज्ञान" बल्कि "वनस्पति विज्ञान" "पशु-विज्ञान" और "धातु-विज्ञान" इत्यादि, इन सबकी बुनियादमें "कुदरत" का अत्यन्त ध्यानपूर्वक अवलोकन और उसके साथ "मनुष्य" का अमली सम्पर्क होना चाहिये। यह बात मशहूर है कि अनेक बातोंमें 'असभ्य' जंगली जातियोंकी ज्ञानेन्द्रियोंकी शक्ति और उनके "कुदरत" के बारेमें स्वाभाविक बोध 'सभ्य' मनुष्योंकी शक्ति और उनके बोधोंसे कई दर्जे बढ़कर होते हैं। हमने अपने जीवनके इस पहलूको ढीला होजाने दिया, और आजकलका वैज्ञानिक मनुष्य जब अपने पुस्तकालयसे बाहर निकलता है तो प्रायः सदा ही बाहरकी दुनियामें बच्चेकी तरह अनजान और असहाय होता है। मुझे इस बातको याद करके एक तरहकी शर्म आती है कि मैं तीन वा चार सालतक केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें "ज्योतिष-विज्ञान" के गणित-विभागका अध्ययन करता रहा और उस तमाम समयमें कतई तौरपर आकाशके अन्दर एक तारेसे दूसरे तारेको न पहचान सकता था। किन्तु इन्हीं तरीकोंपर हम लोगोंको शिक्षा दीजाती रही है। मगर अब इन तरीकोंको बिल्कुल उलट देना चाहिये, कुदरतके पदार्थों और कुदरतकी घटनाओंसे अमली वाकफीयत बहुत अर्सा पहले होनी चाहिये, और उसके बाद जब किसी विषयकी कठिनाइयां जबरदस्ती विद्यार्थीके दिमागके सामने आने लगें तब जाकर मन्तकी दलीलों और युक्तियोंसे आगेका काम लेना चाहिये।

ऐसे ही "पशु-विज्ञान" और "वनस्पति-विज्ञान" में मैं समझता हूं कि अभीतक हमने न केवल उस ज्ञानकी ही अवहेलना की है जो हमें अपने आंख, कान, नाक, आदि ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा प्राप्त होसकता था, बल्कि इन विज्ञानोंके उन पहलुओंका भी हमने बिल्कुल तिरस्कार किया है जो हमारे भीतरके कुदरती

ज्ञान और हमारे हृदयके भावोंसे सम्बन्ध रखते हैं। यदि कोई भी मनुष्य इस विषयकी ओर ध्यान देगा तो मुझे यकीन है कि वह इस बातको अनुभव कर सकेगा कि तरह तरहके पशुओं और वनस्पतियोंके साथ मनुष्यके कई तरहके कुदरती सम्बन्ध हैं और इन तमाम सम्बन्धोंका अत्यन्त बढ़िया, सहज, तथा स्वाभाविक बोध मनुष्यके हृदय (उसकी चेतनता) के अन्दर गुप्त अथवा सोई हुई हालतमें मौजूद है; और भीतरके इस सहज तथा स्वाभाविक बोधने आजकलकी निस्बत किसी समय असभ्य जङ्गली जातियोंके जीवनमें कहीं अधिक महत्वका भाग लिया है *। प्रारम्भिक मनुष्य-जातियोंको जड़ियों और बूटियोंके विषयमें इस बातका बड़ा अद्भुत कुदरती ज्ञान होता है कि कौन कौनसी बूटियां किस बीमारीमें उपयोगी हैं और कौन कौनसी खानेके काबिल हैं—यही कुदरती ज्ञान हम जानवरोंके अन्दर भी खूब बढ़ा हुआ पाते हैं—और मुझे विश्वास है कि यदि उसके लिये मौका दिया जावे तो इस तरहका ज्ञान सभ्य मनुष्यके अन्दर भी बेहद बढ़ सकता है। इसके बाद पशुओं और वनस्पतियोंका वह बाजाप्ता श्रेणी-विभाग, जो आजकल इन साइन्सोंका मुख्य कार्य है, इस अधिक प्रत्यक्ष और अधिक मनुष्योचित अध्ययनको केवल सहायता देने और उसकी कमी-को पूरा करनेके लिये किया जावेगा।

अब हम "शरीर-विज्ञान" (Physiology) की मिसाल

* ऐलिसी रेकलस (Elisee Reclus) ने अपने अपूर्व निबन्ध La Grande Famille में दर्शाया है कि जिसे पशुओंका "पालना" कहते हैं उसके रिवाजसे बहुत पहले प्रारम्भिक मनुष्यों और पशुओंके दरमियान किस तरहकी गहरी दोस्तियां, जिनका दूरतक असर पड़ता था, और अनेक भिन्न भिन्न उद्देश्योंके लिये आपसमें स्वतंत्र संधियां तथा सम्बन्ध हुआ करते थे। "Humane Review" January 1906.

लेते हैं जिसका सम्बन्ध शरीरके अंग-प्रत्यंगोंके अलग अलग कार्योंसे है।

आजकल इस विज्ञानका अध्ययन मुख्यकर मुर्दों अथवा जिन्दोंकी चीर-फाड़के जरिये किया जाता है। किन्तु इन दोनोंमेंसे कोईसा भी तरीका सन्तोषजनक नहीं है। मुर्दोंकी चीर-फाड़का तरीका तो इसलिये असन्तोषजनक है क्योंकि इसका मतलब यह हुआ कि हम किसी प्राणीकी मुर्दा लाशका इम्तहान करके उससे उसके जीवित शरीरका अध्ययन करना चाहते हैं; और जिन्दा पशुओंकी चीर-फाड़का तरीका इसलिये असन्तोषजनक है क्योंकि एक तो उसी तरहका ऐतराज इसमें आजाता है जिस तरहका मुर्दोंकी चीर-फाड़में और दूसरे जिस जानवरका मनुष्य अध्ययन करना चाहता है उसके साथ मनुष्यका जो सर्वोच्च (यानी धार्मिक) सम्बन्ध है उस सम्बधका ही यह तरीका निश्चय खण्डन कर डालता है। मैं मानता हूं कि दोनोंसे जुदा एक और भी तीसरा तरीका है, इस तरीकेकी ओर यद्यपि "पश्चिम" (अर्थात् यूरोप) में बहुत कम ध्यान दिया गया है तथापि "पूर्व" (अर्थात् एशिया और विशेषकर भारत) में यह तरीका सदियों पहलेसे मालूम है—शायद इसका नाम हम "स्वास्थ्य" का तरीका रख सकते हैं। यह तरीका इस तरह है कि पहले अपने रहन-सहन, खान-पानकी उचित आदतोंद्वारा शरीरको पाक और तन्दुरुस्त बना लिया जावे यहांतक कि भीतरकी आंखके लिये शरीर मानो शीशेकी तरह शफ्फाफ होजावे और फिर चेतनताको भीतरकी ओर मोड़ा जावे ताकि यह चेतनता भीतरके भिन्न भिन्न अंगोंकी अलग अलग बनावट और उनके कार्योंको करीब करीब वैसे ही साक्षात् अनुभव करने लगे जैसेकि वह आम तौरपर शरीरकी बाहरी सतहको अनुभव करती है। निस्सन्देह यह एक ऐसा तरीका है जो फौरन अमलमें नहीं लाया जासकता, और जिसे मुमकिन है

बाहरी अध्ययनके तरीकोंसे सहायता और तसदीककी जरूरत हो, किन्तु मुझे यकीन है कि यह एक ऐसा तरीका है जिससे बहुत बड़े बड़े नतीजे निकल सकते हैं और निकलेंगे। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि हिन्दोस्तानके अनेक योगी इस विषयमें बहुत बड़ी निपुणता प्राप्त कर लेते हैं।

इसी तरह "सम्पत्ति-विज्ञान" के विषयमें हम जो कुछ ऊपर कह चुके हैं उससे जाहिर है कि इस साइन्समें भी सन्तोषजनक नतीजोंतक पहुंचना बेहद इसी बातपर निर्भर होगा कि जो विद्यार्थी इस विज्ञानका अध्ययन करना चाहता है वह कितने ऊंचे दर्जेके सामाजिक भाव और कुदरती सामाजिक बोधको लेकर आगे बढ़ता है, और साथ ही इस बातपर भी निर्भर होगा कि वह कौमकी असली जिन्दगीसे कहांतक पूरी पूरी वाकफीयत रखता है; और यह भी जाहिर है कि मनुष्यके स्वाभाविक सामाजिक बोधको और उसके सामाजिक भावको ऊंचे दर्जेपर पहुंचाना और जन-सामान्यकी असली जिन्दगीसे पूरी पूरी वाकफीयत हासिल करना "सम्पत्ति-विज्ञान" का ठीक उतना ही महत्वपूर्ण अंग है जितना कि सामनेकी सामग्री यानी मालूमातको ठीक ठीक मन्तकी तरीकेसे तरतीब देना और व्यवस्थित करना।

मैं समझता हूं कि अब मुझे और अधिक विस्तारके साथ हर साइन्सके लिये अलग अलग नये तरीकोंको बयान करनेकी जरूरत नहीं है। आपको याद होगा कि मैंने शुरूमें ही मनुष्य-शरीरके एक छोटेसे "अणु" (Cell) के समस्त "शरीर" का अध्ययन करनेकी मिसाल दी थी। जिस समय यह "अणु" समस्त शरीरका अध्ययन करने लगता है तो उसके इस अध्ययनमें हम तीन अलग अलग अवस्थाओंका अनुमान कर सकते हैं। पहली अवस्था वह है जिसमें यह "अणु" दूसरे अणुओंके विषयमें तथा "शरीर" के विषयमें केवल इस दृष्टिसे विचार

करता है कि इन सबका स्वयं उसपर तथा उसके अपने आराम और कुशलपर कैसा असर पड़ता है। यह अवस्था "पुराने जमानेकी साइन्स" के मुकाबलेकी अवस्था समझी जासकती है। दूसरी अवस्था वह है जिसमें यह "अणु" दूसरे कुछ अणुओं-के विषयमें तथा अपने आस-पासके शरीरके एक छोटेसे हिस्सेके विषयमें अपने अत्यन्त छोटेसे तजरबेको लेकर बड़ा दिमागी वा 'दिमाग-दार' बन जाता है और इस थोड़ेसे ज्ञानके आधारपर तमाम शरीरकी रचना और बनावटके नियम लिख डालनेका दावा करता है। यह अवस्था "आजकलकी साइन्स" की अवस्थाके मुकाबलेकी है। तीसरी अवस्था वह है जिसमें यही "अणु" भीतरसे अधिकाधिक बढ़ते हुए और विकसित होते हुए और प्रतिदिन शरीरके बाकी तमाम भागोंके साथ ज्यादह व ज्यादह नजदीकी और सहानुभूतिपूर्ण नाता जोड़ते हुए, दूसरे अणुओंके साथ अपने सच्चे सम्बन्धको पहचानने लगता है, उन-का उपयोग करनेके लिये नहीं, बल्कि समस्त शरीरकी रचनामें अपना असली कर्त्तव्य पूरा करनेके लिये। धीरे धीरे तमाम सूत्रोंको अपने पास इकट्ठा करते हुए और एक प्रकारसे अधिका-धिक मरकजी स्थान ग्रहण करते हुए, अन्तको होते होते यह "अणु" अपने नन्हेसे दिमागके अन्दर खुद ब खुद और बिल्कुल-एक निश्चित और अटल रूपसे समस्त शरीरका इस प्रकार सच्चा अक्स देखने लगता है जिस प्रकार शीशेके अन्दर किसी पदार्थका अक्स दिखाई देता है। यह तीसरी अवस्था उसके मुकाबलेकी है जिसे हम असलीयतमें एक तर्कसंगत और मनुष्योचित "साइन्स" कह आये हैं।

"मनुष्य" को दूसरे प्राणियोंके साथ और इस सम्पूर्ण विश्वके साथ जिसका वह स्वयं एक अंग है अपने सच्चे सम्ब-न्धका पता लगाना है और उस सम्बन्धको अपने भीतर अनुभव करना है और इसी उद्देश्यको पूरा करनेके लिये उसे अपने

दिमागका उपयोग करना है। हम सब जानते हैं कि 'साइन्स" वास्तवमें "एक" अथवा "एकता" की ही खोज करती है। यही "साइन्स" का आदर्श है। "साइन्स" असंख्य घटनाओंको एक नियमके अन्दर लाती है; फिर अनेक नियमोंको एक अधिक बड़े अथवा उच्चतर नियमके अन्दर लाकर मिला देती है; इस प्रकार वह सदा एक सर्वोपरि अखण्ड नियमकी खोजमें लगी रहती है। किन्तु (क्या यह बात स्पष्ट नहीं है ? कि) "मनुष्य" उस समयतक "सम्पूर्ण विश्व" की एकताको नहीं जान सकता जिस समयतक कि वह पहले "सम्पूर्ण विश्व" के साथ अपनी एकताको अनुभव न कर ले। एक दूसरेके साथ मनुष्योंके हिंसात्मक "संग्रामों" और उन्मत्त 'मुकाबले"(Competition) की नींवपर और पशुओंकी हत्या और जिन्दा चीर-फाड़के आधारपर एकताकी "साइन्स" को कायम करना—अनैक्यके व्यवहारद्वारा ऐक्यकी खोज करना-एक ऐसी बेहूदगी है जिसका असली रूप अन्तको प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता।

मालूम नहीं आपको यह बात स्पष्ट दिखाई देती है वा नहीं, किन्तु मुझे तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि "मनुष्य" जिस समयतक अपनी आन्तरिक प्रकृतिकी एकताको अमली तौरपर साक्षात् नहीं कर लेता उस समयतक सिद्धान्त अथवा कल्पना-रूपसे बाहरी "प्रकृति" की एकताको हरगिज नहीं पहचान सकता। जिस समय मनुष्य अपनी तमाम शारीरिक तथा मानसिक शक्तियोंको, अपनी इच्छाओं, ताकतों और आवश्यकताओंको अपने भीतर एकस्वर करना और उन्हें पूरी तरह एक दूसरेकी सहायक बनाना सीख लेगा—जब वह अपने भीतरके सच्चे धार्मिक अथवा आध्यात्मिक शासनको जान जावेगा—तब मैं समझता हूं किसी न किसी तरह उसके चारों ओरकी "प्रकृति" में भी उसे इसी अपने भीतरकी व्यवस्थाका अक्स दिखाई देगा, और उसे अपने चारों ओरकी कुदरतमें एक

स्पष्ट और सुगम सुस्वरता अथवा एकता ही एकता दिखाई देगी।

किन्तु मैं इससे ज्यादह और कुछ नहीं कह सकता। मैंने एक गूढ़ और कठिन विषयमेंको आपको गोया गरदन पकड़कर खींचा है; और इसपर भी मैं यह महसूस नहीं करता कि मैं किसी तरह भी इस विषयके साथ न्याय कर पाया हूं। किन्तु शायद मुमकिन है कि मैंने एक नये विचारका बीज आपके अन्दर फेंक दिया है, और यदि आप फुरसतमें उसपर सोचेंगे तो मुमकिन है कि कोई कीमती नतीजे उससे पैदा होजावें।

चौथा अध्याय

ऊपरके पत्तोंका झड़ झड़कर गिरते रहना।

"सृष्टिकी निरन्तर व्याकुलता, ऊपरके पत्तोंका झड़ झड़कर गिरते रहना।"

—ह्विटमैन।

मैं समझता हूं कि शायद यह बात सदाके लिये मान लीजावेगी कि इन्सानका दिमाग कुदरतकी छोटीसे छोटी बातकी भी वास्तवमें व्याख्या करनेके नाकाबिल है। सीधीसे सीधी चीज, वा घटना, अन्तको हमें चकरा देती है। यह बिलकुल ऐसा ही है जैसाकि एक ही समयमें किसी आइनेके सामनेकी तरफ और पीछेकी तरफ, दोनों तरफ एक साथ देखनेकी कोशिश करना। नजरको कितना ही मोड़िये-तोड़िये, काम न चलेगा। जीवात्मा और बाह्य जगत्, दोनों सृष्टिभरमें नाचते फिरते हैं किन्तु हाथ नहीं आते। किसी भी नाशवान पदार्थके अन्दर इन दोनोंको पकड़कर कहीं पिनसे चिपका देना हमारी

शक्तिके बाहर है। तथापि वे दोनों हर पदार्थमें मौजूद हैं। फ्रान्सीसी विद्वान मौनटेनने कहींपर सेण्ट ऑगस्टाइन* के ये वाक्य उद्धृत किये हैं—"वह ढंग जिससे आत्माएं शरीरोंको चिपटी रहती हैं सर्वथा अद्भुत है, इन्सान किसी तरह भी उसे अपने खयालमें नहीं लासकता; तथापि यही है जिसे इन्सान कहते हैं।" "मनुष्य" के अन्दर ही इस विरोधका तथा असंख्य अन्य विरोधोंका समाधान मौजूद है अथवा "मनुष्य" स्वयं ही इन सबका समाधान है। हम वास्तवमें प्रति दिन ऐसे ऐसे मौजजे करते रहते हैं और दिखाते रहते हैं जिन्हें हमारा दिमाग किसी तरहसे भी समझ नहीं सकता। तथापि उन तमाम मौजजोंका हल, उनको बुद्धिपूर्वक हल करने और समझनेकी शक्ति हमारे अन्दर मौजूद है; केवल जिस चेतनतासे हम आम तौरपर काम लेते हैं उसकी निस्बत इन बातोंको समझनेके लिये एक अधिक ऊंचे दर्जेकी चेतनताकी जरूरत है—सम्भवतः वह ऐसी चेतनता है जिसमें जीवात्मा और बाह्य जगत्, दोनों शामिल हैं, जो इन दोनोंसे ऊपर है, और जो इसीलिये एक ही साथ और एकसा बराबर दोनोंको साक्षात् कर सकती है—लम्बाई, चौड़ाई और मोटाईके अलावा वह एक चौथी लिम्तकी चेतनता है जिसकी नजरके सामने ठोस पदार्थोंके भीतरके हिस्से वैसे ही साफ खुल जाते हैं जैसेकि उनके ऊपरकी सतह—वह एक ऐसी चेतनता है जिसके अनुभवके सामने अनेक सामान्य विरोध जैसे कार्य और कारण, आत्मा (Spirit) और प्रकृति (Matter) भूत और भविष्य कहीं रह ही नहीं जाते। मैं कहता हूं कि चेतनताकी ये उच्चतर अवस्थाएं हमारे अन्दर मौजूद हैं और विकसित किये जानेकी मुन्तजिर हैं; और जबतक ये अवस्थाएं हमारे अन्दर विकसित नहीं होतीं तबतक वास्तवमें हम अपने

* पहला ईसाई पादरी जिसने ५९७ ई० में इंगलैण्ड पहुंचकर वहां ईसाई धर्मकी नींव रखी—अ०।

चारों ओरकी दुनियाके विषयमें बिल्कुल कुछ भी नहीं समझ सकते।

इस बीच, क्योंकि बिना लफ्ज़ी नियमों और दिमागी कल्पनाओंके हम कुछ सोच ही नहीं सकते, इसलिये हम खुशीसे अपनी (अत्यन्त अधूरी) मुकामी रायोंको मान लेते हैं, और इस एक पहलूसे अथवा उस एक पहलूसे जगत्को देखने लगते हैं। कभी हम आत्मवादी वा आदर्शवादी होजाते हैं, और कभी अनात्मवादी, कभी हम जड़ शक्तियोंमें विश्वास करते हैं, और कभी मानवी अथवा आध्यात्मिक शक्तियोंमें। इससे पहले एक अध्यायमें हम दिखा चुके हैं कि पिछले पचास वर्षकी साइन्स खास इन्सानी पहलूके बजाय अधिकतर मशीनों और कल-पुर्जोंके पहलूसे ही तमाम पदार्थोंको देखती रही है—अर्थात् जीवात्माके पहलूको छोड़कर केवल बाह्य जगत्के पहलूसे। अधिक पुराने जमानेमें तमाम घटनाओंको केवल जीवात्माके यानी मनुष्यके ही नुक्ता-ए-खयालसे देखने और सोचनेकी प्रवृत्ति हद दर्जेकी बढ़ी हुई थी; उससे उलटकर, और इस बातसे डरते हुए कि कहीं अपनी ओरका पक्षपात उन्हें ठीक मार्गसे डिगा न दे, आजकलके वैज्ञानिकोंने अपने "कुदरत" के मशाहदोंमेंसे इन्सानी और चैतन्य अंशको बिल्कुल ही निकाल देनेकी कोशिश की। और इस दिशामें साइन्सने बड़ा उपयोगी कार्य किया है—किन्तु निस्सन्देह ये लोग एक ओरसे बचकर दूसरी ओर एक उसके मुकाबलेहीकी संकीर्णतामें फँस गये।

वास्तवमें आजकलकी साइन्सका मुख्य सिद्धान्त, "विकासवाद" (Evolution) जाहिरा इसी संकीर्णतामें पड़ा हुआ है, और नीचेके वाक्योंमें मैंने केवल कुछ ऐसी बातें संक्षेपमें सुझानेकी कोशिश की है जोकि "विकासवाद"के अधिक खास तौरपर मानवी पहलूके पक्षमें कही जासकती हैं। क्योंकि हर मनुष्य कुदरतका एक अंग है और उसी माइनेमें विकासगतिका

भी एक अंग है, इसीलिये हर मनुष्यके आन्तरिक अनुभवसे उन हालतोंपर, जिन हालतोंमें विकास होता है, कमसे कम कुछ न कुछ रोशनी अवश्य पड़नी चाहिये; और इस समस्याके समझनेमें उससे कुछ न कुछ सहायता भी अवश्य मिलनी चाहिये।

यदि प्रश्न यह है कि—जानवरोंमें एक जातिसे दूसरी जातिमें "रूपान्तर" होनेका कारण क्या है *?—तो इसका करीब करीब जवाब जरूर इस तरह मिल सकता है कि हर मनुष्य अपने तईं यह पूछे कि—"मेरे अपने भिन्न भिन्न रूप क्यों बदलते रहते हैं?"—अर्थात् वह यह प्रश्न करे कि मैं जो कुछ दस साल पहले था वा जो कुछ कि लड़कपनमें था उससे अब एक भिन्न व्यक्ति क्यों हूं? क्या कारण है कि मैं बदलते बदलते एक दिशामें चला गया और मेरे भाई-बहन, जो उसी घोसलेसे निकले हुए हैं, बिल्कुल दूसरी दिशाओंमें चले गये? यद्यपि मेरी अपनी वैयक्तिक चेतनता केवल मेरे अपने थोड़ेसे जीवनतक ही रह जाती है, अर्थात् न पीछेकी ओर मेरे पिताके जीवनतक जाती है और न आगेकी ओर मेरे पुत्रके जीवनतक, तथापि इस छोटेसे समयके अन्दर जो जो शक्तियां मेरे ऊपर काम करती हैं उनका मुझे इतना नजदीकी परिचय और इतना अच्छा ज्ञान है कि उसकी सहायतासे मुमकिन है मैं उन शक्तियोंको भी समझ सकूं जो एक अधिक वसीअ मैदानमें मनुष्यों और पशुओंके अन्दर एक रूपसे अनेक रूप और एक जातिसे अनेक जातियां पैदा करती हैं, और मुमकिन है कि अपनी शख्सी बढ़ौती वा

* हम किसी पिछले अध्यायके एक नोटमें बता चुके हैं कि मोटे तौरपर "विकास" का सिद्धान्त यह है कि जानवरोंकी तमाम उच्चसे उच्च जातियोंका निकास, जिनमें मनुष्य भी शामिल है, धीरे धीरे हजारों सदियों और असंख्य नसलोंमें रूपान्तर होते होते कुछ अत्यन्त छोटे और सरल रूपके प्रारम्भिक जन्तुओंसे हुआ है—अ०।

शख्सी विकासके कुछ नियमोंका पता लगाकर उन्हींके जरिये मैं अपनी जातीय वा सामाजिक बढ़ौती और सामाजिक विकासके नियमोंको भी जान सकूं।

इस तरहके सवालके जवाबमें जल्दी ही मालूम होने लगेगा कि मोटे तौरपर दो तरहके कारण हैं जिनसे किसी व्यक्तिके बढ़ने वा उसके बदलनेकी दिशा नियत होती है, इन कारणोंको आसानीके साथ एक दूसरेसे अलग किया जासकता है—एक बाहरी कारण और दूसरा भीतरी कारण। पहली सूरतमें जिस व्यक्तिसे ऊपरका अन्तिम प्रश्न किया गया था वह इस प्रकारका उत्तर देसकता है, "बाहरके हालातने जबरदस्ती मुझे इस दिशामें ढकेल दिया। मेरा बाप शहरका एक दस्तकार था, किन्तु उसने मुझे एक किसानके यहां काम सीखनेके लिये भेज दिया। मैं एक किसान लड़केकी तरह पला और जैसा आप देखते हैं किसान ही होगया। मैं किसानोंके कामको खास तौरपर पसन्द न करता था, निस्सन्देह कभी कभी मेरा बहुत जी चाहता था कि उस कामको छोड़ दूं; किन्तु वास्तवमें हालातने मुझे मजबूर कर दिया और नतीजा यह हुआ कि मैं आज किसान हूं।" किन्तु दूसरी सूरतमें मुमकिन है वही मनुष्य इस प्रकार जवाब दे—"मेरा बाप खुद किसान था; मुझे छोटी उमरसे किसानीके कामकी आदत डाली गई, और निस्सन्देह यदि मुझे किसानीके कामसे विषके समान घृणा न होती तो मैं किसान ही होगया होता। किन्तु मुझे गाने-बजानेसे प्रेम था, मैं घरसे भाग निकला, मैं एक बैण्डमें जामिला, फिर एक छोटेसे थियेटरके गाने-बजानेवालोंमें नौकर होगया, और अब गाना-बजाना ही मेरा व्यवसाय है। मेरा जिस्म मुकाबलेतन् दुबला पतला है, और मेरे हाथ, जैसा आप देख रहे हैं, कांपने लगते हैं। निस्सन्देह थोड़ा-बहुत पुराना किसानीपनका अंश मुझमें अब भी बाकी है, किन्तु मैं महसूस करता हूं कि वह

धीरे धीरे लोप होता जारहा है।" इन दोनों मिसालोंमें रूपान्तर होनेके दो अलग अलग कारण हैं। पहला कारण हुआ बाहरी हालातका बदल जाना जिनसे मजबूर होकर मनुष्यको अपने तईं उन्हींके अनुसार ढालना पड़ा; दूसरा कारण हुआ आन्तरिक हालातका बदलना, मनुष्यके भीतरसे नये अंकुरोंका फूटना, जो सबसे पहले एक प्रबल इच्छाके रूपमें जाहिर हुए और जिन्होंने मनुष्यको अपने तईं बदल लेने और सम्भवतः उस इच्छाके अनुसार अपने आसपासकी परिस्थिनितकको बदल देनेके लिये मजबूर किया। मेरा कथन है कि मोटे तौरपर इस तरहके कारणोंके दो मामूली सिलसिले एक दूसरेसे अलग किये जासकते हैं; और शायद असलीयतमें हर मनुष्य कम वा ज्यादह स्पष्ट तौरपर इस बातको अनुभव करता है कि ये दोनों तरहके कारण उसके जीवनको थोड़ा-बहुत बदलते रहते हैं। और न यही कहा जासकता है कि किसी मनुष्यका जीवन किसी समय भी इन दोनों शक्तियोंमेंसे केवल किसी एक शक्तिके ही अधीन है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं होसकता जिसकी जिन्दगी केवल बाहरके हालातके मुताबिक ही बदलती रहती है, और जिसकी जिन्दगीपर उसकी आन्तरिक आवश्यकताओं, इच्छाओं, भावों और भीतरके अंकुरोंका कोई असर वा उनकी कोई प्रतिक्रिया न होती हो; और न कोई ऐसा इन्सान होसकता है जिसका जीवन बिना कभी न कभी किसी बाहरकी रुकावटों वा बाधाओंके केवल आन्तरिक विस्तारके अनुरूप ही ढलता जाता हो। ये दोनों शक्तियां लगातार एक दूसरेके ऊपर अपना प्रभाव डालती रहती हैं; किन्तु कई तरहसे इन दोनोंमेंसे वह शक्ति अधिक महत्वकी मालूम होती है जिसका स्वयं "मनुष्य" (आत्मा यानी प्राणी) से निकास है, क्योंकि जाहिरा तौरपर उसका सम्बन्ध मनुष्यकी असली जीवन-शक्तिसे है, वह मनुष्यहीका एक अंग है, और इसी-

लिये मनुष्य जीवनके बदलने वा बदलते रहनेमें सबसे अधिक स्थाई और विश्वसनीय कारण है, जबकि बाहरी शक्तिको—जोकि तरह तरहके और दूर दूरके कारणोंसे पैदा होती है—अस्थाई, अनित्य और आकस्मिक (यानी इत्तफाकिया) ही मानना होगा।

इसलिये इन थोड़ेसे सफोंमें मैं खास तौरपर यह विचार करनेकी तजवीज करता हूं कि यह आन्तरिक शक्ति मनुष्यमें और पशुओंमें किस किस तरह तब्दीलियां करती है—मैं इस बातके पता लगानेकी कोशिश करूंगा कि इस शक्तिका क्या रूप है, उसके क्या गुण हैं, उसके काम करनेका क्या नियम है और कहां कहांतक उसकी पहुँच है—साथ ही यह बात सदा मेरी नजरके सामने रहेगी कि, जैसा मैं ऊपर कह चुका हूं, यद्यपि चेतनताके खास खास मैदानोंमें "भीतरी" और "बाहरी" का यह भेद सुविधाजनक और समझनेमें आसान है तथापि मुमकिन है कि आगे चलकर अन्तको इस भेदका कायम रखना अत्यन्त कठिन, बल्कि असम्भव होजावे।

जीवन-विज्ञान (Biology) के वेत्ता प्रायः कहा करते हैं कि—"क्रिया यानी चेष्टा पहले होती है और उस क्रियाके लिये साधनों अर्थात् इन्द्रियोंकी रचना पीछे होती है।" (Function precedes organisation)—यानी मनुष्य पहले अपने साथियों-से लड़ना शुरू करता है और पीछे लड़नेके लिये हथियार बनाता है; प्रारम्भिक रूपके जन्तु (जैसे ऐमी वा Amœba) पहले खूराक हजम करने लगते हैं और पीछे उनके मेदे आदिकी रचना होती है, पहले वे देखने लगते हैं अर्थात रोशनीको अनुभव करने लगते हैं और पीछे उनकी आंखें बनती हैं; समाज-में पहले दस्ती चिट्ठियाँ आने-जाने लगती हैं और पीछे व्यव-स्थित डाकखानों आदिकी रचना होती है। इस तरहकी घट-नाओंपर यदि उचित ध्यान दिया जावे तो ये घटनाएं बड़े

मार्मिक महत्वकी हैं। वे मानो ठीक उसी तरह हमें सृष्टिकी दिशा दर्शा देती हैं जिस तरह सड़कपर लगे हुए एक लकड़ीके तख्तेसे हमें आगेका रास्ता मालूम होजाता है। इनसे पता चलता है कि किसी भी नई चीजकी सृष्टि कैसे होती है, अथवा पुरानी चीजका रूपान्तर कैसे होता है। ऊपरके असूल-को कमीको पूरा करनेके लिये एक और बात कही जासकती है, वह यह कि—पहले इच्छा होती है और पीछे क्रिया अथवा चेष्टा होती है (Desire precedes function)। यानी पहले मनुष्यके अन्दर अपने साथीको हानि पहुंचानेकी इच्छा उत्पन्न होती है और पीछे वह उससे लड़ता है; पहले वह अपने भीतर अपने दूरके मित्रोंतक अपने भाव आदि पहुंचानेकी इच्छा अनुभव करता है और उसके पीछे पत्र आदि भेजनेकी तजवीज करता है; प्रारम्भिक जन्तु (ऐमीबा) के अन्दर पहले भोजनकी इच्छा होती है और वह पीछे अपने शिकारको फांसता है। पहले इच्छा यानी भीतरी तब्दीली होती है, उसके बाद क्रिया होती है और इन दोनोंके बाद इनके परिणामरूप (शरीरके अन्दर) अंग-रचना अथवा बाह्य रचना होती है।

यदि हम इसे "सृष्टिका क्रम" (Order of Creation) अथवा रचनाका क्रम कह सकते हैं अर्थात् यह कि रचना भीतरसे बाहरकी ओरको बढ़ती है,तो मनुष्यके अन्दर यह क्रम अत्यन्त स्पष्ट दिखाई देता है। जब कभी मनुष्य किसी नई चीजकी रचना करता है वह सदा इसी क्रमसे चलता है। मिसालके तौरपर जब कभी मनुष्य कोई घर बनाता है, वा कोई कविता रचता है, वा कोई गाना बनाता है, वा ऐल्प्स पहाड़के नीचेसे सुरङ्ग निकालना चाहता है, वा और कुछ भी करना चाहता है तो उसका क्रम यही मालूम होता है; अर्थात् पहले भीतरमें एक भाव—यानी एक अस्पष्ट आवश्यकता वा इच्छा होती है, फिर वह भाव सामने आकर विचारका रूप लेता है, विचार अधिक

निश्चित होकर एक खास तजवीजका रूप लेता है, वह तजवीज कागजपर आती है, नमूने बनाये जाते हैं इत्यादि, और अन्तको असली काम शुरू करके खतम किया जाता है। यह क्रम वा यह गति साफ भीतरसे बाहरकी ओरको चलती हुई मालूम होती है। इस गतिका सबसे शुरूका और सबसे प्रामाणिक उत्पत्तिस्थान, जहांतक पता चलता है, एक 'भाव' है (यद्यपि मुमकिन है कि उस भावके पीछे भी कोई और चीज हो, जिसका इस समय हमें पता नहीं चलता)। इन्सानके मामूली कामोंमें भी यही क्रम दिखाई देता है; क्योंकि यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि हर कामसे पहले इच्छाका होना जरूरी नहीं है—क्योंकि हम जानते हैं कि थोड़े ही समय बाद अनेक कामोंकी जब हमें आदत पड़ जाती है तो प्रायः उनको करते समय हमें उनका खयालतक नहीं होता—तथापि एक बहुत बड़ी संख्या इन्सानके कामोंकी ऐसी है जिनसे ठीक पहले इच्छा जरूर होती है; और किसी भी नये कामकी सूरतमें, चाहे वह व्यक्तिका कार्य हो और चाहे जातिका, कार्यके प्रारम्भमें आम तौरपर इतना कष्टकर प्रयास करना पड़ता है कि यदि शुरूमें इच्छा अत्यन्त प्रबल न होती तो हरगिज कोई उतना प्रयास न करता। किसी भी नये हुनरको सीखनेमें मनुष्यको जो कठिनाई होती है उससे और मनुष्यके इतिहासमें प्रत्येक नई ईजादके साथ वा किसी तरहके भी नये रस्म और रिवाजके जारी करनेमें जो अनेक नाकामयाबियां, संग्राम और विरोध हुए हैं और लोगोंको नई बातोंके लिये जो जो पीड़ाएं दीगई हैं इत्यादि, उन सबके उल्लेखोंसे हमारे इस अन्तिम कथनके अनेकानेक उदाहरण मिल सकते हैं। निस्सन्देह किसी भी नये कामके करनेमें जो प्रयास करना पड़ता है वह प्रयास सदा इतना केवल उस नई चीजकी इच्छाके कारण ही नहीं किया जाता जितना कि शायद किसी दूसरी चीजके डरकी वजहसे भी किया जाता है—जैसेकि कहा जासकता है

कि बन्दरोंने केवल दरख्तोंके प्रेमके कारण ही दरख्तोंपर चढ़ना नहीं शुरू किया, बल्कि नीचेके दरिन्दोंके डरकी वजहसे, अथवा जराफ (अफरीका एक लम्बी गरदन और लम्बी टांगोंवाला चौपाया) ने अपनी गरदन इसलिये लम्बी नहीं की क्योंकि वह खास तौरपर पत्ते ही खाना चाहता था,बल्कि ज्यादहतर इसलिये क्योंकि और किसी तरह उसे भोजन न मिल सका—तथापि इन सूरतोंमें भी यद्यपि इच्छा गौण है अर्थात् एक दूसरी अधिक प्रारम्भिक इच्छाके आधारपर कायम है यानी दरिन्दोंकी मारसे बचने वा भोजन पानेकी इच्छाके आधारपर, तथापि यह मानना होगा कि इच्छा है जरूर। इन दोनों सूरतोंमें नये कार्यसे पहले किसी न किसी प्रकारकी इच्छा जरूर पाई जाती है। और क्योंकि हम कोई ऐसा नया काम नहीं सोच सकते जो बिना पहले इच्छाके पैदा हुए होगया हो, इसलिये मालूम होता है कि हमारा यह मान लेना बिल्कुल उचित है कि हमारे तमाम कार्य जब वे शुरूमें किये गये थे (यदि हमारे द्वारा नहीं तो हमारे पूर्वजोंद्वारा) तो उस समय उनसे पहले इच्छा जरूर थी। यदि ऐसा है तो चूंकि क्रियासे पहले सदा इच्छा होती है और अंग-रचनासे पहले सदा क्रिया होती है, इसलिये अंग-रचनासे पहले जरूरी तौरपर सदा इच्छा होनी चाहिये। और यदि मनुष्यके अन्दर रचनाका यही क्रम है तो क्या आम तौरपर समस्त सृष्टिके क्रमको जाननेके लिये और जानवरोंमें रूपान्तर हो होकर अनेक उत्तरोत्तर जातियां बनते रहनेके कारणको समझनेके लिये हमारा इसी दिशामें खोज करना बुद्धि-संगत नहीं है *?

* निस्सन्देह इसका यह मतलब नहीं है कि बाहरके हालातका कोई असर होता ही नहीं, अथवा केवल इच्छाद्वारा ही अंग-रचना होती रहती है। वास्तवमें इच्छा बाहरके हालातसे मिलकर जब कार्य करती

यदि किसानोंके घरोंमें प्रायः इस तरहके लड़के पैदा होजाते हैं जो किसानीके कामसे नफरत करते हैं और गाने-बजानेसे प्रेम रखते हैं, और जो अन्तको अपनी उस इच्छा-शक्तिद्वारा ही जोकि उन्हें विरोधों, कठिनाइयों और आर्थिक कष्टोंमेंसे लेजाती है अपने तईं किसानसे बदलकर गवइये वा बाजा बजानेवाले बना लेते हैं, तो क्या यह सम्भव नहीं है कि कभी कभी ऐसे पशु भी पैदा होजाते हैं जो अपनी जाति-विशेषके रिवाजों वा उनकी आदतोंसे घृणा करते हैं, और जो अन्तको, उसी तरहके प्रयत्नों और प्रयासोंमेंको निकलकर अपने तईं बदलकर कुछ और ही बना लेते हैं? यदि इस तरहका कोई पशु अपने तईं पूरी तरह बदल लेनेमें सफल न भी हो तो भी बहुत मुमकिन है कि वह किसी न किसी दर्जेतक अपनी इच्छा अपनी संततिमें छोड़ जाता है,और इस प्रकार जिस तब्दीलीकी इच्छा उसके अन्दर पैदा हुई थी वह तब्दीली उसके बाद (धीरे धीरे उसकी संततिमें) पूरी होती रहती है। क्योंकि हर जगह पशुओंके अन्दर किसी न किसी प्रकारकी इच्छा बराबर होती है, और जाहिरा वह इच्छा काम करती रहती है; और यदि मनुष्यके अन्दर हमें स्वयं इस बातका तजरबा है कि मनुष्यकी बढ़ौती अथवा उसके विकासका पेशखेमा और उनका शुरूका स्वरूप 'इच्छा' है, तो क्या कोई कारण है कि यही बात पशुओंमें भी न होती हो? लैमार्क (१७४४-१८२९, वनस्पति-विज्ञान और पशु-विज्ञानका एक सुविख्यात फ्रांसीसी विद्वान्) इस विषयमें अन्य मिसालोंके साथ साथ जठरपाद (Gasteropod कीड़ोंकी एक जातिविशेष) की मिसाल देता है; (इस कीड़ेके सामनेकी ओर प्रायः दो लम्बे कड़े बाल होते हैं) लैमार्क बताता है कि किस तरह शुरूके दिनोंमें जब यह कीड़ा जमीनपर रेंगता

है तब दोनोंके मेलसे अंग-रचना होती है—जैसाकि ऊपर बन्दर और जराफकी मिसालोंसे जाहिर है।

होगा तो पहले उसके अन्दर अपने सामनेकी चीजोंको छूनेकी आवश्यकता वा इच्छा उत्पन्न हुई होगी और फिर इस आवश्यकता वा इच्छाद्वारा ही धीरे धीरे इन बालोंकी उत्पत्ति हुई होगी। वह लिखता है कि यह कीड़ा शुरूमें अपने सिरके अगले हिस्सेसे सामनेकी चीजोंको महसूस करनेकी कोशिश करता रहा होगा, उसे अपनी चेतनताको निश्चितरूपसे उसी ओर लगानेकी आदत बनी रही। परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे शरीरके अन्दरके मज्जातन्तु-सम्बन्धी तथा अन्य रस भी उस ओरको बहने लगे, जिसका नतीजा यह होगा कि शरीरका वह भाग बढ़ेगा और वहां धीरे धीरे किसी न किसी अङ्गकी उत्पत्ति होगी—इस नये अङ्गका आकार भी इसी तरह धीरे धीरे आवश्यकताके अनुकूल ही निश्चित होता रहेगा—यहांतक कि अन्तमें (मुमकिन है सैकड़ों वा हजारों नसलोंमें जाकर) दो वा अधिक लम्बे बाल उस जगहपर निकल आवेंगे। यह सच है कि जितने सुस्पष्ट ढंगसे और जितनी अनेक तरहसे चेतनताका प्रवाह एक खास दिशामें मनुष्य अपने अन्दर मोड़ सकता है वा लगा सकता है उतना पशु नहीं मोड़ सकते; किन्तु पशुओंके अन्दर जब कभी भी चेतनताका रुख किसी खास तरफ इस तरह मुड़ने लगता है तो वह उनकी एक प्रकारकी जबरदस्त मानसिक आदत होजाती है जो नसल दर नसल जारी रहती है, और आदतकी बढ़ती हुई शक्ति विशेषकर पशुओंमें इतनी जबरदस्त होती है कि अन्तको वह पहले चेष्टाके रूपमें और फिर अङ्ग-रचनाके और बाहरी रूपमें आये बिना नहीं रह सकती। कौन कह सकता है कि लवा (Lark) पक्षीके परोंका आकार केवल उसके सूर्यके सामने मंडलाने और गानेके शौकके कारण ही नहीं बदल गया है, अथवा जिस तरह मनुष्योंमें कंजूस लोगों अथवा अइयाश लोगोंके चरित्रोंके सदैव एक खास दिशामें झुकनेके कारण धीरे धीरे उनके स्वरूप भी एक खास ढंगके होजाते हैं वैसे ही

मगर, मच्छ अथवा हिरन की शकलें भी उनके चरित्रविशेषके सैकड़ों हजारों वर्षोंतक अपना अपना काम करते रहनेका ही नतीजा नहीं हैं ?

अब हमारे ऊपरके सिद्धान्त और डारविन* के विकास-सिद्धान्त, इन दोनोंके भेदको लीजिये। ऊपरके सिद्धान्तके अनुसार प्राणीके भीतरकी इच्छा अथवा उसके चरित्रके जोरसे धीरे धीरे रूपान्तर होकर जानवरोंकी अनेक शकलें और अनेक जातियां बन जाती हैं। यह एक बात है। और डारविनके विकास-वादके अनुसार अकस्मात् किसी खास पशुओंमें खास खास अङ्ग वा आदतें पैदा होजाती हैं और फिर इन सब अंगों वा आदतोंमेंसे आसपासके कुदरती हालातमें जो अङ्ग वा जो आदतें उपयोगी साबित होती हैं वे नसल दर नसल कायम रह जाती हैं और अनुपयोगी लोप होजाती हैं; इस प्रकार धीरे धीरे शुरूके अत्यन्त सरल स्वरूपके जन्तुओंसे रूपांतर होते होते पशुओंकी अनेक जातियों तथा स्वयं मनुष्यकी उत्पत्ति होती है। इसीका नाम "अधिक उपयोगी वा अधिक समर्थ रूपोंका बचते जाना" (Surv1al of the Fittest) है यह एक बिल्कुल भिन्न और दूसरी बात है। हम यह मान सकते हैं कि दोनों तरहसे तब्दीलियां होती हैं; किन्तु डारविनके अनुसार उत्तरोत्तर रूपोंके विकासमें प्राणियोंको जो जीत वा सफलता होती है वह एक तरहकी सुलभ सफलता है जो एक बाहरी कारणसे अथवा इत्तफाकिया एक खास तरहकी पैदाइशकी वजहसे हासिल होजाती है, इस तरहकी सफलता फिर जल्दीसे ही हाथसे खोई भी जासकती है; जबकि दूसरी तरहका विकास जिसकी हमने ऊपर व्याख्या की है एक तरहकी पहाड़की चढ़ाई और एक संग्राम है जिसमें भीतरकी प्रकृति बाहरकी रुकावटोंके होते

* १८०९-१८८२, मशहूर अंगरेज वैज्ञानिक जिसने विकास-सिद्धान्त-की नींव रखी और उसकी व्याख्या की।—अ०।

हुए भी धीरे धीरे अपने लिये आवश्यक रूपकी रचना करती है—इस तरहके रूपके स्थाई होनेकी बहुत अधिक सम्भावना है। यदि इन्सानके पूर्वज बजाय (बाकी बन्दरों आदिकी तरह) चार हाथ-पैरोंपर चलनेके केवल इसलिये सीधे दो पैरोंपर चलने लगे, क्योंकि इत्तफाकसे उनमें कुछ ऐसे पैदा होगये थे जिनमें सीधे रहनेकी एक खास पैदायशी योग्यता थी, जिसके कारण वे अपना पीछा करनेवाले पञ्जोंवाले दरिन्दोंसे बच सके, यदि ऐसा होता तो इस आपत्तिके दूर होते ही वे फिर अपनी पुरानी चालमें धमसे गिर पड़ते; किन्तु यदि यह तब्दीली एक सच्चे विकासका एक आवश्यक अङ्ग है, यदि प्राणीके अन्दर सीधे रहनेकी एक असंदिग्ध इच्छा मौजूद थी जिसकी यह पूर्ति है, यदि एक उच्चतर स्वरूप प्राणीके भीतर पहलेसे गुप्त अवस्थामें मौजूद था जिसका वह सच्चा विकास अर्थात् बाहरकी ओर खुलना है, यदि यह स्वयं प्राणीकी एक स्वाभाविक अथवा आंगिक बढ़ती है, तब उस सूरतमें, यद्यपि इस शक्ति-विशेषके विकसित होनेका खास समय पंजेवाले दरिन्दोंद्वारा ही निश्चित होगया हो, तथापि उसका विकसित होना वा न होना हरगिज उन दरिन्दोंपर निर्भर न होसकता था। इसके अलावा, क्या हम यह मान सकते हैं कि "मनुष्य" जो जानवरोंका मालिक और उनका राजा है केवल जानवरोंसे भागकर मनुष्य बन गया? क्या मालिक और राजा प्रायः इसी तरह बन जाया करते हैं? क्या मनुष्य-रूपकी उत्पत्ति भयसे हुई? यदि ऐसा होता तो क्या यह अधिक सम्भव नहीं था कि ऐसी आपत्ति आनेपर वह कीड़ेकी तरह दुबकने और रेंगने लग जाता और कीड़ा बन जाता? शायद इस तरीकेपर वह दरिन्दोंसे ज्यादह अच्छी तरह बच सकता। क्या यह अधिक सम्भव नहीं है कि एक ज्यादह ऊंचे दर्जेकी शक्ति भीतरसे बैठी हुई बाहरके रूपमें तब्दीली कर रही थी—एक अधिक उन्नत रूपकी अस्पष्ट इच्छा

और अन्तरमें उसके एक प्रकारके पूर्वज्ञानने मिलकर मनुष्यके पूर्वजोंको जब उन्हें चीतोंसे अपनी रक्षा करनी पड़ी, तो बजाय एक दिशामें जानेके दूसरी दिशामें अर्थात् बजाय जमीनपर रेंगने लगनेके सीधे चलनेके लिये प्रेरित किया; और उस खास दिशामें प्राणीके बढ़नेकी यानी उसके विकासकी भीतरसे जो प्रेरणा होरही थी उसका पहला आन्तरिक अनुभव यह इच्छा ही थी ? वास्तवमें आजकल भी जब कभी मनुष्यको खतरेका सामना करना पड़ता है, तो क्या उसके भीतरका आदर्श ही इस बातका निर्णय नहीं करता कि मनुष्य उस खतरेका वा उस जैसे अन्य खतरोंका किस तरहपर सामना करेगा, और इसी प्रकार क्या अन्तमें यह भीतरका आदर्श ही उसके शरीरके तमाम अन्दाज और चालको रूप प्रदान नहीं करता ?

यह सब देख-भालकर और स्वयं मनुष्यकी हालतसे अन्दाजा लगाते हुए (और सबसे ज्यादह अहतियातका तथा सबसे अधिक वैज्ञानिक तरीका यही मालूम होता है कि हमारे मुख्य प्रमाण उस प्राणीसे लिये जाने चाहिये जिसके विषयमें हमें सबसे अधिक वाकफीयत है), मुझे निस्सन्देह यह मालूम होता है कि प्राणियोंमें एक वा अधिक अत्यन्त सरल प्रारम्भिक रूपोंसे धीरे धीरे रूपान्तर होते होते अनेक रूपों, वर्गों और जातियोंके पैदा होजानेमें यद्यपि प्राणीकी बाहरकी परि-स्थिति और बाहरके हालात भी एक बड़ा महत्वका हिस्सा लेते हैं, तथापि इस एकसे अनेक होने अथवा इस लगातार रूपान्तर होते रहनेका प्रधान कारण हमें प्राणीके भीतर ही खोजना होगा और वह कारण भीतरसे "बढ़ने" वा भीतरसे विकसित होनेका एक ऐसा नियम है जो कम वा अधिक समस्त चेतन-जगत्में पाया जाता है। इस भीतरके कारणको हमारे प्रधान कारण माननेकी एक वजह तो यह है क्योंकि, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, प्राणीके बाहरी रूपका उसकी अपनी आवश्यकताओं

और अपनी भीतरकी प्रकृतिके अनुसार खुलना अथवा बदलना एक ऐसी क्रिया है जो उसके निज अस्तित्वका एक कुदरती और आवश्यक अङ्ग है और जिसके स्थाई होनेकी सम्भावना होसकती है, किन्तु इस रूपका केवल बाहरी कारणोंसे बदलना अवश्यमेव कुछ न कुछ इत्तफाकिया और आरजी होगा और इस तरहकी तब्दीली यदि एक बार एक दिशामें होगी तो दूसरी बार किसी दूसरी दिशामें होसकती है ; दूसरी वजह यह है कि भीतरसे बाहरकी ओरको खुलना अथवा विकास होना समस्त रचनाके नियमके साथ सबसे अधिक संगत मालूम होता है। इस सिद्धान्तके अनुसार बाहरके हालात पशुओंमें रूपान्तर होनेका एक गौण किन्तु महत्वपूर्ण कारण समझे जावेंगे ; और यह मानना होगा कि ये बाहरके असर भीतरकी जबरदस्त बुनियादी प्रेरणाको रङ्ग और रेखा प्रदान करते हैं ; और इन दोनों शक्तियोंके बीचमें प्राणीकी अपनी वैयक्तिक चतुरता और उसका सौभाग्य, बाहरी हालातको भीतरकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये उपयोगी बनाने अथवा भीतरी जीवनको बाहरी हालातके अनुसार ढालनेके साधनोंका काम देंगे।

यदि "रूपान्तर" होनेके इन दो मुख्य सिद्धान्तोंमेंसे (अर्थात् एक भीतरी प्रेरणाद्वारा विकासका सिद्धान्त और दूसरा बाहरकी परिस्थितिके कारण विकास होनेका सिद्धान्त) हम बाहरकी परिस्थितिवाले सिद्धान्तकी ओर दृष्टि डालें—जो आजकलकी साइन्सको सबसे ज्यादह पसन्द है—तो इस सिद्धान्तके अनुसार रूपान्तर होना अर्थात् पशु-जातियोंका होना एक ऐसी अचेत और निरुद्देश्य क्रिया मालूम होती है जैसीकि समुद्रके अन्दर कोरल कीड़ोंके बनाये हुए घरों और उनके मुर्दा पिंजरोंसे धीरे धीरे रूप रूपकी चट्टानों (यानी कोरल चट्टानों) का तैयार होजाता। मानो प्राणियोंके अन्दर विकास वा विस्तारका कोई

स्वाभाविक नियम वा कोई खास उद्देश्य नहीं है, बल्कि किसी भी समय किसी भी दिशामें केवल बाहरके हालात उन्हें खेंचकर जिधर चाहें लेजासकते हैं। ये बाहरके हालात ही प्राणियोंकी अनेक शकलों और अनेक जातियोंमेंसे खास खासको छाँटनेका काम करते हैं; अर्थात् इनके द्वारा कमजोर तथा अनुपयोगी शकलें धीरे धीरे मिटती जाती हैं और ताकतवर तथा उपयोगी शकलें कायम रह जाती हैं; इसी तरह हजारों नसलोंमें जाकर प्राणियोंके रूपोंमें एक दूसरेके बाद छोटी छोटी हजारों ही तब्दीलियां होती रहती हैं और बढ़ती रहती हैं; और धीरे धीरे युगोंके बीत जानेपर एक ऐसा प्राणी पैदा होजाता है जो बाहरी कुदरतकी जरूरतके अनुसार अधिक आसानीसे झुक सकता है,जिसमें सब अलग अलग आवश्यकताओंके लिये अलग अलग अङ्ग बन जाते हैं, और जो तरह तरहके हालातके अनुकूल अपने तईं ढाल सकता है (अर्थात् मनुष्यकी उत्पत्ति होजाती है)—किन्तु इस प्राणीके अन्दर चेतनता न जाने कब और कहांसे इत्तफाकिया आजाती है, और प्राणीके समस्त विकासमें इस भीतरी चेतनताका प्रायः कुछ भी हिस्सा नहीं होता। डारविनके विकासवादका यही मुख्य स्वरूप है।

अब यदि हम भीतरी विकासके सिद्धान्तकी ओर नजर डालें तो उसके अनुसार विस्तार अथवा विकास आरम्भसे ही अत्यन्त सचेत अर्थात् ज्ञानसहित होता है। हर एक तब्दीली स्वयं चैतन्यके अन्दर शुरू होती है—पहले वह इच्छाके रूपमें प्रकट होती है, धीरे धीरे उससे विचार बनते हैं, फिर वह शरीरके अन्दर उतरती है, और क्रियाके रूपमें जाहिर होती है (यह रूप कुछ न कुछ दर्जेतक बाहरके हालातपर भी निर्भर होता है), और अन्तको वही तब्दीली शारीरिक रचना यानी अंगरचनाकी ठोस शकल अख्तियार करती है। यह समस्त गति कोरल चट्टानोंकी तरह बाहरसे नये नये अंगोंके जुड़ते रहनेके

समान नहीं बल्कि भीतरसे नित्य नये पत्तोंके फूटते रहने और पुराने पत्तोंके झड़ते रहनेके समान है, यह भीतरसे बाहरकी ओरको अधिकाधिक व्यक्त होते रहनेकी एक लगातार गति है। इस तरहकी प्रत्येक इच्छा अथवा प्रत्येक मानसिक स्थिति पहले दुःखके साथ भीतर अनुभव कीजाती है, फिर अपने मार्ग-की बाहरी रुकावटोंको पार करके जब वह नई शरीर-रचनाके रूपमें आजाती है, तब वह अपना काम कर चुकती है और फिर अचेत होजाती है—उसके बाद बहुत समयतक वह शारीरिक क्रिया खुद ब खुद ही चलती रहती है और अपना काम करती रहती है, यहांतक कि अन्तमें वह क्रिया भी बन्द होजाती है और वह रूप-विशेष जो उस क्रियाके लिये रचा गया था स्वयं लोप होकर किसी नये और अधिक उन्नत रूपके लिये जगह खाली कर देता है। इस सिद्धान्तके अनुसार जातीय विस्तार अथवा "रूपान्तर" होते रहना एक ऐसी गति है जिसमें हर तब्दीली पहले मानस-क्षेत्र अर्थात् चैतन्यके अन्दर शुरू होती है, फिर शरीरमें आकर अंग-रचनाका रूप धारण करती है,और अन्तको ऊपरके सूखे छिलकेके समान झड़कर फिक जाती है। इसीलिये इसे हम "ऊपरके पत्तोंके झड़ झड़कर गिरते रहने" का सिद्धान्त (Theory of Exfoliation) कह सकते हैं।

अपना मतलब स्पष्ट कर देनेके लिये हम आंखकी रचनाकी मिसाल लेते हैं। ऐमीबा (Amœba) अर्थात् प्रारम्भिक रूपके जन्तुओंके समस्त शरीरभरमें रोशनीको महसूस करनेकी एक धुंधलीसी और व्यापक शक्ति होती है, किन्तु उनके आंख नहीं होती, उनमें कोई ऐसी चीज नहीं होती जिसे हम दृष्टि कह सकें। तो भी रोशनीको महसूस करनेकी यह अस्पष्ट ताकत ऐमीबाके लिये उपयोगी होती है। उसके शिकारका साया उसके ऊपर पड़ता है और यह साया उसके अन्दर एक ऐसा ज्ञान पैदा करता है जिसमें और स्पर्शके ज्ञानमें अभी प्रायः कोई

अन्तर नहीं होता, इस ज्ञानद्वारा ही अपने मार्गका निर्णय करके ऐमीबा अपने शिकारकी ओर बढ़ता है। इस अस्पष्ट ज्ञान-पर ही ऐमीबाका जीवन थोड़ा-बहुत निर्भर होता है; इसीकी ओर उसका ध्यान लगा रहता है। धीरे धीरे उसके किसी वंशजके रूपतक पहुंचकर, यह ध्यान बजाय समस्त शरीरकी ओर जानेके शरीरके एक खास नुकतेपर आकर खास तौरपर जमने लगता है। अब उस शक्ति वा उस ज्ञानका एक खास स्थान नियत होजाता है; और उसी समयसे उस स्थानमें एक रूपान्तर होने लगता है और वहां उस खास कामके लिये एक खास तरहकी अंग-रचना होने लगती है; जिन जिन बातोंसे उस खास काममें यानी रोशनीके अनुभव करनेमें सहायता मिलती है वे सब बातें उस स्थानपर बढ़ने लगती हैं और जिन जिन बातोंसे उस कामको हानि पहुंचती है वे सब वहांसे हटने लगती हैं; और थोड़े ही समय बाद एक प्रारम्भिक ढङ्गकी आंख वहां बन जाती है। आज अपनी बनी-बनाई मुकम्मिल आंखोंको इस्तेमाल करते समय हमें इस बातका खयालतक नहीं होता कि हम आंखका इस्तैमाल कर रहे हैं; किन्तु नजरसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी ताकतें हमारे अन्दर मौजूद हैं वे सब धीरे धीरे हमारे किसी न किसी पूर्वज, छोटी श्रेणीके जन्तु, ने इस प्रकार एक एक कर प्रयत्न और चित्तकी एकाग्रता-द्वारा हमारे लिये विजय की थीं।

दूसरी मिसाल हम 'समाज' से लेते हैं। आज दिन मनुष्य-समाज बेचैन है, समस्त श्रेणियों और वर्गों के अन्दर असन्तोष-की एक अस्पष्ट भावना फैली हुई है। हमारे अन्दर न्याय और भ्रातृत्वका एक नया भाव उतर आया है जो सम्पत्ति-शास्त्र-वालोंकी 'आमद' और 'खप्रत' की केवल बकवादसे सन्तुष्ट नहीं होसकता। बहुत दिनोंतक यह नई भावना वा इच्छा अस्पष्ट और बिना रूपके रहती है, किन्तु आखिरकार यह रूप

धारण करती है; पहले यह एक दिमागी शकल अख्तियार करती है, पुस्तकें लिखो जाती हैं, तजवीजें कीजाती हैं; फिर कुछ समयके बाद इन नये विचारोंको रूप देनेके स्पष्ट उद्देश्यसे पुराने सामाजिक शरीरके अन्दर ही नये संगठन खड़े होजाते हैं; और बहुत अधिक समय न बीतने पावेगा कि ये नये विचार समाजकी सारी बाहरी इमारतको एक नये सिरेसे और नये ढंगसे रच डालेंगे। फिर कुछ सदियोंके बाद ये खयालात, जिनको असली शकल देनेके लिये आज हम इतने गहरे भावके साथ लड़ते और प्रयास करते हैं सामान्य यानी सब किसीके खयालात होजावेंगे, सब इन नई संस्थाओंको स्वीकार कर लेंगे, और फिर आगे चलकर ये खयालात भी थोड़े-बहुत निष्फल और शक्तिहीन होकर भीतरसे फूटनेवाली अन्य नई नई मानसिक उत्पत्तियोंके सामने स्वयं सिर झुकाने और मिट जानेके लिये तैयार होंगे।

आजकलके विकासके सिद्धान्तका यह मत है कि अनेक ऐमीबा कीड़ों और उनके वंशज अन्य जन्तुओंमें कभी इत्तफाकसे कोई एक ऐसा पैदा होगया कि रोशनीको महसूस करनेकी शक्ति जिसके समस्त शरीरमें एक समान व्याप्त होनेके बजाय किसी खास हिस्सेमें परिमित थी; इस इत्तफाकिया घटनाके कारण वह अपनी जातिके दूसरे जन्तुओंसे बड़े फायदेमें रहा और इसीलिये उसकी यह शारीरिक विशेषता कायम रह गई; तथा उसीसे यह "आंख" उसके वंशजोंको प्राप्त हुई; अथवा यदि मनुष्य-समाजकी मिसालको लें तो इस सिद्धान्तके अनुसार समाजके उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए जब नई आर्थिक परिस्थितियां पैदा होजावेंगी, तो वह कौम ही सबसे ज्यादह खुशहाल रहेगी जो सबसे ज्यादह कामयाबीके साथ और सबसे ज्यादह तेजीके साथ नई परिस्थितियोंके अनुसार अपने तईं ढाल लेगी। किन्तु यद्यपि निस्सन्देह इस विचारमें सचाई है, तथापि

सब कुछ कह चुकनेके बाद यह सिद्धान्त नाकाफी बल्कि साथ ही निर्बल भी मालूम होता है; यह पूरी समस्याके कमसे कम आधे हिस्सेको बिल्कुल छोड़ देता है। यदि हम अपने ही ऊपर नजर डालें तो, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, हमें दोनों शक्तियां, एक भीतरी शक्ति और दूसरी बाहरी शक्ति अपना अपना कार्य करती हुई और एक दूसरेपर प्रभाव डालती हुई दिखाई देती हैं। क्या यह मुमकिन नहीं कि जानवरोंमें भी ऐसा ही होता हो? लेमार्क (शिवेलियर-दी-लैमार्क १७४४-१८२६, पशु-विज्ञान और वनस्पति-विज्ञानका एक जबरदस्त फ्रांसीसी विद्वान्) निर्धन, अंधा, और सब जिसका मजाक उड़ाते थे, एक सच्चा कवि था। उसने कहा है—"जानवर छोटे और प्रारम्भिक रूपोंसे लेकर मुख्यकर अपनी इच्छाशक्तिके जोरसे बदलते बदलते अनेक बड़े बड़े रूपोंको पहुंचते हैं।"—दुनिया सुनकर हँस पड़ी और अभी-तक हँसती है। किन्तु लेमार्कके हृदयमें (जोकि कीड़ों और मकोड़ोंका उस समयतक अध्ययन करता रहा जबतक कि उसे इस नाशवान आंखसे उनका दिखाई देना बिल्कुल बन्द नहीं होगया) इन कीड़े-मकोड़ों आदिके साथ गहरी सहानुभूति थी, और इस सहानुभूतिद्वारा ही उसे इन कीड़े-मकोड़ोंके अन्दर भी मानव-प्रकृति और मानव-नियम काम करते हुए दिखाई दिये; और ज्यों ज्यों कि उसकी बाहरी दृष्टि मन्द होती गई त्यों त्यों ही उसके भीतरी नेत्र खुलते गये और उसे समस्त प्राणीमात्रके बीचका वह सच्चा सम्बन्ध जो सबको एक सूत्रमें बांधे हुए है, अपने अन्तरमें दिखाई देने लगा—वास्तवमें यह दृष्टि ही ईश्वरीय वा दिव्य दृष्टि थी; इस दृष्टिमें और आजकलके विकास-सिद्धान्तके अनुसार निर्बल पशुजातियों-के मिटते जाने और अधिक बलवान जातियोंके कायम रहने (Survival of the fittest) के केवल जड़ मशीन-वादमें उतना ही अन्तर है जितना कि तारोंभरे आकाशके साक्षात्

दृश्यमें और (भूगोल-सम्बन्धी) छोटे छोटे गोलोंके इस्तैमाल-पर घरके बच्चोंकी अध्यापिकाके पाठमें।

"ऊपरके पत्तोंके लगातार झड़ते रहने" (Exfoliation) के इस सिद्धान्तके अनुसार, जो वास्तवमें लैमार्कका सिद्धान्त था, समस्त सृष्टिके अन्दर एक ऐसी शक्ति काम कर रही है जो निरन्तर हर जातिके जन्तुओंको नित्य नये रूप धारण करनेकी ओर प्रेरणा करती रहती है। यह शक्ति चेतनताके मैदानमें सबसे पहले इच्छाके रूपमें जाहिर होती है। हर शकलके जीवों-के अन्दर असंख्य आवश्यकताएं और त्रुटियां सोई हुई हैं, इनमें तुच्छसे तुच्छ और सरलसे सरल आवश्यकताओं और त्रुटियोंसे लेकर अत्यन्त पेचीदासे पेचीदा और आदर्शसे आदर्श आवश्यकताओं और त्रुटियोंतक सब शामिल हैं। जैसे जैसे कि प्रत्येक नई इच्छा वा नया आदर्श सामने आता जाता है, वैसे वैसे ही प्राणीका अपने आसपासकी परिस्थितिके साथ विरोध उत्पन्न होने लगता है, फिर वह इच्छा सन्तुष्ट होकर प्राणीके शारीरिक रूप-परिवर्त्तनके रूपमें बाहर आजाती है और किसी दूसरे नये आदर्शकी उत्पत्तिके लिये मार्ग खुला छोड़ देती है। इसलिये यदि हम समस्त चेतन-सृष्टि (अर्थात् जीव-योनियों) के विस्तार और उसकी वृद्धिको समझनेके लिये कोई कुञ्जी ढूंढ़ना चाहते हैं तो मुमकिन है कि इस तरहकी कुञ्जी स्वयं 'इच्छा' के गुणोंको और उसके सच्चे अर्थको समझनेमें मिल सके। यहां-पर भी इस कुञ्जीका मिल जाना असंदिग्ध नहीं है, किन्तु सम्भव जरूर है।

अब प्रश्न यह है कि "मनुष्य" के अन्दर इच्छा क्या चीज है? यहांपर, जैसाकि हम शुरूहीमें सुझा चुके हैं, हमें फिर स्वयं "मनुष्य" की ओर लौटकर आना पड़ता है। यद्यपि हम इस बातको काफी साफ तौरपर देखते हैं कि इच्छा पशुओंमें भी काम करती है, और पशुओंके अन्दरकी इच्छा उसी

प्रकारकी है जैसीकि मनुष्यके अन्दरकी; तथापि पशुओंके अन्दर इच्छा अभी एक अपूर्ण और अस्पष्ट रूपमें होती है, किन्तु मनुष्यके अन्दर उसका रूप पूरी तरह उन्नत और रोशन होता है, इसके अतिरिक्त अपने भीतर हमें इस इच्छाका साक्षात् अनुभव है किन्तु जानवरोंमें हमें उसका केवल अनुमानद्वारा बोध होता है। इन दोनों कारणोंसे यदि हम इच्छाके स्वरूपको जानना चाहते हैं तो—पशुओंके अन्दरकी इच्छाके स्वरूपको जाननेके लिये भी—हमें "मनुष्य" के अन्दर इच्छाका अध्ययन करना चाहिये। अब सवाल यह हुआ कि, "मनुष्य" के अन्दर यह इच्छा क्या चीज है, जोकि उसकी समस्त उन्नति और उसके समस्त विकासका प्रवर्त्तक और उनका उत्पत्तिस्थान मालूम होती है? पहलेपहल 'इच्छा' एक ऐसी अनेक सिरों-वाली, और बदहोश चीज मालूम होती है जिसके यदि एक सिरको काट दिया जावे तो उसकी जगह अनेक ही सिर और निकल आते हैं, जिसमें न कोई युक्ति है और न किसी तरहका औचित्य; किन्तु जितना जितना इस विषयपर विचार किया जावे उतना उतना ही यह स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि नीचीसे नीची शकलकी इच्छाएं भी बराबर धीरे धीरे मनुष्यकी तमाम शक्तियोंको रूप देती और आजाद करती रहती हैं। अपने सबसे अधिक उन्नत और परिपक्व रूपमें—जैसाकि जिसे हम "प्रेम" कहते हैं उसमें—इच्छा ही मनुष्यकी समस्त क्रियाओंका सार और उनका समाधान है, इच्छाके अन्दर ही मनुष्यकी सब क्रियाएं आकर मिल जाती हैं, इस इच्छाके लिये ही उन सबका अस्तित्व है और इसके बिना वे सब व्यर्थ हैं। इस विषयपर आप जितना ज्यादह ध्यान देंगे उतना ही यह स्पष्ट होता जावेगा। छोटे दर्जेकी इच्छाएं—आत्मरक्षाकी इच्छाएं—भूख, प्यास, सत्ताकी इच्छा—ये सब भी हैं, किन्तु जिस समय ये इच्छाएं सन्तुष्ट होजाती हैं तो ये सब अपने तईं इसी प्रधान इच्छा

(यानी "प्रेम") में उलटकर खाली कर देती हैं; इसी एकमें मिलकर उनकी सार्थकता है। दूसरी सब इच्छाएं स्वयं कोई चीज नहीं—अपने अन्दर मनुष्यको सर्वथा लीन कर लेनेवाला, धनका लोभ, बड़े बननेकी इच्छा, विद्याकी इच्छा, यदि इन्हें अलहदा लिया जावे तो ये सब स्वयं अपने तईं नाश कर लेती हैं—किन्तु प्रेम अपने तईं चिरस्थाई बना लेता है;प्रेम वह ज्वाला है जो बाकी तमाम इच्छाओंको अपने लिये बतौर ईंधनके काममें लाती है। और क्या "प्रेम" जोकि इच्छाकी पराकाष्ठा है, मनुष्यके रूपकी पूजा और उस रूपके लिये इच्छाके रूपमें हमारे सामने नहीं आता ? यानी हमारे शरीरोंके अन्दर मनुष्यके शारीरिक रूपकी इच्छा; और हमारी अन्तरात्माओंके अन्दर भीतरके आदर्श मनुष्य-रूपको साक्षात् करने और उसकी पूजा करनेकी इच्छा, यानी उस "महातेज" के प्रकाशको साक्षात् करनेकी इच्छा जोकि दूसरोंके अन्दर विराजमान है, वह महातेज जोकि यद्यपि निस्सन्देह तमोवृत और मन्द भले ही होजाता है, तथापि जो आखिरकार सबसे हकीकी असलीयतोंमेंसे एक अथवा शायद एकमात्र सबसे हकीकी असलीयत है ? इसलिये मनुष्यके अन्दरकी इच्छाको चाहे किसी पहलूसे भी देखा जावे, ज्यों ज्यों वह खुलती जाती है और उसका अन्तिम ध्येय स्वयं उसके अपने सम्मुख अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है, त्यों त्यों वह हकीकी मनुष्य "रूप" को मुक्त और उसे व्यक्त करनेकी इच्छा बल्कि उत्कण्ठाका रूप धारण करती दिखाई देती है। क्या पशुओंके अन्दर भी तथा समस्त सृष्टिके अन्दर भी ऐसा ही होना सम्भव बल्कि आवश्यक नहीं है ? क्या इच्छा, अत्यन्त प्रारम्भिक और अस्पष्ट रूपोंमें शुरू होकर, शरीरधारी जन्तुओंकी तमाम अवस्थाओं और योनियोंमेंको अधिकाधिक स्पष्ट और अधिकाधिक बलवान होती हुई अन्तको इन्सानमें पहुंचकर स्वयं अपने अस्तित्वको पहचाननेवाली और खुले तौरपर हमारी

समस्त उन्नति और विकासका सबसे प्रधान कारण नहीं बन जाती ?

जो इच्छा कि समस्त सृष्टिके अन्दर व्यापक है वह एक ही इच्छा है। शुरूके जानवरोंमें यह इच्छा बिल्कुल एक प्रारम्भिक ढङ्गकी और अचेत होती है अर्थात् उसे स्वयं अपना ज्ञानतक नहीं होता, जानवरोंके शरीरोंमें कहीं वह एक बाल बाहर निकाल देती है और कहीं एक पैर, कहीं एक आंख बना देती है, कहीं पंजा, कहीं नथना, कहीं पर; इस प्रकार असंख्य शकलोंमें वह उस 'रूप', को साक्षात् करनेकी कोशिश करती रहती है जिसका उसने एक अस्पष्ट ढंगसे अपने भीतर अनुमान कर रखा है किन्तु उसकी सफलता सदा अधूरी ही रहती है। समस्त पशु-जगत् धीरे धीरे मनुष्यके शरीरको तैयार करनेके लिये एक व्यायाम-शाला, अथवा मनुष्य-जातिकी पाठशाला अथवा उसके नाटकके पीछेका कमरा है;किसी चिड़ियाघरकी सैर करना मानो मनुष्यके अपूर्ण रूपोंको देखना है, जिनमें कोई वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठे हैं, कोई घास कुतर रहे हैं, कोई जमीनमें सूराख कर रहे हैं; अथवा एक ऐसी जबरदस्त और अद्भुत भूमिकाके महान् पूर्वाभिनयको देखना है जिसके चरित्रको हम अभीतक भी न पूरी तरह देख सके हैं और न समझ सके हैं। इस तरहकी अर्ध-सचेत शुरुआतसे लेकर इच्छा बढ़ती जाती है, उसका लक्ष्य अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है, यहांतक कि उच्च श्रेणीके जन्तुओंमें जाकर, अर्थात् घोड़ा, कुत्ता, हाथी, पक्षी और अन्य अनेक जानवरोंमें, इच्छा एक ऐसी निर्भ्रान्त और अलग चमकनेवाली शक्ति बन जाती है जो उन्हें मनुष्यके अधिकाधिक निकट खींच लाती है, उनका मनुष्यके साथ एक ऐसे प्रकारका नाता जोड़ देती है जिसे सब स्वीकार करते हैं, और जितना स्पष्ट होसकता है उतने स्पष्ट ढंगसे उनके शारीरिक अंगोंमें परिवर्त्तन करती दिखाई देती है। अन्तको मनुष्यमें आकर इच्छा एक ऐसी शक्ति

बन जाती है जो मनुष्यकी अन्य समस्त शक्तियोंको अपनेमें लीन कर लेती है; प्रेम मनुष्यके दिव्य स्वरूपकी सचेत यानी ज्ञानसहित पूजा होजाता है; संतति पैदा करना स्वयं वह साधन है जिसके द्वारा उचित समयपर इच्छाका सर्वोच्च लक्ष्य साक्षात् किया जाता है। अन्तको जब और अधिक विकास होते होते सम्पूर्ण "मनुष्य"(Perfect Man) परम, सिद्ध अथवा पूर्ण पुरुष (यानी वह मनुष्य जिसने अपने सम्पूर्ण व्यापक अस्तित्वको साक्षात् कर लिया हो) प्रकट होता है तब उस समय समस्त प्रकृतिकी कुंजी हाथ आजाती है, प्रत्येक प्राणी अपना उचित स्थान ग्रहण करता है और उसके अस्तित्वका एक "असली अर्थ बतानेवाला" मिल जाता है, और अखिरकार सृष्टिका उद्देश्य स्पष्ट होजाता है।

इस सिद्धान्तमें जिसे हम "ऊपरसे पत्तोंके झड़ते रहने" (Exfoliation) का सिद्धान्त कहते हैं और उस अति संकीर्ण ढंगके "विकास" (Evolution) में जिसे आजकलकी साइन्स मानती है कई भेद हैं जिनमें एक मुख्य भेद यह है—कि यह सिद्धान्त कार्य-कारणके क्रमकी दृष्टिसे बजाय उस चीजको सबसे अधिक महत्व देनेके जो "समय" के लिहाजसे सबसे पहले प्रकट होती है, उस चीजको सबसे अधिक महत्व देता है और उसीपर अपना सबसे अधिक ध्यान जमाता है जो "समय" के लिहाजसे सबसे अन्तमें आती है; यह सिद्धान्त हमें इस सचाईकी याद दिलाता है कि प्रायः किसी भी घटना-के क्रममें जो चीज महत्वकी दृष्टिसे और दर्जेके खयालसे सबसे अव्वल होती है वह बाहरी रूपमें सबसे अन्तमें प्रकट होती है। जैसेकि पौदोंके बढ़नेमें हम देखते हैं कि पहले पत्ते एक दूसरेके बाद निकलते रहते हैं, फिर एक दूसरेके अन्दर पंखड़ियां निकलती रहती हैं—फिर लगातार छिलके, पत्तियां, पंखड़ियां, केसर और न जाने क्या क्या बनते और फूटते रहते हैं; किन्तु

इस तमाम गतिका लक्ष्य, वह चीज जो एक माइनेमें इस तमाम चक्रको चालू करती है, यानी बीज बिल्कुल सबसे अन्तमें प्रकट होता है। अथवा जब कभी कोई ज्वालामुखी फूटता है तो सबसे पहले जमीनकी सबसे ऊपर ऊपरकी सतहें कड़कती और उभरती हैं,फिर इनके नीचेकी तहें, फिर पिघली हुई धातूएं आदि निकलकर बहती हैं, और सबसे अन्तमें भीतरकी वे अग्नियां और शक्तियां ऊपर आती हैं जिन्होंने इस समस्त काण्ड-को प्रारम्भ यानी चालू किया था। जो चीज समयके लिहाजसे सबसे पहले प्रकट होती है अर्थात् जो बाहरी दुनियामें सबसे पहले दिखाई देती है वह—एक मकानके बननेकी सूरतमें पहले ईंटोंको तैयार करना है; फूलकी सूरतमें कलीके सबसे नीचेकी पत्तियां हैं; ज्वालामुखीकी सूरतमें जमीनकी ऊपरी सतहका हिलना है; और इस "पृथ्वी"परके "जीवन" (अर्थात् चेतन जगत् अथवा शरीरधारी जन्तुओं) की सूरतमें अत्यन्त प्रारम्भिक अंगहीन गोल-मटोल नन्हें जन्तुओं (Protoplasms and primordial Cells) का पैदा होना है। किन्तु ईंटें मकानका कारण नहीं हैं (यदि वास्तवमें "कारण" शब्दका उपयोग यहांपर ठीक हो तो), बल्कि स्वयं मकान—अथवा मकानकी कल्पना—ईंटोंका करण है; और प्रारम्भिक गोलमटोल नन्हें जन्तु (Cells) "मनुष्य" का आदि कारण (Origin) नहीं, बल्कि "मनुष्य" उन जन्तुओंकी असलीयत वा उनका असल (Original) है। समुद्रके कीड़ों (Sea-anemones), कीचड़की मछलियों (Mud-fish), बड़े बड़े चमगादड़ों (Flying Foxes) और हाथियोंकी उपपत्ति अर्थात् उनकी वजह तस्मीया मनुष्यके अन्दर खोजनी होगी, मनुष्य ही उनके अन्तर्गत है। और मनुष्यके शरीरमें रीढ़की हड्डी होनेका कारण यह नहीं है कि मनुष्यके पूर्वजोंके रीढ़की हड्डी थी; किन्तु इन पूर्वज पशुओंके रीढ़की हड्डी होनेका कारण यह है अथवा इसीलिये उनके रीढ़की

हड्डी थी और है क्योंकि वे "मनुष्य"के अग्रगामी, उसके पेशरौ और उसीकी शाखाएं हैं।

अनेक बार यह विचार प्रकट किया जाचुका है कि बड़े बड़े भौतिक परिवर्त्तनों यानी इनकलाबोंके बाद पहले मानसिक क्रांतियां और फिर अन्तमें धार्मिक क्रान्तियां हुआ करती हैं— जैसेकि सिकन्दरकी दिग्विजयोंके बाद सिकन्दरिया (मिश्रका नगर और बन्दरगाह जिसे सिकन्दर-ए-आजमने ईसासे ३३२ साल पूर्व कायम किया था, किसी समय अपने विद्या-प्रचारके लिये विख्यात था।) के मदरसोंमें विद्या-प्रचारका बढ़ना और उसके बाद ईसाई मतका कायम होना; अथवा जिस तरह कि हमारे अपने समयकी मशीनों और कलों, कारखानोंकी वृद्धिके बाद और उससे मिली हुई साहित्य और विज्ञानकी जबरदस्त उन्नति, और अब इसके बाद जाहिरा तौरपर एक महान् सामाजिक पुनरुज्जीवनकी आमद; किन्तु मैं समझता हूं कि यदि इस विषयपर फिरसे विचार किया जावे तो मुमकिन है कि हम इतना अधिक पहलेकी तब्दीलियोंको बादकी तब्दीलियोंका कारण न मानें जितना कि उन्हें बादकी तब्दीलियोंके आनेका सूचना और उनके शुरूके बाहरी और प्रत्यक्ष चिन्ह समझें। जब कभी कोई मनुष्य अपने भीतर किसी नई धार्मिक सचाईका उभार महसूस करता है; तो उसे साफ दिखाई देजाता है कि वह सचाई तुरन्त ही बाहरकी अमली दुनियामें कायम नहीं हो-सकती—खासकर उस समयतक कायम नहीं होसकती जबतक कि पहले समाजकी प्रचलित व्यवस्थाका नाश न कर दिया जावे—इस तरहका नाश कि जिसके पूरा करनेमें वह अपने तईं राक्षसी (Satanic) तक महसूस करने लगता है; इसके बाद मानसिक क्रान्ति आती है; और केवल इस सबके अन्तमें नई सामाजिक व्यवस्था नई प्रेरणाको लेकर कायम होती है। जब यह नई प्रेरणा पूरी तरह बाहरी रूपमें आजाती है, तब कुछ

समयके बाद फिर अन्तरमें एक और नई प्रेरणा उत्पन्न होती है, और फिर उसी तरहके परिवर्त्तनोंका क्रम चल पड़ता है। इस प्रकार कहा जासकता है कि प्रत्येक नये युगका कार्य अपने भूतकालकी नींवपर सामाजिक इमारतको ऊपर लेजाना नहीं होता, बल्कि उस भूतकालमेंसे बाहर निकलकर उसे छिलकेकी तरह अलग फेंक देना होता है; निस्सन्देह केवल इतनी बात जरूर है कि इस तरहके मामलोंमें जहांपर कि विचार करनेके सब तरीके ही नाकाफी और अधूरे हैं यह कहना कठिन है कि किसी विषयपर विचार-करनेका एक तरीका ज्यादह सच्चा और दूसरा कम सच्चा है। जैसा हम पहले कह चुके हैं हमें चीजको मुख्तलिफ पहलुओंसे देखनेकी कोशिश करनी चाहिये।

हमें विचार करनेके लिये उपमाओंका उपयोग मजबूरन् करना ही पड़ता है—जैसे फूलके भीतरसे खुलनेकी उपमा अथवा कोरल चट्टानके जम जमकर बढ़ते जानेकी उपमा—और सम्भवतः हम बहुत कुछ तकलीफसे बच जावें यदि हम लम्बे लम्बे शब्दोंके उपयोगद्वारा इस सचाईको छिपानेकी कोशिश न करें कि साइन्स तथा फलसफेमें हमारी तमाम कल्पनाएं केवल इस प्रकारकी उपमाएंमात्र ही हैं—किन्तु असलीयत अभीतक इन तमाम कल्पनाओंके नीचे और उनके पीछे छिपी हुई है।

शायद, यदि हमें "कारण" (Cause) शब्दका इस्तेमाल करना ही है तो अच्छा हो यदि हम इस शब्दका उपयोग उसके पुराने अर्थोंमें करें, जिसमें कि अन्तिम कारण (Final Cause) और निमित्त कारण (Efficient Cause) एक ही होते हैं (जिसे अरस्तू Eidos कहता था)—अर्थात् कारण शब्दका उपयोग हम इतना बाहरकी घटनाओंको एक दूसरेके साथ जोड़नेके लिये न करें जितना कि एक समूहकी हर घटनाको उस विचार वा उस भावनाके साथ जोड़नेके लिये करें जोकि

उस समस्त समूहके अन्तर्गत है। उदाहरणके लिये सौल (Saul) में मृत्युके समयके गाने(Dead march)के स्वरों (अथवा किसी भी रागके स्वरों) को लीजिये। हम यह नहीं कह सकते कि एक स्वर दूसरे स्वरका कारण है, किन्तु यह हम कह सकते हैं कि हर एक स्वर कार्य रूपसे उस भावनाके अधीन है अथवा उस भावनापर निर्भर है जोकि तमाम गायनकी प्रेरक है—जो कि उस गायनका उत्पत्ति-स्थान और साथ ही उसके गाये जानेका परिणाम भी है—वह भावना ही उस गायनका शुरूका अक्षर और अन्तिम अक्षर 'अलिफ' और 'ये' दोनों है। इसी तरहपर किसी मकानके अन्दर पहली मंजिल दूसरी मंजिलका कारण नहीं है, न दूसरी मंजिल तीसरी मंजिलका कारण है और न तीसरी मंजिल अपने ऊपरकी छतका कारण है; किन्तु ये सब असली चीजें और तमाम मकानका मकान एक ऐसी मानसिक चीज (यानी विचार) के साथ गहरा सम्बन्ध रखते हैं जिसका कि मैदान (Plane) ही उनके मैदानसे भिन्न है और जिसका असलीयत होना भी एक दूसरे ही अर्थमें सच है।

इस दृष्टिसे साइन्सका यह विचार कि किसी भी पदार्थके अन्दर उसके छोटे छोटे अणुओंकी मिलकर एक तरतीब अपने बादकी तरतीबका कारण होती है अथवा आकाशके नक्षत्रोंकी एक तरतीबसे उसके बादकी तरतीबका फैसला होता है, बिल्कुल एक भ्रान्त विचार मालूम होता है। असलीयतमें आगे और पीछेकी दोनों तरतीबोंका फैसला करनेवाली एक तीसरी चीज है जो इन अणुओं और नक्षत्रोंसे बिल्कुल एक अलग ही किस्मकी हस्ती है। निस्सन्देह भौतिक घटनाओंमें एक दूसरेके बादकी तरतीबके इत्तफाकिया "नियम" मिल सकते हैं, और ये नियम व्यवहारके लिये बड़े उपयोगी भी होते हैं, किन्तु किसी क्षण भी—केवल ऊपरी होनेके कारण—वे नियम गलत साबित होसकते हैं। मिसालके तौरपर मुमकिन है कि कोई कीड़ा

एक गुलदावलीके फूलकी पंखड़ियोंके निकलने और बढ़नेका गौरसे मशाहदा करके उनके रंग और आकारके बदलने और उसके क्रमके विषयमें एक 'नियम' बना डाले, यह नियम कुछ समयके लिये शायद् जबतक पंखड़ियां निकल रही हैं तबतक ठीक साबित होगा, किन्तु ज्यों ही फूलके अन्दरकी केसर फूटेगी त्यों ही यह नियम बिल्कुल गलत साबित होजावेगा। अथवा एक और मिसाल यह है कि भौतिक साइन्स एक ऐसे आदमीकी तरह काम करती है जो किसी वृक्षके मुख्तलिफ पत्तोंके कारणको जाननेके लिये बजाय इसके कि पहले टहनियों और तनेके साथ इन पत्तोंके सम्बन्धका पता लगावे और इस प्रकार एक अप्रत्यक्ष ढंगसे अपनी समस्याको हल करे, उन मुख्तलिफ पत्तोंके दरमियान ही प्रत्यक्ष कार्य कारणका सम्बन्ध खोजनेकी कोशिश करता है। इस तरहकी साइन्स "मानव" जगत्‌की केवल सबसे ऊपरकी सतहतक ही रह जाती है।

इस तरहकी बातोंपर विचार करनेके लिये जैसाकि शौपन-हायर (Schopen Hauer १७८८—१८६०, जर्मनीका एक सुविख्यात विद्वान् और दार्शनिक जिसके विचार बहुत कुछ बौद्ध फलसफेसे मिलते हुए बताये जाते हैं और जिसने उप-निषदोंकी भी बड़ी कदर की है) बताता है "संगीत" का दृष्टान्त बड़ा अद्भुत और फबता हुआ दृष्टान्त है, क्योंकि किसी राग वा रागिनीको रचते समय मनुष्य इस बातको समझता है कि वह एक ऐसी अपनी ही सृष्टिकी रचना कर रहा है जो "कुदरत" की उस दूसरी सृष्टिसे साफ अलग है जिसकी रचनामें कि उसे अपना हाथ कहीं दिखाई नहीं देता। वह जानता है कि इन दोनों सृष्टियोंकी पृथकतामें किसी तरहकी भ्रान्ति नहीं हो-सकती। अब फर्ज कीजिये कि, एक ऐसा मनुष्य जिसमें गानेका माद्दा वा रस नहीं है गायनाचार्य बीथोवेन (Beethoven १७७०-१८२७, जर्मनीका एक अत्यन्त विख्यात और सुयोग्य

संगीत-विशारद्) के किसी पूरे गीतके लिखे हुए विन्यासका गौरसे इम्तहान करके उसके स्वरोंकी छान-बीन करना चाहे, तो उसकी ठीक वही स्थिति होगी जो उस मनुष्यको है जो केवल वैज्ञानिक यानी दिमागी तरीकोंसे "कुदरत" का इम्तहान करके उसकी छान-बीन करना चाहता है। खोज करते करते उस मनुष्यको पता चल जायगा कि स्वरोंके अन्दर कई स्वर-समूह बार बार आते हैं, वह उनके बार बार आनेके सम्बन्धमें अनेक कायदे कायम करेगा और उनके विषयमें तरह तरहके विचित्र नियम बनावेगा, और कई अद्भुत अपवाद भी दर्शावेगा, बहुत मुमकिन है कि किसी पृष्ठके ऊपर वह एक दो अन्तरे भी विना देखे पहलेसे बता सके; उसका ग्रन्थ बड़ा विद्वत्तापूर्ण होगा और एक खास दृष्टिसे बड़ा मनोरंजक भी होगा, किन्तु बात ध्यान देनेकी यह है कि यह सब करते हुए भी अपने 'विषय' का कुछ भी असली ज्ञान प्राप्त करनेसे वह कितना दूर रहेगा? और यदि वह अपना तरीका बदल डाले, यदि वह अपने कानको सिधा ले, यदि वह उस पूरे रागको बार बार सुने, यहांतक कि वह उसके मतलबको समझ सके और राग उसे कण्ठाग्र होजावे; तब जाकर वह कमसे कम एक दर्जेतक इस बातको जान सकेगा कि हर एक स्वरके एक खास जगहपर होनेका क्या कारण है, वह प्रत्येक स्वरकी मुनासबतको देख लेगा और उसके खास जगह होनेके "नियम" को अपने भीतर अनुभव करेगा, और फिर मुमकिन है कि किसी नये रागकी सूरतमें पृष्ठके ऊपरके कई अन्तरोंको पहलेसे बता सके! राग केवल स्वरोंके इम्तहान करने और मुकाबला करनेसे नहीं समझा जासकता, बल्कि मनुष्यकी गहरीसे गहरी भावनाओंके साथ उन स्वरोंके सम्बन्धको अनुभव करनेसे समझा जासकता है; इसी तरह "कुदरत" नियमोंद्वारा नहीं समझी जासकती, किन्तु उस समय समझमें आती है जिस समय वह "मनुष्य" का

एक शरीर बन जाती है—अथवा कहना चाहिये जिस समय "मनुष्य" इस बातको अनुभव करने लगता है कि "कुदरत" अर्थात् समस्त विश्व उसका एक विराट शरीर है और वह स्वयं उस सबके अन्दर व्यापक है, अथवा "कुदरत" "मनुष्य" के आन्तरिक अस्तित्वकी एक अद्भुत टीका और उसकी एक प्रतिमा है।

हमारे अन्दर एक इस प्रकारका ज्ञान और इस प्रकारकी चेतना मौजूद है जो हमारे अधिक स्पष्ट यानी अधिक ऊपरी और अधिक सचेत विचारोंका आधार है—जैसेकि अपने शरीरके अंगोंका ज्ञान, अथवा अपने हृदयके भावों (प्रेम आदि) का ज्ञान, अथवा अपने गहरे मानसिक विश्वासोंका ज्ञान। जिस समय दिमाग सोता रहता है उस समय भी यह व्यवस्थित ज्ञान बराबर बढ़ता रहता है। यह ज्ञान किसी प्रकार भी परम अथवा निर्भ्रान्त नहीं होता, तथापि मनुष्यके इतिहासमें इस ज्ञानके आधारपर ही सदा वे स्वयंसिद्ध माने जानेवाले असूल कायम होते हैं जिनके ऊपर मनुष्यकी वैज्ञानिक तथा अन्य दिमागी इमारतें खड़ी कीजाती हैं। मिसालके तौरपर उकलैदसके 'स्वयं सिद्ध असूल' (Axioms) हमारे आजकलके व्यवस्थित ज्ञानका एक अंग हैं, और उन्हींकी नींवपर हमारी तमाम रेखागणित-सम्बन्धी इमारतें खड़ी कीजाती हैं। किन्तु जैसे जैसे यह व्यवस्थित ज्ञान बढ़ता जाता है वैसे वैसे ही हमारे ऊपरी ज्ञान-की नींव बदलती जाती है और उसके ऊपर खड़ी हुई इमारतें गिर पड़ती हैं। मिसालके तौरपर आजकलकी हमारी तमाम साइन्स इस नींवपर खड़ी है कि हमने जड़ मशीनके अर्थोंमें कार्य-कारणके सम्बन्धको अपने इस व्यवस्थित ज्ञानका एक बुनियादी तत्त्व मान रक्खा है; किन्तु ज्यों ही यह बुनियाद हटी कि तमाम इमारत धड़से गिर पड़ेगी और फिर नये सिरेसे दूसरी इमारत खड़ी करनी पड़ेगी। उसी तरह जब पशुओंके

न्दर हमें "मानव-रूप" बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देने लगेगा—इतना पष्ट कि हम किसी तरह भी उसे अपनी चेतनासे बाहर न कर सकेंगे—तो यह चेतना ही इस विषयके हमारे तमाम विचारोंके लिये एक नयी बुनियाद वा नये 'स्वयंसिद्ध तत्त्व' बन जावेगी, और फिर विकास-वादके सिद्धान्तको जैसा अभी-तक साइन्स उसे समझे बैठी है, उससे बिल्कुल ही उलटकर एक दूसरी तरह समझना होगा।

इस प्रकार यद्यपि आजकलकी साइन्सका यह तरीका, यानी तजरबे करने, तहकीकातें करने और जड़ कोरल चट्टानके समान सृष्टिके बढ़ने और बदलनेमें विश्वास करनेका यह तरीका अपने दायरेके अन्दर बड़ा ही कीमती है, तथापि हमें इस बातको भूलना न चाहिये कि इस तरीकेपर मनुष्यकी चेतनता केवल थोड़े समयतक ही उन्नति करती है, इससे आगे नहीं—और इस चेतनताकी असली उन्नति मनुष्यके भीतरसे आन्तरिक विकासद्वारा होती है, और इस असली उन्नतिका अर्थ है हमारी तमाम विचार-पद्धतियों यानी खयालातकी इमारतोंकी नींवोंका लगातार टूट टूटकर गिरते रहना। अर्थात् जबकि मनुष्यकी इस व्यवस्थित चेतनताका उन्नति करते रहना आवश्यक, असली और नित्य है, तो दूसरी ओर मनुष्यकी ऊपरी विचार-पद्धतियोंका उभरते और गिरते रहना इत्तफा-किया, ऊपरी और अनित्य है।

इसलिये जिसे हम बाहरकी "कुदरत" कहते हैं उसके अन्दर अपने चारों ओर जो तब्दीलियां हमें लगातार होती हुई दिखाई देती हैं उनकी कुंजीके लिये और उनके मतलबको समझनेके लिये अन्तको हमें "मनुष्य"के अन्दर ही—अर्थात् अपने भीतरके गहरेसे गहरे और मार्मिकसे मार्मिक अनुभवके अन्दर ही—खोज करनी होगी; और ज्यों ज्यों हमारी इस भीतरी चेतनताके अन्दर नये पत्तोंकी तरह नई नई सचाइयां खुलती जावेंगी त्यों

त्यों ही पद पदपर हम बाहरकी "प्रकृति" और बाहरके "इति-हास" को अधिकाधिक समझते जावेंगे और समझ सकेंगे। सम्पूर्ण सृष्टि एक विशाल पुष्पके समान, जिसके एक ही केन्द्रके चारों ओर छोटे-बड़े अनेक चक्र हैं, "मनुष्य" के असली रूपके प्रकट होनेके इन्तजारमें उस भावी उत्पत्तिको केन्द्र मानकर उसके चारों ओर घूम रही है; एक दर्जे के बाद दूसरा दर्जा; सब-से भीतरकी ओर सामाजिक जीवन और इतिहास, फिर पशु-जगत्, उसके बाद वनस्पतियां तथा सबसे बाहरकी ओर धातुएं अर्थात् मादनियात—इस पूर्ण मानव-रूपकी उत्पत्तिके लिये ही समस्त सृष्टि अभीतक तरह तरहकी यातनाएं और दुःख सहती रही है। और यदि समयके लिहाजसे सबसे बाहरके चक्र सृष्टिमें सबसे पहले प्रकट हुए हैं तो इस सम्पूर्ण प्रयोगपर अन्तको रोशनी डालनेवाला केवल यह अन्तिम विकास (अर्थात् असली "मनुष्य" का प्रकट होना) ही होगा, और जिस तरह स्वर्ग (Eden Garden) और हजरत आदमकी कथामें आता है वैसे ही इस सूरतमें भी सम्पूर्ण मनुष्यरूपके प्रकट होते ही सृष्टिका कार्य निश्चयरूपसे पूरा होजाता है।

❋ समास ❋

छपकर तैयार है   मूल्य ॥=)

भड़ाम सिंह शर्मा



जी० पी० श्रीवास्तव

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला

स्थायी ग्राहकोंके लिये नियम—

१—प्रत्येक व्यक्ति ॥) आने प्रवेश-शुल्क जमाकर इस मालाका स्थायी ग्राहक बन सकता है। उक्त ॥) लौटाये नहीं जायंगे।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक पौन मूल्यमें मिल सकेगी। एकसे अधिक प्रतियां पौन मूल्यमें मंगा सकेंगे।

३—पूर्व प्रकाशित पुस्तकोंके लेने न लेनेका पूर्ण अधिकार स्थायी ग्राहकोंको होगा, पर सालभरमें जितनी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, उनमेंसे कमसे कम ६) रु० की पुस्तकें प्रति वर्ष अवश्य लेनी होंगी।

४—पुस्तक प्रकाशित होते ही उसकी सूचना स्थायी ग्राहकोंके पास भेज दी जाती है। स्वीकृति मिलनेपर पुस्तक वी० पी० द्वारा सेवामें भेजी जाती है। जो ग्राहक वी० पी० नहीं छुड़ावेंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकोंकी श्रेणीसे काट दिया जायगा। यदि उन्होंने वी० पी० न छुड़ानेका यथेष्ट कारण बतलाया और वी० पी० खर्च (दोनों ओरका) देना स्वीकार किया तो उनका नाम ग्राहक श्रेणीमें पुनः लिख लिया जायगा।

५—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मालाके स्थायी ग्राहकोंको मालाकी नव-प्रकाशित पुस्तकोंके साथ अन्य प्रकाशकोंकी कमसे कम १०) रु० की लागतकी पुस्तकें भी पौन मूल्यमें दी जायंगी, जिनकी नामावली हर नव-प्रकाशित पुस्तककी सूचनाके साथ भेजी जाती है।

६—हमारा वर्ष विक्रमीय संवत्से आरम्भ होता है।

मालाकी विशेषतायें

१—सभी विषयोंपर सुयोग्य लेखकों द्वारा पुस्तकें लिखायी जाती हैं।

२—वर्तमान समयके उपयोगी विषयोंपर अधिक ध्यान दिया जाता है।

३—मौलिक पुस्तकें ही प्रकाशित करनेकी अधिक चेष्टा की जाती है।

४—पुस्तकोंको सुलभ और सर्वोपयोगी बनानेके लिये कमसे कम मूल्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है।

५—गम्भीर और रुचिकर विषय ही मालाको सुशोभित करते हैं।

६—स्थायी साहित्यके प्रकाशनका ही उद्योग किया जाता है।

६—सेवासदन

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"

हिन्दी-संसारका सबसे बड़ा गौरवशाली सामाजिक उपन्यास। यह हिन्दीका सर्वोत्तम, सुप्रसिद्ध और मौलिक उपन्यास है। इसकी खूबियोंपर बड़ी आलोचना और प्रत्यालोचना हुई है। पतित-सुधारका बड़ा अनोखा मन्त्र, हिन्दू-समाजकी कुरीतियां जैसे अनमेल विवाह, त्यौहारोंपर वेश्यानृत्य और उसका कुपरिणाम, पश्चिमीय ढङ्गपर स्त्री-शिक्षाका कुफल, पतित आत्माओंके प्रति घृणाका भाव इत्यादि विषयोंपर लेखकने अपनी प्रतिभाकी वह छटा दिखायी है कि पढ़नेसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। कुछ दिनोंतक सभी पत्रोंकी आलोचनाका मुख्य विषय यह उपन्यास रहा है। दूसरा संस्करण, मनोहर स्वदेशी कपड़ेकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य २॥)

७—संस्कृत कवियोंका अनोखी सूझ

लेखक पं० जनार्दन भट्ट एम०ए०

संस्कृतके विविध विषयोंके अनोखे भावपूर्ण उत्तमोत्तम श्लोकोंका हिन्दी भावार्थ सहित संग्रह। यह ऐसी खूबीसे लिखा गया है कि साधारण मनुष्य भी पढ़कर आनन्द उठा सकें। व्याख्यानदाताओं, रसिकों और विद्यार्थियोंके बड़े कामकी पुस्तक है। दूसरा संस्करण, मूल्य ।=)

८—लोकरहस्य

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चटर्जी

यह "हास्यरस" पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें वर्तमान धार्मिक, राज-नीतिक और सामाजिक त्रुटियोंका बड़े मजेदार भाव और भाषामें चित्र खींचा गया है। पढ़िये और समझ समझकर हँसिये। कई विषयोंपर ऐसी शिक्षा मिलेगी कि आप आश्चर्य्यमें पड़ जायंगे। अनुवाद भी हिन्दीके एक प्रसिद्ध और अनुभवी हास्य-रसके लेखककी लेखनीका है। बढ़िया एण्टिक कागजपर छपी पुस्तकका मूल्य ॥=)

९—खाद

लेखक श्रीयुक्त मुख्तारसिंह वकील

भारत कृषिप्रधान देश है। कृषिके लिये खाद सबसे बड़ा आवश्यकीय पदार्थ है। बिना खादके पैदावारमें कोई उन्नति नहीं की जा सकती। यूरोपवाले खादके बदौलत ही अपने खेतोंमें दूनी चौगुनी पैदावार करते हैं। इसलिये इस पुस्तकमें खादोंके भेद तथा किन अन्नोंके लिये कौन सी खादकी आवश्यकता होती है इनका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया गया है, चित्रों द्वारा भली प्रकार दिखलाया गया है। इसे प्रत्येक कृषक तथा कृषिप्रेमियोंको अवश्य रखना चाहिये। मूल्य सचित्र और सजिल्दका १)

१०—प्रेम-पूर्णिमा

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"

प्रेमचन्दजीकी लेखनीके सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने उनके 'प्रेमाश्रम' "सप्तसरोज" और "सेवासदन" का रसास्वादन किया है उनके लिये तो कुछ लिखना व्यर्थ है। प्रत्येक गल्प अपने २ ढङ्गकी निराली है। जमींदारोंके अत्याचारका विचित्र दिग्दर्शन कराया गया है। भाषा और भावकी उत्कृष्टताका अनूठा संग्रह देखना हो तो इस ग्रन्थको अवश्य पढ़िये। इसमें श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"जीकी १५ अनूठी गल्पोंका संग्रह है। बीच बीचमें चित्र भी दिये गये हैं। खादीकी सुन्दर सजिल्द पुस्तकका मूल्य २)

११—आरोग्यसाधन

लेखक म० गांधी

बस, इसे महात्माजीका प्रसाद समझिये। यदि आप अपने शरीर और मनको प्राकृत रीतिके अनुसार रखकर जीवनको सुखमय बनाना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-शरीरको पाकर संसारमें आनन्दके साथ कुछ कीर्ति कमाना चाहते हैं तो महात्माजीके अनुभव किये हुए तरीकेसे रहकर अपने जीवनको सरल, सादा और स्वाभाविक बनाइये और रोगमुक्त होकर आनन्दसे जीवन बिताइये। तीसरा संस्करण, १३० पृष्ठकी पुस्तकका दाम केवल ।=)

१२—भारतकी साम्पत्तिक अवस्था

लेखक श्रीयुक्त राधाकृष्ण झा, एम० ए०

यदि भारतकी आर्थिक अवस्था, यहांके वाणिज्य-व्यापारके रहस्यों, कृषिकी दुर्व्यवस्था और मालगुजारी तथा अन्यान्य टैक्सोंकी भरमारका रहस्य जानना चाहते हैं, यदि आप यहांका उत्पन्न कच्चा माल और वह कितनी कितनी संख्यामें विलायतको ढोया चला जाता है, उसके बदलेमें हमें कौन कौनसा माल दिया जाता है, आने और जानेवाले मालोंपर किस नीयतसे कर बैठाया जाता है, यहां प्रत्येक वर्ष कहीं न कहीं अकाल क्यों पड़ता है, हम दिनपर दिन क्यों कौड़ी कौड़ीके मोहताज हो रहे हैं, इत्यादि बातोंको जानना चाहते हैं तो इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़ें। यह पुस्तक साहित्यसम्मेलनकी परीक्षामें है। ६५० पृष्ठकी खादीकी सुन्दर सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४॥)

१३—भाव चित्रावली

चित्रकार श्रीधीरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय

इस पुस्तकमें एक ही सज्जनके विविध भावोंके १०० रंगीन और सादे चित्र दिखलाये गये हैं। आप देखेंगे और आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि ऐं! सब चित्रोंमें एक ही आदमी! गङ्गोपाध्याय महाशयने अपनी इस कलासे समाज और देशकी बहुतसी कुरीतियोंपर बड़ा जबर्दस्त कटाक्ष किया है। चित्रोंके देखनेसे मनोरञ्जनके साथ साथ आपको शिक्षा भी मिलेगी। खादीकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४)

१४—राम बादशाहके छः हुक्मनामे

स्वामी रामतीर्थजीके छः व्याख्यानोंका संग्रह उन्हींकी जोरदार भाषामें। स्वामीजीके ओजस्वी और शिक्षाप्रद भाषणोंके बारेमें क्या कहना है, जिसने अमरीका, जापान और यूरोपमें हलचल मचा दी थी। इन व्याख्यानोंको पढ़कर प्रत्येक भारतवासीको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उर्दूके शब्दोंका फुटनोटमें अर्थ भी दिया गया है। स्वामीजीकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंके तीन चित्र भी हैं। पुस्तक बढ़िया ऐंटिक कागजपर छपी है। मूल्य सुन्दर खादीकी सजिल्द पुस्तकका १।)

१५-मैं नीरोग हूं या रोगी

ले० प्रसिद्ध जलचिकित्सक डाक्टर लुईकूने

यदि आप स्वस्थ रहकर आनन्दसे जीवन बिताना, डाक्टरों, वैद्यों और हकीमोंके फन्देसे छुटकारा पाना, प्राकृतिक नियमानुसार रहकर सुख तथा शान्तिका उपभोग करना चाहते हैं तो इस पुस्तकको पढ़िये और लाभ उठाइये। जर्मनीके प्रसिद्ध डा० लुईकूनेकी इस पुस्तकका मूल्य ।*)*

१६--रामकी उपासना

ले० रामदास गौड़ एम०ए०

स्वामी रामतीर्थसे कौन हिन्दू परिचित न होगा। उनके उपदेशोंका श्रवण और मनन लोग बड़ी ही श्रद्धाभक्तिसे करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उपासनाके विषयमें लिखी गयी है। उपासनाकी आवश्यकता, उसके प्रकार, परब्रह्ममें मनको लीन करना, सच्ची उपासनाके बाधक और सहायक, सच्चे उपासकोंके लक्षण आदि बातें बड़ी ही मार्मिक और सरल भाषामें लिखी गयी हैं। हिन्दू गृहस्थोंके लिये पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। सुन्दर एण्टिक कागजपर छपी है। कवरपर उपासनाकी मुद्रामें स्वामी रामतीर्थजीका एक चित्र भी है। ४८ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ।*)*

१७-बच्चोंकी रक्षा

ले० डाक्टर लुईकूने

डाक्टर लुईकूने जर्मनीके प्रसिद्ध डाक्टर हैं। आपने अपने अनुभवोंसे सब बीमारियोंके दूर करनेका प्राकृतिक उपाय निकाला है। आपकी जल-चिकित्सा आजकल घर घरमें प्रचलित है। इस पुस्तकमें डाक्टर साहबने यह दिखलाया है कि बच्चोंकी रक्षाकी उचित रीति क्या है और उसके अनुसार न चलनेसे हम अपनी सन्ततिको किस गर्तमें गिरा रहे हैं। स्त्रियों-के लिये विशेष उपयोगी है। विद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखने योग्य है। सुन्दर एण्टिक कागजके ४८ पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ।*)॥*

१८–प्रेमाश्रम

ले० उपन्यास सम्राट् श्रीयुत प्रेमचन्दजी

जिन्होंने प्रेमचन्दजीकी लेखनीका रसास्वादन किया है उनके लिये इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। पुस्तक क्या है, वर्तमान दशाका सच्चा चित्र है। किसानोंकी दुर्दशा, जमींदारोंके अत्याचार, पुलिसके कारनामे, वकीलों और डाक्टरोंका नैतिक पतन, धर्मके ढोंगमें सरलहृदया स्त्रियोंका फंस जाना, स्वार्थसिद्धिके कलुषित मार्ग, देशसेवियोंके कष्ट और उनके पवित्र चरित्र, सच्ची शिक्षांके लाभ, गृहस्थीके झंझट, साध्वी स्त्रियोंका चरित्र, सरकारी नौकरीका दुष्परिणाम आदि भावोंको लेखकने ऐसी खूबीसे चित्रित किया है कि पढ़ते ही बनता है, एक बार शुरू करनेपर बिना पूरा किये छोड़नेको दिल नहीं चाहता। ठूंस ठूंस कर मैटर भर देनेपर भी पृष्ठ संख्या ६५० हो गयी। खादीकी जिल्दका ३॥) रेशमी ३॥)

१९–पंजाबहरण

ले० पं० नन्दकुमारदेव शर्मा

यह सिक्खोंके पतनका इतिहास है। १९ वीं सदीके आरम्भमें सिक्ख-साम्राज्य महाराज रणजीतसिंहके प्रतापसे समृद्धशाली हो गया था। उनके मरते ही आपसकी फूट, कुचक्र, अंग्रेजोंके विश्वाघातसे उसका किस प्रकार पतन हुआ। जो अग्रेज जाति सभ्यताकी डींग हांकती है, उसने अपने परम प्रिय मित्र महाराज रणजीतसिंहके परिवारके साथ किस घातक नीतिका व्यवहार किया इसका वास्तविक दिग्दर्शन इस पुस्तकसे होता है। इससे अंग्रेजोंके सेना पराक्रमका भी पूरा पता चलता है। जो अंग्रेज जाति आज गली गली ढिंढोरे पीट रही है कि "हमने भारतको तलवारके बल जीता है" उनके सारे पराक्रम चिलियानवालाके युद्धमें लुप्त हो गये थे और यदि सिक्खोंने मिलकर एक बार उसी प्रकार और हराया होता तो शायद ये लोग डेराडण्डा लेकर कूंच ही कर गये होते। पुस्तक बड़ी ओजसे लिखी गयी है। मोटे कागजपर २५० पृ० का मूल्य केवल २)

२०—भारतमें कृषिसुधार

ले० प्रो० दयाशंकर एम० ए०

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने बड़ी खोजके साथ दिखलाया है कि भारतकी गरीबीका क्या कारण है, कृषिका अधःपतन क्यों हुआ है, जिसके फलस्वरूप भारत परतन्त्रताकी शृंखलामें जकड़ गया। अन्य देशोंकी तुलनामें यहांकी पैदावारकी क्या अवस्था है और उसमें किस तरह सुधार किया जा सकता है। सरकारका क्या धर्म है और वह उसका किस तरह प्रतिपालन कर रही है, किस प्रकार प्रजाकी उन्नतिके मार्गमें कांटे बिछाये जा रहे हैं इत्यादि बातोंका दिग्दर्शन लेखकने बड़ी मार्मिक भाषामें दृढ़तर प्रमाणोंके साथ किया है। पुस्तक अपने ढंगकी निराली है और बड़ी ही उपादेय है। २५० पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य १॥।)

२१—देशभक्त मैजिनीके लेख

भूमिका ले० दैनिक "आज" के सम्पादक

बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एम० एल० बी० बेरिस्टर-ऐट-ला

इटलीका इतिहास पढ़नेवालोंको भलीभांति विदित है कि १८ वीं सदीमें इटलीकी क्या दशा थी। परराजतन्त्रके दमनचक्रमें पड़कर इटली घोरे यातनायें भोग रहा था। न कोई स्वतन्त्रापूर्वक लिख सकता था और न बोल सकता था। कहनेका मतलब यह है कि भारतकी वर्त्तमान दशा इटलीकी उस समयकी दशासे ठीक मिलती-जुलती है। इटली-एकदम निर्जीव हो गया था। ऐसी ही दशामें देशभक्त मैजिनीने अपने लेखोंका शंखनाद किया और नवयुवकोंको चेतावनी दी कि उठो, आलस्यको त्यागो, माता वसुन्धरा बलिदान चाहती है। प्रत्येक नवयुवकके शरीरमें स्वतन्त्रताकी प्राप्त करनेकी ज्योति जग उठी। ग्रन्थके अन्तमें संक्षेपमें मैजिनीका जीवनचरित भी दिया गया है। अनुवादक पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल० एल० बी०। पृष्ठसंख्या २६० मूल्य केवल २)

२२–गोलमाल

जिन लोगोंने "चौबेका चिट्ठा" और "गोबर गणेशसंहिता" पढ़ी है, वे गोलमालके मर्मको भलीभांति समझ सकते हैं। रा० ब० काली प्रसन्न घोषने बंगलाके 'भ्रान्ति विनोद' में समाजमें प्रचलित कुछ बुराइयोंकी—जिसे वर्तमान समाजने प्रायः अनिवार्य और क्षम्य मान लिया है—मार्मिक भाषामें चुटकीली है। प्रत्येक निबन्ध अपने ढंगका निराला है। 'रसिकता और रसीली' बातोंसे लेकर 'दिगन्त मिलन' तक समाजकी बुराइयोंकी आलोचनासे भरा है। उसी भ्रान्ति-विनोदका यह गोलमाल हिन्दी अनुवाद है। २०० पृष्ठ, मूल्य १=)

२३–१८५७ ई० के गदरका इतिहास

ले० पण्डित शिवनारायण द्विवेदी

सिपाहीविद्रोह क्यों हुआ? यह प्रश्न अभीतक प्रत्येक भारत-वासीके हृदयको आन्दोलित कर रहा है। कोई इसे सिपाहियोंका क्षणिक जोश, कोई सिपाहियोंकी बेजड़ बुनियाद, धर्मभीरुता और कोई इसे राजनीतिक कारण बतलाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक अनेक अंग्रेज इतिहासज्ञोंकी पुस्तकोंकी गवेषणापूर्ण छानबीनके बाद लिखी गयी है। पूरे प्रमाणसहित इसमें दिखलाया गया है कि सिपा-हियोंकी क्रान्तिके लिये अंग्रेज अफसर पूर्णतः दोषी हैं और यदि उन्होंने चेष्टा की होती तो लार्ड डलहौजीकी कुटिल और दोषपूर्ण नीतिके रहते हुए भी इतना रक्तपात न हुआ होता। प्रस्तुत पुस्तकेस इस बातका भी पता लगता है कि इसरक्तपातकी भीषणता बढ़ानेमें अंग्रेजोंने भी कोई बात उठा नहींरखी थी। प्रथम भागके सजिल्द प्रायः ६००पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ३॥) द्वितीय भागकी सजिल्द प्रायः ८०० पृष्ठका मूल्य ४॥)

२४—भक्तियोग

ले० श्रीयुक्त अश्विनीकुमार दत्त

कौन भगवान्‌की प्रेमसे सेवा नहीं करना चाहता ! कौन भगवद्-भक्तिके रसका आनन्द नहीं लेना चाहता ! आदर्श भक्तोंके जीवनका रहस्य कौन नहीं जानना चाहता ! हृदयकी साम्प्रदायिक संकीर्णताको त्याग-कर, सुन्दर मनोहर दृष्टान्तोंके साथ साथ, धर्मशास्त्रों और उच्च कोटिके विद्वानों, भक्तों और महात्माओंके अनुभवोंसे भक्तिका रहस्य जाननेके लिये इस ग्रन्थका आदिसे अन्ततक पढ़ जाना आवश्यक है। ईश्वरभक्तोंके लिये हिन्दी साहित्यमें अपने ढङ्गका यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। पृष्ठ २६८। मूल्य सजिल्द १॥।)

२५—तिब्बतमें तीन वर्ष

ले० जापानी यात्री श्रीइकाई कावागुची

तिब्बत एशिया खंडका एक महत्वपूर्ण अङ्ग है, परन्तु वहांके निवासियों-की धर्मांधता तथा शिक्षाके अभावके कारण अभीतक वह खंड संसारकी दृष्टिसे ओझल ही था, परन्तु अब कई यात्रियोंके उद्योग और परिश्रमसे वहांका बहुत कुछ हाल मालूम हो गया है। सबसे प्रसिद्ध यात्री कावागुचीकी यात्राका विवरण हिन्दी-भाषा-भाषियोंके सामने रक्खा जाता है। इस पुस्तकमें आपको ऐसी भयानक घटनाओंका विवरण पढ़नेको मिलेगा जिनका ध्यान करने मात्रसे ही कलेजा कांप उठता है, साथ ही ऐसे रमणीक स्थानोंका चित्र भी आपके सामने आयेगा जिनको पढ़कर आनन्दके सागरमें लहराने लगेंगे। दार्जिलिङ्ग, नेपाल, हिमालयकी बर्फीली चोटियां, मानसरोवरका रमणीय दृश्य तथा कैलाश आदिका सविस्तर वर्णन पढ़कर आप ही आनन्दलाभ करेंगे। इसके सिवा वहांक रहन-सहन, विवाह-शादी, रीति-रिवाज एवं धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक अवस्थाओंका भी पूर्ण हाल विदित हो जायगा। ५२५ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य २॥) सजिल्द २॥।=)

२६—संग्राम

ले० उपन्याससम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

मौलिक उपन्यास एवं कहानियां लिखनेमें प्रेमचन्दजीने हिन्दीमें वह नाम पाया है जो आजतक किसी हिन्दी-लेखकको नसीब नहीं हुआ उनके लिखे उपन्यास 'प्रेमाश्रम' एवं 'सेवासदन' तथा 'सप्तसरोज' 'प्रेमपूर्णिमा' और 'प्रेमपचीसी' आदि पुस्तकोंकी सभी पत्रोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

इन उपन्यासों और कहानियोंको रचकर उन्होंने हिन्दी-संसारमें नवयुग उपस्थित कर दिया है, नये तथा पुराने लेखकोंके सामने भाषाकी प्रौढ़ता मौलिकता, विषयकी गम्भीरता और रोचकताका आदर्श रख दिया है।

उन्हीं प्रेमचन्दजीकी कुशल लेखनी द्वारा यह 'संग्राम' नाटक लिखा गया है। यों तो उनके उपन्यासोंमें ही नाटकका मजा आ जाता है फिर उनका लिखा नाटक कैसा होगा यह बतानेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। प्रस्तुत नाटकमें मनोभावोंका जो चित्र खींचा है वह आप पढ़कर ही अन्दाजा लगा सकेंगे। बढ़िया-एन्टिक कागजपर प्रायः २७५ पृष्ठोंमें छपी पुस्तकका मूल्य केवल १॥।)

२७—चरित्रहीन

ले० श्रीयुक्त शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बंगालमें श्रीयुत शरत् बाबूके उपन्यास उच्च कोटिके समझे जाते हैं। तथा उनके लिखे उपन्यासोंका बंगालमें बड़ा आदर है। उनके लिखे उपन्यास पढ़ते समय आंखोंके सामने घटना स्पष्ट रूपसे भासने लगती है। युवा पुरुष बिना पूर्वदेख रेखके किस तरह चरित्रहीन हो बैठतेहैं, सच्चा स्वामिभक्त सेवक किस तरह दुर्व्यसनके पंजोंसे अपने मालिकको छुड़ा सकता है। इसके अतिरिक्त पति-पत्नीका प्रेम, पतिव्रताकी पति सेवा और विधवा स्त्रियां दुष्टोंके बहकावेमें पड़कर कैसे अपने धर्मकी रक्षा कर सकती है, इन सब बातोंका इसमें पूर्णरूपसे दिग्दर्शन कराया गया है। पृष्ठ ६६४ जिल्दसहित मूल्य ३।) रेशमी ३॥)

३२-रागिणी

ले०: मराठीके प्रसिद्ध उपन्यासकार

श्रीयुक्त वामन मल्हारराव जोशी एम० ए०

अनुवादक--हिन्दी नवजीवनके सम्पादक तथा हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक

श्रीयुक्त पं० हरिभाऊ उपाध्याय

रागिणी है तो उपन्यास, परन्तु इसे केवल उपन्यास कहनेसे सन्तोष नहीं होता। क्योंकि आजकल उपन्यासोंका काम केवल मनोरञ्जन और मनबहलाव होता है। इसको तर्क-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र भी कह सकते हैं। इसमें जिज्ञासुओंके लिये जिज्ञासा, प्रेमियोंके लिये प्रेम और अशान्त जनोंके लिये विमल शान्ति मिलती है। वैराग्य खण्डका पाठ करनेसे मोह-माया और जगत्‌की उलझनोंसे निकलकर मनमें स्वाभाविक ही भक्ति-भाव उठने लगता है। देशभक्तिके भाव भी स्थान स्थानपर वर्णित हैं। लेखककी कल्पना-शक्ति और प्रतिभा पुस्तकके प्रत्येक वाक्यसे टपकती है। सभी पात्रोंकी पारस्परिक बातें और तर्क पढ़ पढ़कर मनोरञ्जन तो होता ही है, बुद्धि भी प्रखर हो जाती है। भारतीय साहित्यमें पहले तो 'मराठी'का ही स्थान ऊँचा है फिर मराठी-साहित्यमें भी रागिणी एक रत्न है। भाषा और भावकी गम्भीरता सराहनीय है। उपाध्यायजीके द्वारा अनुवाद होनेसे हिन्दीमें इसका महत्व और भी बढ़ गया है। लेखककी लेखनशैली, अनुवादककी भाषा-शैली जैसी सुन्दर है, आकार भी वैसा ही सुन्दर, छपाई वैसी ही साफ है। ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर पुस्तक आपके देखनेमें कम आवेगी। लगभग ८०० पृष्ठकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४) और सुन्दर रेशमी सुनहली जिल्दका ४Ⅱ)

३३—प्रेम-पचीसी

ले० उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजीका नाम ऐसा कौन साहित्य-प्रेमी है जो न जानता हो। जिस प्रेमाश्रमकी धूम दैनिक और मासिक पत्रोंमें प्रायः बारह महीनेसे मची हुई है उसी प्रेमाश्रमके लेखक बाबू प्रेमचन्दजीकी रचनाओंमेंसे एक यह भी है। 'प्रेमाश्रम', 'सप्त सरोज','प्रेम पूर्णिमा' और 'सेवासदन' आदि उपन्यासों और कहानियोंका जिसने रसास्वादन किया है वह तो इसे बिना पढ़े रह ही नहीं सकता। इसमें शिक्षाप्रद मनोरञ्जक २५ अनूठी कहानियां हैं। प्रत्येक कहानी अपने अपने ढङ्गकी निराली है। कोई मनोरञ्जन करती है, तो कोई सामाजिक कुरीतियोंका चित्र चित्रण करती है। कोई कहानी ऐसी नहीं है जो धार्मिक अथवा नैतिक प्रकाश न डालती हो। पढ़नेमें इतना मन लगता है कि कितना भी चिन्तित कोई क्यों न हो प्रफुल्लित हो जाता है। भाषा बहुत सरल है। विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य है। ३८४ पृ० की पुस्तकका खद्दरकी जिल्द सहित मूल्य २।)—रेशमी जिल्दका २॥)

३४—व्यावहारिक पत्र-बोध

ले० पं० लक्ष्मणप्रसाद चतुर्वेदी

आजकलकी अंग्रेजी शिक्षामें सबसे बड़ा दोष यह है कि प्रायः अंग्रेजी शिक्षित व्यवहार-कुशल नहीं होते। कितने तो शुद्ध बाकायदा पत्र लिखनातक नहीं जानते। उसी अभावकी पूर्तिके लिये यह पुस्तक निकाली गयी है। व्यापारिक पत्रोंका लिखना, पत्रोंका उत्तर देना, प्रार्थनापत्रोंका बाकायदा लिखना तथा आफिसियल पत्रोंका जवाब देना आदि दैनिक जीवनमें काम आनेवाली बातें इस पुस्तकद्वारा सहज ही सीखी जा सकती हैं। व्यापारिक विद्यालयों (Commercial Schools) की पाठ्य-पुस्तकोंमें रहने लायक यह पुस्तक है। अन्यान्य विद्यालयोंमें भी यदि पढ़ायी जाय तो लड़कोंका बड़ा उपकार हो। विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये ही लगभग १२५ पृ० की पुस्तककी कीमत ॥=) रखी गयी है।

३५—रूसका पञ्चायती-राज्य

ले० प्रोफेसर प्राणनाथ विद्यालंकार

जिस बोल्शेविज्मकी धूम इस समय संसारमें मची हुई है, जिन बोल्शेविकोंका नाम सुनकर सारा यूरोप कांप रहा है उसीका यह इतिहास है। जारके अत्याचारोंसे पीड़ित प्रजा जारको गद्दीसे हटानेमें कैसे समर्थ हुई, मजदूर और किसानोंने किस प्रकार जार-शाहीको उलटनेमें काम किया, आज उनकी क्या दशा है इत्यादि बातें जाननेको कौन उत्सुक नहीं है ? प्रजातन्त्र-राज्यकी महत्ताका बहुत ही सुन्दर वर्णन है। प्रजाकी मर्जी बिना राज्य नहीं चल सकता और रूस ऐसा प्रबल राष्ट्र भी उलट दिया जा सकता है, अत्याचार और अन्यायका फल सदा बुरा होता है इत्यादि बातें बड़े सरल और नवीन तरीकेसे लिखीं गयी हैं। लेनिनकी बुद्धिमत्ता और कार्यशैली पढ़कर दांतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। किस कठिनता और अध्यवसायसे उसने रूसमें पंचायती राज्य स्थापित किया इसका विवरण पढ़कर मुर्दा दिल भी हाथों उछलने लगता है। १३६ पृ० की पुस्तकका मूल्य केवल ॥।ㄱ मात्र रखा गया है।

३६—टाल्स्टायकी कहानियां

सं० श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

यह महात्मा टाल्स्टायकी संसार-प्रसिद्ध कहानियोंका हिन्दी अनुवाद है। यूरोपकी कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें इनका अनुवाद न हो गया हो। इन कहानियोंके जोड़की कहानियां सिवा उपनिषदोंके और कहीं नहीं हैं। इनकी भाषा जितनी सरल, भाव उतने ही गम्भीर हैं। इनका सर्वप्रधान गुण यह है कि ये सर्व-प्रिय हैं। धार्मिक और नैतिक भाव कूट कूटकर भरे हैं। विद्यालयोंमें छात्रोंको यदि पढ़ाई जायँ तो उनका बड़ा उपकार हो। किसानोंको भी इनके पाठसे बड़ा लाभ होगा। पहले भी कहींसे इनका अनुवाद निकला था परन्तु सर्वप्रिय न होनेके कारण उपन्यास सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी-द्वारा सम्पादित कराकर निकाली गयी हैं। सर्वसाधारणके हाथोंतक यह पुस्तक पहुंच जाय इसीलिये मूल्य केवल १ㄱ रक्खा गया है।